भाषाविज्ञान का परिचय

प्रो. कविता रस्तोगी

भाषाविज्ञान का परिचय

प्रो. कविता रस्तोगी
अध्यक्ष
भाषाविज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

अविराम प्रकाशन
दिल्ली–110032

[यह पुस्तक "केंद्रीय हिंदी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के संस्वीकृति-पत्र संख्या 5/10/2013 कें. अनु. ए. दिनांक 23/9/13 के माध्यम से प्राप्त वित्तीय सहायता से प्रकाशित हुई है। कापीराइट अनुदानग्राही के पास है।"]

ISBN : 978-81-7566-081-6

मूल्य : 105 रुपये

प्रथम संस्करण : 2013

प्रकाशक,
अविराम प्रकाशन
29/62, पहली मंजिल, गली नं. 11, विश्वास नगर,
दिल्ली-110032
फोन : 9873072424

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, गाजियाबाद (उ.प्र.)

BHASHAVIGYAN KA PARICHAY
By Prof. Kavita Rastogi
Price : Rs. 105.00

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक छात्रों के समक्ष भाषाविज्ञान के विविध पक्षों को सरल एवं संक्षिप्त शब्दों में रखने का प्रयास है। पुस्तक के शीर्षक में 'परिचय' शब्द का प्रयोग एक विशेष उद्देश्य से किया गया है। वर्तमान में इस विषय का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि एक पुस्तक में उसे समेटना कठिन ही नहीं असंभव था अतः मैंने छात्र उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए विभिन्न बिंदुओं का परिचय भर इस पुस्तक में दिया है।

लेज़र ग्राफिक्स के अधिष्ठाता मेरे अनुजवत श्री कृष्णवेश (किट्टू भैय्या) का पुस्तक का टंकण करवाने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। मेरे शोध छात्र रहे, डॉ. विष्णु कुमार सिंह ने इस कार्य में मेरी बहुत सहायता की उनकी मैं अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तक प्रकाशन में सहयोग के लिए 'अविराम प्रकाशन' के अधिष्ठाता शर्मा जी को विशेष धन्यवाद।

–डॉ. कविता रस्तोगी

अनुक्रम

भाषा एवं भाषाविज्ञान

1.1 संप्रेषण

संप्रेषण शब्द तीन अंशों से मिलकर बना है- सम् + प्रेष + अण् । सम्मिलित रूप में इनका अर्थ साथ-साथ चलना या शब्द करना होता है। अंग्रेजी में इसका समतुल्य शब्द communication मिलता है जो लैटिन क्रिया communicare से विकसित हुआ है। लैटिन क्रिया का अर्थ है-साथ-साथ बातचीत करना; एक दूसरे से सलाह मशविरा करना आदि। सैद्धांतिक दृष्टि से संप्रेषण[1] का संबंध किसी प्राणी समूह में पारस्परिक संबंधों के उत्प्रेरक कारकों एवं उनकी अभिव्यक्ति से लिया जाता है और संप्रेषण को बहुधा इस प्रकार परिभाषित किया जाता है—जब कोई वस्तु या प्राणी गतिशील होकर किसी अन्य वस्तु या प्राणी को गतिशील करे तो मध्य में घटित प्रक्रिया संप्रेषण कहलाती है।

कह सकते हैं कि किसी नियम संहिता (code) द्वारा व्यवहार और जीवन विधि के तत्वों को समान रूप से ग्रहण करना संप्रेषण है। इसे उद्दीपन और अनुक्रिया के संदर्भ में भी स्पष्ट किया जा सकता है- संप्रेषण उद्दीपन के प्रेषण और अनुक्रिया के परिणाम के बीच उत्पन्न होने वाला वह संबंध है जिसकी अपनी नियम संहिता होती है। यह विशेषता मानव में ही नहीं वरन् मानवेतर प्राणियों में भी प्राप्त होती है। विभिन्न मानवेतर प्राणी भिन्न-भिन्न प्रकार से संप्रेषण करते हैं। जहाँ हिरन की एक विशेष चीख उसके समूह के अन्य साथियों को खतरे का आभास कराती है, वहाँ मधुमक्खी का विशिष्ट प्रकार का नृत्य अन्य मधुमखियों को यह सूचना देता है कि वहाँ से पुष्प-पराग कितनी दूरी पर उपलब्ध है, किंतु इन प्राणियों में मूलप्रवृत्तियाँ-भूख, प्यास, हर्ष, भय, कामेच्छा आदि, संप्रेषण के उद्भावक रूप में कार्य करती हैं। यही कारण है कि अनंतकाल से ये प्राणी एक ही प्रकार से सूचना-प्रसारण एवं अभिव्यक्ति कर रहे हैं तथा एक प्रजाति के समस्त पशु-पक्षी समान ध्वनिक एवं कायिक संकेतों और सूचना-व्यवस्था का प्रयोग करते हैं। अस्तु कह सकते हैं कि इनका संप्रेषण अनियंत्रित, सहजगत्यात्मक एवं मूल प्रवृत्तिजन्य होता है।

मानवीय एवं मानवेतर संप्रेषण में पर्याप्त भिन्नता होती है। सामाजिक प्राणी होने

के कारण मानव पारस्परिक संपर्क एवं सहयोग के लिए कई संप्रेषण, माध्यमों का प्रयोग करता है। कोई भी व्यक्ति दूर खड़े मित्र को ताली, चुटकी या सीटी आदि बजाकर बुला सकता है अथवा निकट खड़े व्यक्ति का ध्यान स्पर्श द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, किंतु इन संप्रेषण-माध्यमों का क्षेत्र सीमित है। मानव की समस्त अभिव्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति इन साधनों द्वारा नहीं होती है। अभिव्यक्ति के इन विविध साधनों में सर्वाधिक सशक्त एवं सक्षम माध्यम भाषा है, जो मुखोच्चारित ध्वनियों द्वारा निर्मित होती है। अपने दैनंदिन कार्य-व्यवहार का एक बड़ा भाग मानव इसके द्वारा संपादित करता है। विभिन्न संप्रेषण व्यवस्थाओं के विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि प्रत्येक संप्रेषण प्रक्रिया में एक प्रेषक होता है भाषा के संदर्भ में जो वक्ता भी हो सकता है और लेखक भी। दूसरी तरफ प्रापक होता है जो श्रोता या पाठक होता है। प्रेषक संदेश को भेजता है और प्रापक उसके ग्रहण करता है। यह संदेश किसी न किसी कोड (लिखित अथवा मौखिक भाषा रूप) के माध्यम से ग्रहण किया जाता है। वक्ता और श्रोता के इस संदेश की पृष्ठभूमि में स्थित यह कोड, दोनों की भाषिक चेतना और ज्ञान के संदर्भ में लगभग एक सा होता है। कथ्य को संदेश में बाँधने की प्रक्रिया कोडीकरण तथा कथ्य में बँधे संदेश को पाने की प्रक्रिया विकोडीकरण कहलाती है। कोड से परिचित श्रोता ही विकोडीकरण कर सकता है। यही नहीं प्रत्येक संप्रेषण का एक सामाजिक संदर्भ होता है। संदर्भ के ज्ञान के अभाव में प्रेषित संदेश को समझना कठिन है। संप्रेषण के तात्कालिक संदर्भ को जानने से पूर्व उस समाज विशेष की संरचना और उसके सदस्यों में परस्पर व्यवहार विनिमय की व्यवस्था के नियमों का ज्ञान भी आवश्यक है। संप्रेषण व्यापार की पूर्ण जानकारी के लिए कौन, कब, किससे, कहाँ और किस विषय में बात कर रहा है समस्त बिंदुओं का ज्ञान अनिवार्य है क्योंकि हमारे समस्त संप्रेषण व्यापार की पृष्ठभूमि में समाज के नियमों की वह अचार संहिता सक्रिय रूप से काम करती रहती है जिसे हमने वर्षों समाज के सदस्य के रूप में सीखा है।

1.2 भाषा

मानव जीवन आज जिस विकसित अवस्था में है, उसको संभव बनाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान भाषा का है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध भाषा दार्शनिक विल्हेल्म फॉन हुम्बोल्ड ने कहा है—मानव भाषा के कारण ही मानव है, मानव बनने के लिए उसे भाषा का आविष्कार करना पड़ा[2]। इस प्रकार भाषा ही मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न प्रतिपादित कर विशिष्ट अस्मिता प्रदान करती है। मानवीय संप्रेषण का यह साधन वैविध्यपूर्ण एवं जटिल है तथा देशकाल एवं परिस्थिति, आबद्ध नहीं होता है। मानव-शिशु में भाषार्जन की जन्मजात क्षमता होती है और निश्चित अवस्था आने पर वह अपने निकटतम परिवेश से भाषार्जन करता है, अस्तु मानवीय

भाषा कोई एकांगी प्रक्रिया न होकर एक बहुदिशिक अंतर्प्रक्रिया का परिणाम है।

भाषा के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न विचारकों ने उसे परिभाषित करने का प्रयास किया। किसी परिभाषा का उद्देश्य परिभाष्य वस्तु के लक्षण, उद्देश्य आदि के आधार पर उसकी व्याख्या अर्थात् परिभाष्य वस्तु की प्रकृति एवं व्याप्ति को स्पष्ट करना होता है और यदि वह विवेच्य वस्तु का यथाशक्ति पूर्ण एवं संक्षिप्त परिचय नहीं देती है तो उसका उद्देश्य पूरा नहीं होता है और उसे एक उपयुक्त परिभाषा नहीं कह सकते हैं। परिभाषा का अर्थ स्पष्ट करते हुए महाभाष्यकार ने इसके तीन दोष बताए हैं- 'तदेव हि लक्षणं यदव्याप्ति अतिव्याप्ति असंभवरूप दोषत्रयं शून्यम्' अर्थात् परिभाषा का वही लक्षण है जो तीनों दोषों अव्याप्ति, अतिव्याप्ति तथा असंभव रूप से मुक्त हो। आधुनिक विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार 'परिभाषा वह सैद्धांतिक अर्थ है जो कोई अध्येता अपने अध्ययन-क्षेत्र की आवश्यकतानुसार किसी शब्द को देना चाहता है।' अतः जो अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने में सफल नहीं होती, वह परिभाषा न होकर वाक्‌जाल मात्र होती है।

प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनेक विषयों से जुड़े होने के कारण विद्वान अपने-अपने दृष्टिकोण से भाषा को परिभाषित करते हैं। मानवीय संप्रेषण की सशक्त विधा होने के कारण मानवशास्त्री की रुचि भाषा में होती है और वह भाषा को सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम शब्दों में परिभाषित करता है। इसी प्रकार एक मनोवैज्ञानिक का अध्ययन-क्षेत्र मानव-व्यवहार है तथा उसे आंतरिक मानसिक-व्यवहार का ज्ञान भाषा के माध्यम से होता है। अतः वह भाषा को मानसिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता है जबकि भाषाविद् इन सबसे भिन्न दृष्टिकोण से भाषा को विवेचित करने का प्रयास करता है। भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाविदों द्वारा दी गई भाषा की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

> Language is a human activity which has the aim of communicating ideas and emotions. –Jesperson, O.
>
> Languange may be defined as the expression of ideas by means of speech sounds combine into words.
> – Henry, S.
>
> Language is a system of signs, expression of ideas.
> – Saussure, F.
>
> Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperate and interact. – Sturtvant
>
> Language is human... a verbal systematic symbolism, a means of transmitting information... a form of social

behaviour (with a) high degree of convention.

– Whatmough, F.

Language is a purely human and non instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of a system of voluntarily produced symbols.

– Sapir, E.

Language is the institution whereby human communicate and interact with each other by means of habitually used oral-auditory arbitrary symbols. – Hall, R.A.

From now on I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements.

–Chomsky, N.

भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।

—कामता प्रसाद गुरु

जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनि-संकेत प्रणाली को भाषा कहते हैं।

—देवेन्द्र नाथ शर्मा

जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं। —बाबूराम सक्सेना

भाषा उच्चारण-अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक (arbitrary) ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। —भोलानाथ तिवारी

उपर्युक्त में से कोई भी परिभाषा भाषा को सम्यक रूपेण परिभाषित नहीं करती है। किसी परिभाषा में कुछ एक परिचयात्मक अभिलक्षणों का उल्लेख है, तो अन्य में किंहीं दूसरे अभिलक्षणों की चर्चा की गई है। अतः भाषा को परिभाषित न कर उसकी समस्त विशेषताओं/अभिलक्षणों का विवेचन ही उसके स्वरूप के स्पष्टीकरण का अधिक उपयुक्त माध्यम होगा।

1.3 भाषा की विशेषताएँ

भाषा के स्वरूप की संरचना मानवीय **वाग्ध्वनियों** (speech sounds) द्वारा होती है। ध्वनि-उत्पादन के अन्य माध्यम भाषा की श्रेणी में परिगणित नहीं होते हैं। यद्यपि मानव बहुविध ध्वनियों के उच्चारण में सक्षम है, किंतु मानव उच्चारण संभूत

ध्वनियों में से कुछ ध्वनियाँ ही भाषिक ध्वनियों के रूप में प्रयुक्त होती हैं। इन ध्वनियों में से कतिपय निश्चित संख्यक ध्वनियों का चयन भाषा विशेष अपने निर्माण के लिए करती है। यह भाषा विषयक **सार्वभौमिक** (universal) तथ्य है[3]। इन भाषिक ध्वनियों के विविध निश्चित क्रमों एवं संयोजनों द्वारा भाषा का स्वरूप (शब्द, पदबंध, वाक्य आदि) निर्मित होता है और मानव जिसके द्वारा चतुर्दिक् परिवेश में उपस्थित वस्तुओं, पदार्थों, गुणों, क्रियाओं आदि का नामांकन करता है।

संरचना द्वैत (duality of structure) या द्विपक्षीयता भाषा की दूसरी प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। भाषा की प्रत्येक इकाई (रूप, पदबंध, वाक्य आदि) द्विपक्षीय होती है इनका निर्माण जहाँ एक ओर कुछ निश्चित स्वनों/ध्वनियों से होता है वहाँ दूसरी ओर ये इकाइयाँ विशिष्ट अर्थ को प्रकट करती हैं, उदाहरणार्थ हिंदी भाषा की निम्न भाषिक इकाइयाँ देखें—

कमल (रूप)

लाल कमल (पदबंध)

तालाब में लाल कमल खिले हैं (वाक्य)

उपर्युक्त भाषिक इकाइयाँ एक विशिष्ट स्वन्यात्मक स्वरूप को प्रकट करती हैं जो उन्हें अन्य भाषिक इकाइयों से भिन्न अस्मिता प्रदान करता है (जैसे- समान स्वनों द्वारा निर्मित होने पर भी 'कमल' और 'कलम' में भिन्नता है) वहीं ये सभी इकाइयाँ श्रोता या पाठक तक विशिष्ट अर्थ भी प्रेषित करती हैं। भाषिक इकाइयों द्वारा निर्मित भाषा की यही विशेषता उसकी द्विपक्षीयता कहलाती है।

यादृच्छिकता (arbitrariness) का अर्थ है इच्छानुसार या संयोगवत। हर भाषा का अपना एक अद्वितीय स्वरूप होता है, जो उसके प्रत्येक अंग-ध्वनि, व्याकरण और अर्थ पर लक्षित होता है। प्रत्येक भाषा विशेष मानवीय वाग्ध्वनियों में से पृथक्-पृथक् ध्वनियों का चयन करती है, यथा-भारतीय भाषाओं में प्राप्त महाप्राण स्पर्श एवं मूर्धन्य ध्वनियाँ यूरोपीय भाषाओं में नहीं प्राप्त होती हैं। इस चयन का कोई कारण नहीं है और न ही कोई तर्क, यह केवल संयोग है। इसी प्रकार अंग्रेजी के तालव्य सघोष संघर्षी व्यंजन (जैसे pleasure शब्द का तीसरा व्यंजन) हिंदी में नहीं मिलते हैं। ध्वनि-संयोजन, शब्द संयोजन एवं वाक्य में पदक्रम के साथ-साथ यह विशेषता शब्द-अर्थ संबंध में भी परिलक्षित होती है। परिणामतः प्रत्येक भाषा जागतिक उपादानों, क्रियाओं आदि का नामांकन अपने-अपने ढंग से करती है, यथा- हिंदी-कुत्ता; संस्कृत-श्वान; अंग्रेजी-dog; जर्मन-hund; रूसी-sabaca। प्राणी एक होने पर भी हर भाषा में भिन्न शब्द का प्रयोग मिलता है। यह तथ्य भाषा की यादृच्छिकता का द्योतक है, क्योंकि इसका कोई तार्किक आधार नहीं है कि किस कारण एक प्राणी विशेष हिंदी वक्ता द्वारा 'कुत्ता' कहलाता है, जबकि अंग्रेजी भाषा भाषी उसी को 'dog' नाम देता है। यही नहीं हिंदी भाषी इस प्राणी विशेष को 'कुत्ता' क्यों कहते हैं कुछ और क्यों

नहीं इसका कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस प्राणी के नाम में ऐसा कुछ नहीं है जो हमें इसकी आकृति, रूप रंग का परिचय दे। यह केवल संयोग है कि उसे हम 'कुत्ता' कहते हैं 'बिल्ली' या कुछ और नहीं।

भाषा में **अपसरणात्मकता** (displacement) का गुण मिलता है। अपसरण से तात्पर्य संदर्भ एवं परिस्थिति निरपेक्ष होना है। जहाँ मानवेतर प्राणियों का संप्रेषण अनिवार्यतः परिस्थिति-आबद्ध होता है, वहाँ भाषिक संप्रेषण के लिए यह बाध्यता नहीं है। हम अतीत एवं भविष्य दोनों के विषय में बात कर सकते हैं तथा प्रत्येक परिस्थिति के न होते हुए भी परिस्थिति की चर्चा कर सकते हैं अर्थात् किसी प्रकार का दुःख न होने पर भी हम दुःख-दर्द की भाषिक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। इतिहास, साहित्य तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान के विविध रूपों का सृजन भाषा की इसी विशेषता का प्रतिफल है। अस्तु कह सकते हैं कि मानवीय भाषा संदर्भ से हटकर भी प्रयुक्त हो सकती है तथा उद्भावक परिस्थिति के अभाव में भी उसका पुनः प्रयोग किया जा सकता है। मानवीय भाषा भूत, वर्तमान और भविष्य, किसी भी समय अथवा स्थान पर घटित या अघटित घटनाओं के बारे में अभिव्यक्ति की क्षमता रखती है।

भाषा एक **सामाजिक** (social) विभूति है। भाषा एवं समाज सिक्के के दो पार्श्वों की भाँति एक दूसरे से सम्पृक्त एवं आद्यांतः अन्योन्याश्रित रहते हैं। मानव को चलने, खाने आदि की भाँति बोलने की क्षमता प्रकृत्या प्राप्त है किंतु इस क्षमता द्वारा भाषार्जन एवं प्रयोग किसी सामाजिक परिवेश में ही संभव है। शिशु जन्म चाहे जिस समाज में ले भाषा वही अर्जित करता है जहाँ उसका लालन-पालन होता है। समाज से भाषा प्राप्त कर, मानव उसका प्रयोग समाज में ही करता है। इस प्रकार भाषा की उद्भावना व प्रयोग दोनों समाजाश्रित हैं। ये सामाजिक परिस्थितियाँ जहाँ भाषा को जन्म देती हैं, वहीं इनकी पूर्ण अभिव्यक्ति एवं रूपायन भाषा द्वारा होता है इसीलिए भाषा को समाज का दर्पण कहते हैं। नृविज्ञानाविद् एवं समाजशास्त्री मानव एवं समाज के अध्ययन हेतु भाषा को ही मुख्य साधन के रूप स्वीकार करते हैं। भाषा एवं समाज बहुविध संबंधों में आबद्ध होकर विविध भाषिक एवं सामाजिक आयामों की उद्भावना करते हैं। किसी समाज की सभ्यता और संस्कृति का परिचय भाषा द्वारा होता है। किसी समाज के सदस्य भाषा के साथ-साथ इसके माध्यम से परंपरा से प्राप्त संस्कृति के समस्त पक्षों को भी अंतरीकृत करते हैं। वर्तमान पीढ़ी भावी पीढ़ी को सामाजिक बंधन, विश्वास, मान्यता, रीति, कुरीति आदि से परिचित कराती है, अतः भाषा पारंपरिक होती है। सामाजिक एवं परंपरागत उपादान होते हुए भी भाषा किसी व्यक्ति को जन्म से स्वतः प्राप्त नहीं होती। मनुष्य सप्रयास यत्न करके भाषा सीखता है अर्थात् वह वंशानुक्रम से भाषा नहीं प्राप्त करता वरन् यह एक अर्जित उपादान है। अर्जन से लेकर भाषागत परिष्कृति और दक्षता के लिए उसे सतत प्रयत्न करना पड़ता है। लेकिन आधुनिक भाषाविद् चॉम्स्की ने प्रत्येक शिशु में अंतर्निहित

भाषाज्ञान की कल्पना की है। निस्संदेह शिशु में भाषा सीखने की असाधारण शक्ति और क्षमता होती है। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह पहले से ही कोई भाषा जानता है। कह सकते हैं कि शिशु में भाषा अधिग्रहण एवं उसे धारण करने की शक्ति होती है, जिसके सहारे उसके लिए भाषा सीखना कठिन नहीं होता है।

वक्ता एवं श्रोता दोनों की उपस्थिति भाषा का अनिवार्य गुण है। संप्रेषण के समय इनकी स्थिति परिवर्तित होती रहती है। वक्ता श्रोता बन जाता है और श्रोता वक्ता तथा इस चक्र के मध्य भाषा घटित होती है एक भाषा व्यवस्था का प्रयोग कर्ता वक्ता और श्रोता दोनों भूमिकाएँ निभाता है अर्थात् वक्ता के रूप में संकल्पना को स्वन्यात्मक रूप में प्रकट करने की क्षमता रखता है तो श्रोता के रूप में उसके आर्थी पक्ष को समझता और उद्घाटित करता है।



आरेख-1

भाषा की इस विशेषता को **विनिमेयता** (interchangeability) की संज्ञा देते हैं। इतर प्राणियों के संप्रेषण में श्रोता की अनिवार्यता नहीं होती है यथा, किसी अनिष्ट का आभास होते ही बंदर विशेष आवाज करता है चाहे उसका श्रोता हो या न हो। मानवीय एवं सामाजिक विभूति होने के कारण भाषा सतत प्रवाहमान है अर्थात् भाषा **गत्यात्मक** (dynamic) होती है। मानव तथा समाज की आवश्यकतानुरूप भाषा के स्वरूप में अत्यंत मंथर गति से परिवर्तन होता रहता है। समाज के परिवर्तित मूल्यों, नवीन अंवेषणों, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक प्रभावानुसार भाषा अपने को परिवर्तित करती है। यही नहीं अनेक आंतरिक कारण यथा-अपूर्ण अनुकरण, अपूर्ण श्रवण, अज्ञान, अनुकरण की प्रवृत्ति, मनोवैज्ञानिक तथ्य आदि भी भाषा के स्वरूप में परिवर्तन लाते हैं।

प्रत्येक भाषा में कुछ सीमित ध्वनियों से अनेक शब्द तथा उनसे असीमित वाक्य निर्मित होते हैं। इसे भाषा की **उत्पादकता** (productivity) कहते हैं जो उसका आंतरिक एवं विशिष्ट गुण है। भाषा की यह उत्पादकता भाषाभाषी को अपने अनुभव क्षेत्र में आगत समस्त वस्तुओं, पदार्थों, अनुभवों एवं क्रियाओं के संबंध में वार्तालाप की क्षमता प्रदान करती है एवं उसके भाषा प्रयोग की निरंतर वृद्धि का कारक होती है। भाषा की यह उत्पादकता उसमें घटित **पुनरावर्तिता** (redundancy) द्वारा भी रूपायित होती है। जिसके परिणामस्वरूप भाषा सीखने पर व्यक्ति कुछ शाब्दिक एवं वाक्यीय रचनाओं द्वारा अपरिमित वाक्यों की उद्भावना और सृजन में समर्थ होता है। उदाहरणार्थ—

गाय है।
एक गाय है।
एक काली गाय है।
एक काली, नुकीले सींग वाली, गाय है।
एक काली, नुकीले सींग वाली, गाय है जिसने मेरी बिल्ली को मारा था।

हिंदी के इस वाक्य को अभी और बड़ा बनाया जा सकता है। किसी भाषा संरचना से परिचित व्यक्ति ऐसे नवीन वाक्यों के सृजन व अवबोधन में समर्थ होता है जिनका प्रयोग पहले उसके द्वारा कभी नहीं किया गया हो। इस प्रकार भाषा की रचनाशीलता के कारण मानव सीमित ध्वनियों से अनेक शब्द एवं अनेकानेक शब्दों से असंख्य वाक्य बनाता है। भाषा सीखने का अर्थ है भाषा के नियमों को सीखना। भाषा के नियम सीमित होते हैं—इन सीमित नियमों को सीखकर हम असीमित वाक्यों की रचना कर सकते हैं। अस्तु भाषा सीमित साधनों का असीमित व अपरिमित प्रयोग करती है[5]।

कह सकते हैं कि भाषा संरचना की दृष्टि से जटिल तथा प्रयोग की दृष्टि से बहुआयामी मानवीय विभूति है। आज भाषा को एक जीवंत तथ्य के रूप में देखा जा रहा है। एक ऐसा तथ्य जो समाज में घटित परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है और समाज की घटनाओं के प्रति सजग। अतः भाषा मात्र 'ध्वनियों का समूह' या 'अभिव्यक्ति का माध्यम' नहीं है वरन् मानव की व्यक्तिगत और सामाजिक अस्मिता की परिचायक है। यही नहीं मनुष्य के मानसिक और बौद्धिक स्तर का मापदंड भी है। यही एक ऐसी कड़ी है जिसने हमारे वर्तमान को हमारे प्राचीन मूल्यों व परंपराओं से जोड़ रखा है।

1.4 भाषा संरचना

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत प्रगति हुई और तत्कालीन बौद्धिक चेतना के प्रभावस्वरूप विद्वानों ने अध्येय वस्तु के निर्मायक अंश की ओर ध्यान दिया। अनेक विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया कि अंश की स्वतंत्र सत्ता उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती जितने कि उनके पारस्परिक संबंध[7]। अतः अंशों की तुलना में उनके अंतःसंबंधों के महत्व पर बल दिया गया। इस नवीन खोज से प्रभावित भाषाविदों ने यह जानने का प्रयास किया कि भाषा के निर्मायक तत्व क्या हैं? इन निर्मायक अंशों का भाषा के स्वरूप व कार्य में क्या योगदान है? इत्यादि। भाषिक संरचना का उद्घाटन करने के कारण भाषाध्ययन की यह मनोदृष्टि संरचनात्मक नाम से प्रसिद्ध हुई। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इस मनोदृष्टि का मुख्य रूप से आरोपण फ्रेंच विद्वान सेस्यूर द्वारा किया गया। इन्होंने भाषा को एक संरचना के रूप में स्वीकार किया और यह निरूपित किया कि भाषाविद् का उद्देश्य संरचना की निर्माण प्रक्रिया में निहित व्यवस्था का साक्षात्कार एवं वर्णन करना है।

भाषिक संरचना की व्याख्या निम्नलिखित बिंदुओं पर की जा सकती है—भाषा के दो भौतिक तत्व होते हैं—

(अ) अंश

(ब) समग्रता

इन भौतिक तत्वों के मध्य दो प्रकार के संबंध कार्यरत रहते हैं-

(अ) अंश का अंश से संबंध

(ब) अंश का समग्रता से संबंध

इन तत्वों के प्रकार्य भी दो प्रकार के होते हैं—

(अ) अंश का प्रकार्य

(ब) समग्रता का प्रकार्य

संरचना का स्वरूप निर्मायक अंशों की संख्या, उनके संबंध एवं प्रकार्य पर निर्भर करता है और इस आधार पर कोई भी संरचना सरल, जटिल व जटिलतम हो सकती है। भाषिक संरचना एक जटिलतम संरचना का उदाहरण है क्योंकि यह एकाधिक संरचनाओं से निर्मित संरचना है अर्थात् भाषिक संरचना/व्यवस्था में कई उपव्यवस्थाएँ होती हैं और ये समस्त उपव्यवस्थाएँ परस्पर अंतःसंबंधित होती हैं। किसी भाषा की ध्वनियाँ निश्चित क्रम में संयोजित होकर जहाँ एक तरफ शब्द, पदबंध या वाक्य का निर्माण करती हैं वहीं दूसरी तरफ विशिष्ट अर्थ की भी अभिव्यक्ति करती हैं। इसी प्रकार शब्दों को मात्र समूह बद्ध करने से वाक्य निर्मित नहीं होता वरन् शब्दों को सुनिश्चित क्रम में संयोजित करने पर वाक्य की प्रतीति होती है। अतः स्पष्ट है कि भाषिक संरचना कई उपव्यवस्थाओं की ऐसी सुनियोजित व्यवस्था है जिसका प्रत्येक अंश/घटक स्वयं महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ अन्य घटकों से भी संबंधित होता है। उसका अपना निश्चित प्रकार्य है और अन्य अंशों से मिलकर वह किसी भिन्न उद्देश्य को पूर्ण करता है। साथ ही समग्रता में घटक का एक अलग विशिष्ट स्थान और प्रकार्य होता है, यथा— हिंदी की भाषा संरचना का एक ध्वन्यात्मक अंश 'क' ध्वनि है जिसकी विशिष्टता का ज्ञान ख ध्वनि से तुलना करने पर होता है। यह ध्वनि विशेष शब्दों 'कमल, आक्रमण, कंकड़' में अन्य ध्वनियों के साथ संयोजित हो नए शब्दों का निर्माण करती है और ये शब्द वाक्य में आबद्ध हो नए अर्थ का द्योतन करते हैं। भाषिक संरचना की निम्नलिखित विशेषताएँ रेखांकित की जा सकती हैं—

भाषिक संरचना **सुनिश्चित** एवं **व्यवस्थापरक** होती है। यह सुनिश्चितता एवं व्यवस्था भाषा के हर स्तर पर दृष्टिगत होती है। प्रत्येक भाषा मानवीय ध्वनियों द्वारा निर्मित होती है और ये ध्वनियाँ व्यवस्थित क्रम में संयुक्त हो शब्द का निर्माण करती हैं, यथा—हिंदी में 'कमल' तथा 'कलम' शब्दों का निर्माण समान ध्वनियों से हुआ है किंतु ध्वनियों के संयोजन क्रम में भिन्नता है। इन ध्वनियों को 'मकल' या 'लकम' क्रम में रखने पर इनकी अर्थवत्ता नष्ट हो जाती है। भाषा में शब्द से उच्च स्तर की इकाइयों के निर्माण में भी यह व्यवस्था दृष्टिगत होती है, यथा—हिंदी में—

खंड	खंडीय
बहुखंडीय	बहुखंडीयता

शब्दों का निर्माण होता है। इन शब्दों में जुड़ने वाले प्रत्ययों का क्रम भी सुनिश्चित है।

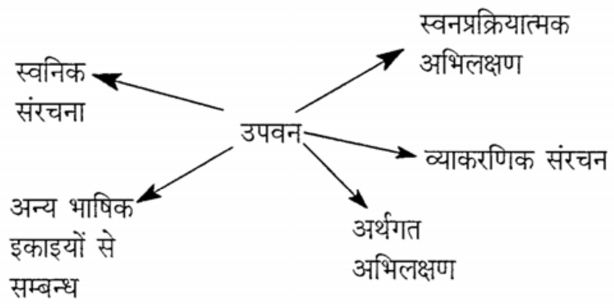
व्यवस्थामय होने के कारण प्रत्येक संरचना **पूर्वानुमेय** होती है। वक्ता भाषार्जन के पश्चात् प्रयोग संदर्भ के आधार पर सरलता से श्रोता के मन्तव्य का पूर्वानुमान कर लेता है, उदाहरणार्थ- 'राम का भाई मेरे विद्यालय में ही' वाक्य का यह अंश सुनते ही श्रोता इसके शेष भाग 'पढ़ता है' का अनुमान लगा लेता है। द्वितीय भाषा की तुलना में मातृभाषा में पुर्वानुमेयता अधिक होती है। यही कारण है कि अत्यंत कोलाहलपूर्ण वातावरण में भी श्रोता वक्ता का आशय समझ लेता है।

भाषा-संरचना निश्चित अंशों का व्यवस्थित क्रम है। व्यवस्थामय होने पर भी भाषा-संरचना अंशों की स्थानापत्ति की जा सकती है। यह स्थानापत्ति पूर्णतः यादृच्छिक न होकर नियमानुसार होती है, यथा- राम जाता है, वाक्य में राम के स्थान पर जहाँ लड़का, घोड़ा, मोहन आदि अनेक पुलिंग संज्ञा शब्दों में से एक का प्रयोग किया जा सकता है वहीं स्त्रीलिंग अथवा नपुंसकलिंग के बहुत से शब्द नहीं प्रयुक्त किए जा सकते हैं। यह विशेषता ध्वनि, व्याकरण व अर्थ सभी स्तरों पर प्राप्त होती है। अतः कह सकते हैं कि भाषिक संरचना **स्थानापत्ति सक्षम साधार** होती है।

भाषिक संरचना **सृजनात्मक** व **उत्पादक** होती है। एक बार भाषा अर्जन के पश्चात् मानव ऐसे असंख्य वाक्यों के अवबोधन व प्रयोग में समर्थ होता है जो पहले उसने कभी न सुने हों और न बोले हों। भाषा-अधिग्रहण से तात्पर्य इन अनंत वाक्यों के प्रयोग की क्षमता को अर्जित करना है। भाषा सीखते समय कोई भी व्यक्ति भाषा विशेष के समस्त संभावित वाक्यों को नहीं सीखता वरन् उस क्षमता को अर्जित करता है जिसके माध्यम से परिस्थिति उत्पन्न होने पर वह नवीन से नवीन वाक्यों का सृजन कर सके। भाषा में प्राप्त पुनरावर्तिता का गुण उसकी उत्पादकता को बढ़ाता है और वक्ता एक सरल या बीज वाक्य से जटिल या आधायित वाक्य का निर्माण कर लेता है।

भाषा-संरचना दृढ़ व स्थिर नहीं वरन् गत्यात्मक (dynamic) है। मानवीय विभूति एवं समाज की उपलब्धि होने के कारण भाषा सतत प्रवाहमान है तथा अनेक बाह्य एवं आंतरिक कारण भाषा के स्वरूप को निरंतर परिवर्तित करते हैं। वक्ता में उच्चारण दोष, श्रोता का श्रवण दोष, भाषा की आंतरिक संरचना के दबाव आदि की गणना आंतरिक कारण में तथा भाषाभाषी समाज, ऐतिहासिक, राजनैतिक, शैक्षिक प्रभाव आदि की गणना बाह्य कारणों में होती है। अतः यह पूर्णतः निश्चित व अपवाद रहित व्यवस्था नहीं है।

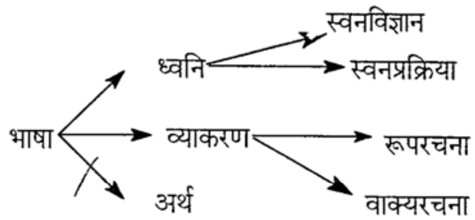
भाषिक संरचना की एक अन्य विशेषता यह है कि वह **बहुआयामी** (multidimentional) होती है। भाषा एकांतिक संरचना नहीं है। इसकी प्रत्येक इकाई एकाधिक संबंधों में आबद्ध रहती है, यथा- हिंदी का निम्न शब्द उपवन लें—



आरेख-2

'उपवन' शब्द के स्वनों का सामान्य वर्णन स्वनिक संरचना का क्षेत्र है। हिंदी भाषा के शब्द में आगत स्वनों के रूप में ये स्वनप्रक्रियात्मक संरचना की दृष्टि से महत्व रखता है। इसका निर्माण 'वन' आधार रूप में 'उप' पूर्व प्रत्यय संयोजन द्वारा हुआ है इस प्रकार के अन्य विवरण व्याकरणिक संरचना से इसको संबंधित करते हैं। विशेष अर्थ का द्योतक होने के कारण ही यह भाषिक इकाई कहलाता है। अंततः हिंदी भाषा के उद्यान, बगीचे आदि शब्द से भी इसका विशेष संबंध है। अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषिक इकाई बहुआयामी होती है।

भाषा एक अत्यंत जटिल संरचना है जिसके समस्त पक्षों व संपूर्ण संबंधों पर एक साथ दृष्टिपात करना एवं उनका सम्यक् वर्णन भाषाविद् के लिए संभव नहीं होता है। अतः अध्ययन में वैज्ञानिकता बनाए रखने के लिए भाषाविद् एक समय में एक पक्ष पर ध्यान केंद्रित करता है और अध्ययन, विश्लेषण व वर्णन के लिए भाषा-संरचना को कुछ स्तरों में विभाजित करता है। ये स्तर विश्लेषण-स्तर (levels of analysis) कहलाते हैं। वास्तव में, ये स्तर भाषा में कहीं अलग-अलग प्राप्त नहीं होते हैं अपितु अध्ययनकर्ता विश्लेषण में सरलता बनाए रखने के लिए इनका निर्माण करता है। ध्यान रहे कि भाषा की अखंडता वर्णन के लिए व्याकृत की जाती है। विषय की पारस्परिक अंतःसंबद्धता के कारण पृथक् होते हुए भी ये स्तर घनिष्ठतः संबंधित रहते हैं। भाषाविदों की भिन्न मनोदृष्टि के अनुरूप भाषा-संरचना के स्तरों की संख्या में परिवर्तन मिलता है। समस्त भाषिक कथनों के दो पक्ष- **रूप** (form) एवं **अर्थ** (meaning) होते हैं और भाषा-प्रयोग के लिए दोनों का होना अनिवार्य है अतः स्तरीकरण की सभी प्रविधियों का प्रमुख आधार भी ये दो पक्ष होते हैं। पारंपरिक व्याकरण भाषा को तीन स्तरों में विभाजित करता है—ध्वनि, व्याकरण एवं अर्थ। संरचनात्मक व्याकरण ध्वनि को स्वनविज्ञान एवं स्वनप्रक्रिया इन दो उपस्तरों में विभाजित करता है तथा व्याकरण का विभाजन रूपरचना एवं वाक्यरचना नामक उपस्तरों में किया जाता है। इस प्रकार संरचनाविद कुल सात स्तरों की चर्चा करते हैं—



आरेख-3

संरचनात्मक व्याकरण के यूरोपीय विद्वान भाषा के इन स्तरों को एक दूसरे से सुसंबद्ध कर भाषा का समग्र चित्र प्रस्तुत करने के पक्षधर हैं जबकि अमरीकी विद्वान इन स्तरों को एक दूसरे से अलग मानते हैं। इनके मतानुसार स्वन प्रक्रिया, रूपरचना एवं वाक्यरचना भाषा के केंद्रीय रूप का निर्माण करते हैं तथा स्वनविज्ञान एवं अर्थ बाह्य सतह का। स्वनविज्ञान का संबंध भाषायी ध्वनियों की औच्चारिक तथा श्रवणात्मक विशेषताओं से होता है अतः इसे प्रत्यक्ष भाषा से संपृक्त नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार अर्थ पक्ष भाषा को जड़ चेतनमय जगत से जोड़ता है तथा अर्थ पक्ष के पूर्ण ज्ञान के लिए प्रयुक्त परिस्थिति, संदर्भ, वक्ता की मनोस्थिति आदि का ज्ञान आवश्यक है। अतः अर्थ का स्तर, महत्वपूर्ण होते हुए भी, भाषा की केंद्रीय संरचना से संबंधित नहीं होता है। कतिपय अमरीकी भाषाविद् इस विश्लेषण को एक दिशिक मानते हैं अर्थात् विश्लेषण निम्न स्तर से उच्च स्तर की दिशा में होता है। साथ ही इस क्रम में न तो परिवर्तन किया जा सकता है और न ही किसी एक स्तर पर अन्य स्तर की सामग्री का उपयोग करना उचित है। परिणामतः स्वनप्रक्रियात्मक स्तर के विश्लेषण में रूपरचना या अर्थ का प्रयोग वर्जित है अथवा व्याकरणिक विश्लेषण में अर्थपक्ष की इकाइयों की सहायता नहीं ली जा सकती है। परवर्ती विद्वानों ने इस प्रकार के 'स्तर पृथक्कीरण' की आलोचना करते हुए कहा कि वस्तुतः इस प्रकार के सैद्धांतिक पार्थक्य तथा विभिन्न स्तरों के संदर्भ में एक दिशिक अनुक्रम की चर्चा करना तर्कसंगत नहीं है।

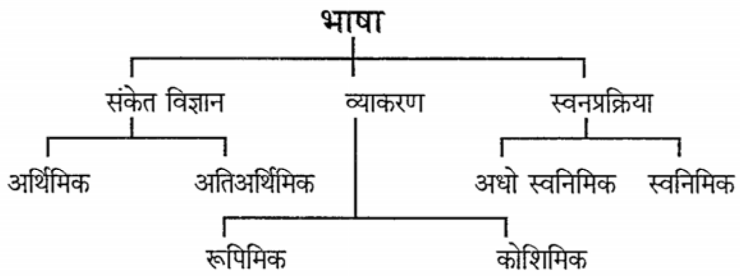
प्रजनक व्याकरण में स्तर (level) के समतुल्य घटक (component) शब्द की चर्चा मिलती है और भाषा को तीन प्रमुख घटकों में विभाजित किया जाता है-

वाक्यीय घटक (syntactic component)

आर्थी घटक (semantic component)

स्वनप्रक्रियात्मक घटक (phonological component)

स्तरपरक व्याकरण में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द तल (strata) भी स्तर के अनुरूप ही है। स्तरपरक व्याकरण के जन्मदाता सिडनी एम. लैम्ब के मतानुसार तलों की संख्या सभी भाषाओं में समान नहीं होती है। सामान्यतया भाषाओं में चार तल अवश्य होते हैं किंतु अंग्रेजी जैसी भाषाओं में छः तल मिलते हैं—

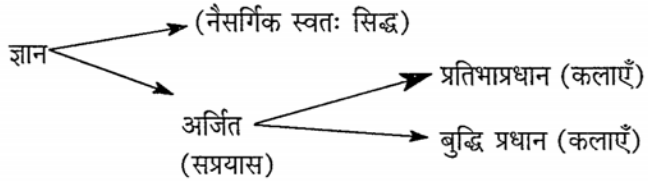


आरेख-4

स्पष्ट है कि भाषा ध्वनि-अर्थ के संबंधों का एक जटिल जालतंत्र है जिसे भिन्न-भिन्न विचारधारा से जुड़े विद्वान विश्लेषण के लिए नाना प्रकार से विभाजित करते हैं।

1.5 भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—भाषा और विज्ञान। भाषा का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर विज्ञान पर विचार करना आवश्यक है। ज्ञान दो प्रकार का होता है- नैसर्गिक एवं अर्जित। नैसर्गिक ज्ञान स्वतः सिद्ध है तथा बिना प्रयास के प्राप्त हो जाता है जबकि अर्जित ज्ञान सप्रयास निश्चित और नियंत्रित परिस्थिति में सीखा जाता है। पूर्व चर्चा के आधार पर कह सकते हैं कि भाषा अर्जित ज्ञान की परिधि में आती है क्योंकि मानव इसे समाज द्वारा प्राप्त करता है। अर्जित ज्ञान को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रतिभा प्रधान एवं बुद्धि प्रधान। इनमें प्रथम विकल्पात्मक, आत्मनिष्ठ तथा देशकाल आबद्ध होता है और द्वितीय विकल्पहीन, वस्तुनिष्ठ, सार्वकालिक व अनुभवाश्रित होता है। विभिन्न कलाएँ प्रथम वर्ग में आती हैं और विज्ञान की गणना द्वितीय वर्ग में होती है।



आरेख-5

विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान जो अकाट्य व अतर्क्य होने के साथ-साथ सार्वभौमिक व सार्वकालिक होता है[6]। भाषाविज्ञान में प्राप्त निम्नांकित विशेषताएँ उसे भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन बनाती हैं :—

भाषाविज्ञान **अनुभवाश्रित** (empirical) अध्ययन है। यह भाषा को भौतिक घटना के रूप में स्वीकार करता है और मूर्त रूप, प्रत्यक्ष एवं इंद्रियगोचर तथ्यों तथा लक्षणों के आधार पर भाषा का वर्णन विश्लेषण करता है। सामाजिक उपादान होने के कारण भाषा सामाजिक संदर्भों व प्रयोगों से घनिष्ठतः संपृक्त होती है, जिनका वर्णन अनुभव के आधार पर भाषाविज्ञान द्वारा किया जाता है। भाषाविज्ञान मूर्त एवं रूपात्मक आधारों को ग्रहण करता है तथा अमूर्त, मायावी, इंद्रियातीत एवं मानसिक आधारों का साग्रह वर्णन करता है अतः इससे तथ्यपरकता मिलती है। अध्ययन का दृष्टिकोण **व्यक्तिनिष्ठ** (subjective) और **वस्तुनिष्ठ** (objective) दो प्रकार का होता है। जब अध्ययनकर्ता की रुचियाँ, अभिरुचियाँ आदि उसके अध्ययन को प्रभावित करें तो उसे व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन कहते हैं और जब अध्ययनकर्ता अपनी पसंद, नापसंद को प्राथमिकता न दे और अध्ययन के केंद्र में अध्येय वस्तु को रखे, ऐसा अध्ययन वस्तुनिष्ठ कहलाता है। चूँकि भाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन विश्लेषण भाषिक आधारों पर करता है और भाषा में प्राप्त लक्षणों, विशेषताओं के आधार पर भाषा का वर्णन विश्लेषण किया जाता है, किसी अन्य भाषा को आदर्श मानकर उसकी विशेषताओं को आरोपित नहीं करता है, अतः इसका अध्ययन दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होता है, जो स्वगत धारणा एवं प्रतीति का निराकरण कर भाषा संबंधी तथ्यों पर प्रकाश डालता है।

भाषाविज्ञान एक वर्णनात्मक विज्ञान है जो सामाजिक संप्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा को स्वीकार करते हुए उसकी स्वरूपगत विशेषताओं के विश्लेषण एवं वर्णन में प्रवृत्त होता है। वर्णन ही इसका साध्य है। भाषा के आदर्श, साधु अथवा परिनिष्ठित रूप के प्रतिपादन अथवा प्रस्थापन में इसकी कोई रुचि नहीं होती। साथ ही इसका उद्देश्य कोई नवीनतम खोज या अन्वेषण करना नहीं है अपितु भाषा के कलेवर में जो कुछ है उसका वर्णन, विश्लेषण मात्र है।

वैज्ञानिकता के आग्रह के परिणामस्वरूप भाषाविज्ञान भाषा विश्लेषण के लिए निश्चित पद्धति कर प्रयोग करता है। यह भाषा के कलेवर में प्राप्त तत्वों व इकाइयों की समान विशेषताओं का आकलन कर उनके समानधर्मी वर्ग एवं उपवर्ग बनाता है और वर्ग के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का तथ्यपरक वर्णन करता है। आवश्यकतानुरूप विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों एवं यंत्रों की सहायता ग्रहण कर उनके गणितात्मक फलों का उपयोग करता है। भाषाविज्ञान वैज्ञानिक निश्चिति एवं अंतःसंगति की पूर्ति हेतु निश्चित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है, जिससे सभी महत्वपूर्ण शब्द निश्चित अर्थ में प्रयुक्त हों।

स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन का विज्ञान है और उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इसे वैज्ञानिक अध्ययन कहना समीचीन होगा। चूँकि भाषा विकासमयी विश्लेषण सापेक्ष, यादृच्छिक है अतः इसका विज्ञान भी स्थिर गतिहीन नहीं वरन् गत्यात्मक, परिवर्तनशील विज्ञान है। विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के अनुसार—

"Linguistics is concerned with such questions as how the linguist defines his object of study; the properties the assumes all languages must have; how these are best described and compared..." Dineen, F.P.

"Linguistics is a cognitive science... we are to discover in each case, the inherrent pattern of a language, not to impose an artificial, elegant but predetermined scheme upon the crude data." Whatmough. J.

Linguistics is a scientific enterprise of investigating languages and dialects which are in use or have been in use by various speech communities through out the world. Carroll, J.B.

Lingiustics is a scientific study of the systems/principles underlying human languages. It is scientific because it follows the general methodology of science.

verma, S.K. Krishnaswamy, N.

भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा विज्ञान कहलाएगा।

—देवेन्द्र नाथ शर्मा

भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों का विवेचन अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते हैं।

—उदय नारायण तिवारी

भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें (क) सामान्य रूप से मानवीय भाषा (ख) किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अंततः (ग) भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं के वर्गों की पारस्परिक समानताओं व विशेषताओं का तुलनात्मक विचार किया जाता है। —मंगलदेव शास्त्री

भाषाविज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है। —श्याम सुन्दर दास

अतः कह सकते हैं वह विज्ञान जो भाषाओं को वर्गीकृत एवं वर्णित करता है भाषाविज्ञान कहलाता है। भाषाविद् भाषा संरचना अर्थात् भाषा की स्वन्यात्मक व्यवस्था की इकाइयों का संज्ञान कर उसके शब्दों, रूपिमों, पदबंध एवं वाक्य का यथासंभव सूक्ष्म, पूर्ण और लघुता युक्त वर्णन करता है। यह एक ऐसा अध्ययन विषय है जिसकी पद्धतियाँ वैज्ञानिक होती हैं तथा अध्येय विषयवस्तु मानव और समाज से संबंधित होने के कारण व्यवस्थामय गत्यात्मकता का अभिलक्षण प्रकट करती है अतः आधुनिक

अध्ययन परंपरा में इस विषय को विज्ञान से विलग 'मानविकी' शीर्षक के अंतर्गत परिगणित किया जाता है।

अध्ययन के अन्य विषयों की तुलना में भाषाविज्ञान एक नवीन विषय कहा जा सकता है, जिसका अध्ययन-अध्यापन विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ही प्रारंभ हुआ और साथ ही जुड़ गई कुछ भ्रामक धारणाएँ, जो आज इतनी दीर्घ अवधि के बाद भी व्यापक तौर पर फैली हैं। प्रथमतः साहित्य व भाषाविज्ञान की सम्यक् प्रतीति, द्वितीय-भाषाविज्ञान का संबंध एकाधिक भाषाओं के ज्ञान से है। किंतु वास्तविकता यह है कि जहाँ साहित्य का संबंध किसी विशेष भाषा से होता है यथा- हिंदी साहित्य, उर्दू साहित्य, अंग्रेजी साहित्य वहीं भाषाविज्ञान का संबंध भाषा सामान्य के अध्ययन से होता है। भाषा सामान्य अर्थात् भाषा का वह रूप जो मानव के मस्तिष्क में नियम समुच्चय के रूप में अवस्थित रह भाषा विशेष को नियंत्रित करता है। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिए ही फ्रेंच, इतावली, स्पेनिश आदि भाषाएँ पृथक्-पृथक् शब्दों का प्रयोग करती हैं, उदाहरणार्थ—

फ्रेंच	langue	–	parole
इतावली	linguaggio	–	lingua
स्पेनिश	linguaje	–	lingua

तालिका के प्रथम शब्द भाषा के मानसिक, अमूर्त रूप का प्रतिरूपण करते हैं और parole, lingua शब्द उसके उच्चरित बोले गए रूप से संबंध रखते हैं।

ध्यातव्य है कि साहित्यिक अध्ययन व्यक्तिनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता की रुचि, अभिरुचि, योग्यता उसके अध्ययन-विश्लेषण को प्रभावित करते हैं जबकि भाषा वैज्ञानिक अध्ययन वस्तुनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता अपनी अध्येय वस्तु में प्राप्त समस्त विशेषताओं का उद्घाटन, विश्लेषण व वर्णन करता है। यह अवश्य है कि जहाँ अन्य अध्ययन विषयों में अध्येय वस्तु एवं अध्ययन माध्यम भिन्न होता है वहीं भाषाविज्ञान में अध्येय वस्तु तथा माध्यम दोनों एक है और यह परिस्थिति भाषा अध्ययन के क्षेत्र में कुछ कठिनाई उत्पन्न करती है, जिसके निराकरण के लिए भाषाविज्ञान निरूपक भाषा (meta language) का प्रयोग करता है।

दूसरी भ्रामक धारणा भाषाविद् एवं बहुभाषी (polyglot) को समान मानने की है। प्रायः समझा जाता है कि यदि कोई भाषाविद् है तो उसे कई भाषाओं का ज्ञान होना स्वाभाविक है जबकि एकाधिक भाषा का ज्ञान भाषाविद् की योग्यता है अनिवार्यता नहीं। भाषाविद् के लिए प्रश्न भाषा बोलने का नहीं वरन् भाषा के विषय में बोलने का है, उन सिद्धांतों के सृजन का है, जो भाषाओं के मूल में निहित नियमों का उद्घाटन करते हैं और एकाधिक भाषाओं के मध्य विद्यमान भिन्नता का विश्लेषण करते हैं। भाषाविज्ञान व्यक्ति में विधिवत् एवं सुव्यवस्थित भाषाध्ययन की रुचि उत्पन्न करता है। उस मनः स्थिति का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह भाषा में घटित विविध लक्षणों

का विश्लेषण करने में समर्थ हो। भाषाविद् बहुभाषाभाषी हो सकता है, जैसे- डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भाषाविद् होने के साथ-साथ बंगाली, हिंदी, अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञाता भी थे, किंतु बहुभाषाभाषी का भाषाविद् होना आवश्यक नहीं, जैसे भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हाराव अनेक भाषाओं के ज्ञाता होते हुए भी भाषाविद् नहीं कहे जा सकते हैं।

1.6 भाषाविज्ञान तथा अन्य ज्ञान विधाएँ

ज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। अध्ययन के विविध विषय उस व्यापकता का अपने विषयानुसार अवलोकन कर, वर्णन करते हैं। गणित, भौतिकशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल आदि नामों से विषय-विभाजन शुद्ध अध्ययन की दृष्टि से है। वास्तव में हर विषय दूसरे से संबंधित होता है। उच्च स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों में पराच्छादन हो, सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। भाषाविज्ञान की विषय वस्तु-भाषा, अध्ययन की प्रत्येक धारा से संबंधित है क्योंकि हर विषय की अभिव्यकि्त भाषा के माध्यम से होती है, जड़चेतनमय जगत के सभी उपादान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस मानवीय विभूति से जुड़े हैं। अतः अध्ययन का प्रत्येक विषय प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से भाषाविज्ञान से संबंधित कहा जा सकता है।

जीवविज्ञान : जीवविज्ञान प्राणियों का अध्ययन करता है और प्राणी की एक विशेषता संप्रेषण है। मानवीय-संप्रेषण के कई साधन हैं, जिनमें से मुख्य भाषा है। मानव के अतिरिक्त सामूहिक जीवन व्यतीत करने वाले अन्य प्राणी भी संप्रेषण करते हैं। जीव विज्ञान ही हमें अन्य प्राणियों की संप्रेषण-व्यवस्थाओं से परिचित कराता है, जिनके आधार पर मानीवय-संप्रेषण की भिन्नता व स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

भौतिकविज्ञान : विभिन्न भौतिक पदार्थों का अध्ययन इसका क्षेत्र है। ध्वनि एक भौतिक उपादान है, जिसके द्वारा भाषा का स्वरूप निर्मित होता है। ध्वनि् की प्रकृति, गुण और विशेषताओं का अध्ययन भौतिकी के अंतर्गत किया जाता है, इसकी दृष्टि में किसी अन्य ध्वनि एवं भाषिक ध्वनि में कोई तात्त्विक अंतर नहीं होता है। भाषा की आधारिक इकाई होने के कारण भाषाविज्ञान ध्वनि का सम्यक् विश्लेषण करने में तत्पर रहता है और इस कार्य में भौतिकविज्ञान उसे सहायता देता है। ध्वनि उच्चारण ही नहीं वरन् प्रसरण एवं श्रवण संबंधी अध्ययन में भी भौतिकी के यंत्र एवं सिद्धांत सहायता देते हैं। आज किंहीं दो ध्वनियों के सूक्ष्मतम भेदों का ज्ञान पूर्णवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा संभव हो गया है।

शरीर-रचना विज्ञान : उच्चारण अवयव कहे जाने वाले अंग-जिह्वा, ओष्ठ, फेफड़े आदि मानव शरीर के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनका मुख्य कार्य श्वास, उच्छ्वास, भोजन ग्रहण आदि है। इन अंगों के विषय में विस्तृत सूचना शरीर-रचना विज्ञान देता

है। वक्ता के वाग्दोषों-हकलाना, तुतलाना, कुछ ध्वनियों के उच्चारण की असमर्थता आदि, के संधान हेतु भाषाविद् तथा चिकित्सक साथ-साथ प्रयास करते हैं। हमारा स्नायुमंडल कैसे वाग्व्यवहार को संचालित करता है? श्रवणेद्रियाँ ध्वनियों को कैसे ग्रहण करती हैं? वक्ता के आशय की सार्थकता समझ श्रोता तदनुकूल किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है आदि प्रश्नों के समाधान इन दोनों विषयों की सहायता से ही संभव है।

गणित : गणित विकल्पहीन, कृत्रिम एवं निश्चित प्रतीक विधान है। विज्ञान के क्षेत्र में न जाने वाले विषय भी अपने निष्कर्षों की अभिव्यक्ति गणितात्मक शब्दावली में करते हैं क्योंकि यह निश्चित व सार्वभौमिक होती है। गणित भाषा का एक विशिष्ट रूप है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कोपेनहैगन संप्रदाय के भाषाविद् हेल्मस्लेव ने गणितात्मक शब्दावली व पद्धति का विशेष प्रयोग किया है। सम्प्रति प्रजनक एवं रूपांतरणशील व्याकरण के अंतर्गत सुनिश्चितता, स्पष्टता एवं संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए गणित के अमूर्त प्रत्ययों व सूत्रों का अत्यधिक प्रयोग किया गया।

दर्शनशास्त्र : भारत व पाश्चात्य दोनों ही स्थानों पर भाषा संबंधी अध्ययन का प्रादुर्भाव, मानव की अपने चतुर्दिक् प्राप्त उपादानों घटनाओं आदि के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा का परिणाम है और यही जिज्ञासा दर्शन के मूल में है। दर्शन मानव ज्ञान-पिपासा व चिंतन-शक्ति का परिणाम है। चूँकि भाषा के माध्यम से विभिन्न जागतिक वस्तुओं का नामांकन किया जाता है अतः प्रारंभ से ही मानव की जिज्ञासा नाम व पदार्थ का संबंध जानने की रही है। विभिन्न प्राच्य व पाश्चात्य चिन्तक अपनी दार्शनिक प्रमेयों व प्रस्थापना की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करते हैं। दर्शन चूँकि आनुभविक विज्ञान नहीं है और दार्शनिक प्रस्थापनाएँ भाषा के माध्यम से ही रूपायित होती हैं अतः इन दोनों अध्ययन-विषयों में घनिष्ठ संबंध है।

समाजशास्त्र : समाजशास्त्र में मानव-समाज का अध्ययन किया जाता है और भाषाविज्ञान की विषय वस्तु भाषा का अर्जन इस समाज पर निर्भर करता है। समाज में निवसित होने के कारण ही व्यक्ति को भाषा की आवश्यकता होती है। समाज की सत्ता भाषा पर आश्रित होती है अतः कह सकते हैं कि समाज और भाषा सिक्के के दो पार्श्वों की भाँति हैं जिन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। साथ ही समाज की लघुतम इकाई मानव है और भाषा भी रूपायित होती है मानव द्वारा। जिस प्रकार भाषा हर भाषाभाषी को अप्रत्यक्ष रूप से बाँधे रहती है उसी प्रकार समाज भी व्यक्ति पर बंधन लगाता है। भाषा और समाज परस्पर संबंधित होने के साथ-साथ मानव रूपी कड़ी द्वारा भी घनिष्ठतः सम्पृक्त हैं। समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ, अच्छाई-बुराई, ऊँच-नीच, सत्य-असत्य सभी भाषा में प्रतिबिंबित होता है। समाज के विभिन्न वर्गों के अनुरूप भाषा में वर्गीय रूप प्राप्त होते हैं, यथा—शिक्षित वर्ग/अशिक्षित वर्ग; प्रौढ़ वर्ग/युवा वर्ग; उच्च वर्ग/निम्न वर्ग सभी की भाषा भिन्न-भिन्न होती है। स्पष्ट है कि भाषा-अधिग्रहण, भाषा-प्रयोग व भाषा-परिवर्तन समाज पर निर्भर है। न तो मानव

समाज के अभाव में भाषा सीख सकता है और न ही एकाकी मानव भाषा को बोल सकता है और न ही भाषा का विकास समाज के अभाव में होगा। इन दोनों विषयों के सम्मिलन से जिस शाखा का प्रारंभ हुआ उसे आज समाज भाषाविज्ञान नाम दिया गया जिसे संप्रति अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की उपशाखा के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। समाज में हुई नवीन खोज, कोई विशिष्ट घटना सबका योगदान भाषा स्वरूप के निर्धारण में होता है, उदाहरणार्थ आज कम्प्यूटर का युग है जिसका प्रभाव हिंदी भाषा पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

मनोविज्ञान : मानवीय-व्यवहार का परीक्षण, अध्ययन व विश्लेषण मनोविज्ञान का क्षेत्र है। मानवीय-व्यवहार का एक बहुत बड़ा भाग वाक्व्यवहार के रूप में घटित होता है अतः वाक्व्यवहार भी मनोविज्ञान की परिसीमा के अंतर्गत आता है। हमारा नित्य प्रति का दैनिक वाक्व्यवहार जो हमारे परिवेश के प्रति हमारी ध्वन्यात्मक प्रतिक्रिया है, सामूहिक रूप से भाषा कहलाता है। मनुष्य के अवचेतन में भाषा एक सामाजिक संपदा के रूप में अवस्थित रहती है। परिस्थिति विशेष में मनुष्य कैसे अपनी वाचिक प्रतिक्रिया निर्धारित करता है? किस प्रकार संग्रहीत घटनाओं भावों से शब्दों को संबंधित करता है? कैसे इन शब्दों को वाक्यीय रचनाओं के रूप में प्रस्तुत करता है? इन तथ्यों का विवेचन मनोविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। चूँकि ये तथ्य भाषा से भी संबंधित हैं अतः भाषाविज्ञान मनोविज्ञान से सहायता प्राप्त कर इस संबंध में अध्ययन-विश्लेषण करता है। येस्पर्सन, सपीर आदि अनेक भाषाविदों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर भाषा को परिभाषित किया। **फ्रॉज बोआज़** तथा **वूर्फ** ने अनेक व्याकरणिक विशेषताओं को भाषाभाषी जाति के मानसिक चिंतन से जोड़ने का प्रयत्न किया। स्वयं प्रसिद्ध अमरीकी भाषाविद् **ब्लूमफील्ड** की प्रथम पुस्तक मनोवैज्ञानिक प्रभाव से मुक्त नहीं थी किंतु अपने परवर्ती अध्ययनों में इन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार का खंडन कर, भाषाविज्ञान का स्वयत्तापूर्ण स्वतंत्र क्षेत्र सुनिश्चित किया। सम्प्रति भाषाविज्ञान एवं मनोविज्ञान के संबंधों में पुनः निकटता आ गई है। प्रजनक व्याकरण के प्रणेता **चॉम्स्की** अपने अध्ययन का उद्देश्य भाषाभाषी की भाषिक दक्षता का उद्घाटन बताते हैं और इस दृष्टि से उन्होंने अनेक मनोवैज्ञानिक आधारों को अपनी विश्लेषण पद्धति में समाहित किया है। भाषा-अर्जन, भाषा-अधिग्रहण एवं भाषा-शिक्षण जैसे क्षेत्रों में भी मनोवैज्ञानिक आधार सहायता देते हैं। इस घनिष्ठता के फलस्वरूप भाषाविज्ञान की नवीन शाखा-मनोभाषाविज्ञान का उद्भव हुआ है।

मानवविज्ञान : मानवविज्ञान का विषय-क्षेत्र मानव से संबंधित है। इसके दो उपविभाग किए जाते हैं—सांस्कृतिक मानवविज्ञान तथा शारीरिक मानवविज्ञान। प्रथम में संस्कृति का अध्ययन किया जाता है और द्वितीय का क्षेत्र मानव उद्विकास का अध्ययन है। भाषाविज्ञान का संबंध सांस्कृतिक मानव विज्ञान से है क्योंकि इसमें मानवीय संस्कृति की उद्भावना एवं विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता

है। समाज के सदस्य के रूप में मानव जो कुछ भी सीखता है वह संस्कृति है। चूँकि भाषा भी अर्जित व्यवहार है अतः इसकी गणना भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। समस्त अर्जित-व्यवहार के भौतिक व मानसिक दो पक्ष होते हैं। संस्कृति का भौतिक पक्ष सभ्यता का द्योतक है जबकि मानसिक पक्ष का संबंध अवधारणा, आदर्श, मान्यताओं से रहता है। वस्तुतः भाषा की भाँति संस्कृति भी सामाजिक तथ्य है। जिस प्रकार मनुष्य भाषार्जन की प्राकृत क्षमता रखते हुए भी जन्मतः भाषाभाषी नहीं होता उसी प्रकार वह संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता।

समाज विशेष की संस्कृति का ज्ञान जीवन के अन्य पक्षों के अतिरिक्त मुख्यतः भाषा के माध्यम से किया जा सकता है। भाषा किसी संस्कृति को समझने में बहुत सहायता देती है। इसी प्रकार भाषा के अर्थ पक्ष की संपूर्ण जानकारी हेतु विभिन्न भाषिक कथनों के वास्तविक संदर्भ का ज्ञान अनिवार्य होता है। अनेक कथन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रखे बिना सम्यक् अर्थ प्रतीति नहीं कराते हैं, यथा—हिंदी में चेचक के लिए-माता, मृत शरीर के लिए-मिट्टी, निम्न वर्ग के लिए-हरिजन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इनका अर्थ संदर्भ के अभाव में ज्ञात नहीं किया जा सकता है। भाषायी कथनों को उनके वास्तविक सांस्कृतिक संदर्भ में रखना उस समय और आवश्यक हो जाता है जब भाषाविद् या नृविद् किसी दूरागत तथा अपरिचित भाषा या संस्कृति का अध्ययन कर रहा हो क्योंकि परिचित भाषा व संस्कृति के संबंध में अनेक तथ्य विद्वान स्वयं बता सकता है। संस्कृति की उपयोगिता पर सर्वप्रथम बल आंग्ल नृविद् **मैलिनोवस्की** ने दिया। इन्होंने पूर्वी द्वीप समूह में निवसित जाति की संस्कृति का अध्ययन किया और अनेक ऐसे शब्दों की सूची बनाई जिनका अर्थ सांस्कृतिक परिवेश के ज्ञान के बिना ज्ञात नहीं किया जा सकता था। स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान व मानवविज्ञान/नृविज्ञान घनिष्ठतः संबंधित हैं। एक मानवीय भाषा का अध्ययन करता है तो दूसरे का विषय क्षेत्र मानवीय संस्कृति है और ये दोनों अंतःसंबंधित विषय हैं।

भूगोल : किसी भूखंड की भौगोलिक विशेषता का प्रभाव वहाँ निवसित व्यक्तियों की सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा के साथ-साथ भाषा पर भी पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कोई क्षेत्र कृषि प्रधान और कोई उद्योग प्रधान होता है। कृषि प्रधान क्षेत्रों में कृषि संबंधी शब्दावली व औद्योगिक क्षेत्रों में तत्संबंधी शब्दों का बाहुल्य मिलता है। भाषा के प्रसार और विकास में भी भौगोलिक परिस्थितियाँ सहायक होती हैं। मैदानिक क्षेत्रों की तुलना में पहाड़ी या वन प्रदेश की भाषाओं का प्रसार कम होता है। साथ ही प्राकृतिक बाधाएँ, यथा—भूकंप, जलप्लावन आदि कभी-कभी भाषा के परिवर्तन या भाषा के विभाजन का कारण बनती हैं। प्राकृतिक विपदाओं के कारण एक बड़ा भाषा-क्षेत्र कई छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित हो जाता है और प्रत्येक क्षेत्र में एक नवीन बोली का विकास होता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ उच्चारण अवयवों को भी प्रभावित करती हैं, यथा—शीत प्रधान देशों में

प्रायः दंत्य ध्वनियों (त, थ, द) के स्थान पर मूर्धन्य (ट, ण, ड) ध्वनियाँ मिलती हैं क्योंकि शीत के कारण इस प्रदेश के निवासियों का वाग्यंत्र उष्ण देशवासियों की तुलना में कम खुलता है। भाषा का अर्थ पक्ष भी भूगोल से प्रभावित होता है, यथा—वैदिक काल में उष्ट्र का अर्थ भैंसा था जो उस काल का एक उपयोगी पशु था। जब आर्य फारस की दिशा में बढ़े तो वहाँ के उपयोगी पशु ऊँट को उष्ट्र कहना प्रारंभ कर दिया।

1.7 भाषाविज्ञान की शाखाएँ

भाषाविज्ञान का क्षेत्र एकाधिक उपक्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है और यह विभाजन विशिष्ट दृष्टिकोण अथवा क्षेत्र विशेष पर अधिक बल आदि कई आधार पर संभव है। एक विभाजन भाषा सामान्य व भाषा विशेष की भिन्नता को स्पष्ट करता है। जहाँ **सामान्य भाषाविज्ञान** द्वारा प्रस्तुत प्रमेयों और कोटियों के आधार पर भाषा विशेष का विश्लेषण होता है वहीं **वर्णनात्मक भाषाविज्ञान** द्वारा प्रस्तुत भाषिक सामग्री के आधार पर ही सामान्य भाषाविज्ञान द्वारा निर्मित सिद्धांतों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है, यथा- सामान्य भाषाविज्ञान परिकल्पना करता है कि संज्ञा व क्रिया शब्दवर्ग सार्वभाषिक हैं। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान एकत्रित सामग्री के आधार पर इस परिकल्पना को प्रामाणिक या अप्रामाणिक सिद्ध कर सकता है। किसी भाषा विशेष में यदि शब्दों का यह वर्गीकरण नहीं मिलता है तो परिकल्पना अप्रमाणित सिद्ध हो जाएगी। किंतु इसको सिद्ध करने के लिए वर्णनात्मक भाषाविद् को 'संज्ञा' और 'क्रिया' को परिभाषित करना आवश्यक होगा और यह कार्य सामान्य भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आता है। स्पष्ट है कि सामान्य भाषाविज्ञान एवं वर्णनात्मक भाषाविज्ञान परस्पर घनिष्ठतः संबंधित होने के साथ-साथ एक दूसरे के पूरक भी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग सभी भाषाविद् विविध भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम को ज्ञात कर भाषा-परिवर्तन के सामान्य नियम बनाने में संलग्न रहे। भाषाविज्ञान की वह शाखा जो इन तथ्यों का अध्ययन करती है **ऐतिहासिक भाषाविज्ञान** कहलाती है। इसके अंतर्गत भाषाविशेष के प्राचीन रूपों से नवीन रूपों की प्रवाहमान गति का अध्ययन किया जाता है, यथा—यदि कोई अध्ययनकर्ता आज की हिंदी उसके प्राचीन रूप अपभ्रंश, उसकी पूर्ववर्ती स्थिति प्राकृत, पालि तथा अधिक विस्तृत क्षेत्र का चयन करने पर लौकिक एवं वैदिक संस्कृत तक भाषा में हुए परिवर्तन व विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण करे तो यह भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन कहलाएगा। ऐतिहासिक अध्ययन दो दिशाओं में किया जा सकता है—**अज्ञात से ज्ञात की ओर-** प्राचीन भाषा-रूप से आधुनिक भाषा-रूप का विकास; **ज्ञात से अज्ञात की ओर-** भाषा के ज्ञात वर्तमान स्वरूप के आधार पर अज्ञात स्वरूप की खोज। फ्रेंच विद्वान **फर्दिनान्द डि सेस्यूर** द्वारा प्रयुक्त **एककालिक** (synchronic) एवं **द्विकालिक** (diachronic) शब्दों की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी। द्विकालिक

अध्ययन किसी भाषा की दो काल स्थितियों के मध्य हुए परिवर्तन के कारणों तथा परिणामों के आधार पर भाषा के ऐतिहासिक विकासक्रम को स्पष्ट करता है अतः यह ऐतिहासिक के समतुल्य कहा जा सकता है। कालक्रमानुगत होने के कारण सेस्यूर ने इसे गत्यात्मक प्रणाली कहा है। एककालिक अध्ययन में भाषा विशेष की एक काल स्थिति के यथास्थित स्वरूप का विश्लेषण एवं वर्णन किया जाता है अर्थात् एक समय बिंदु पर किसी भाषा में प्राप्त समस्त विशेषताओं का वर्णन एककालिक कहलाता है। सेस्यूर इसे स्थिर प्रणाली मानते हैं। एककालिक अध्ययन वर्णनात्मक अध्ययन के समतुल्य होता है।

तृतीय वर्गीकरण **सैद्धांतिक** एवं **अनुप्रयुक्त** भाषाविज्ञान के मध्य मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक की विषयवस्तु को इसी वर्गीकरण के आधार पर बाँटा गया है। भाषाविद् के लिए भाषा साध्य भी है और साधन भी। साध्य के रूप में भाषा विश्लेष्य सामग्री है और साधन के रूप में विश्लेषण उपकरण। अध्येय वस्तु/साध्य को **वस्तुभाषा** (object language) कहा जाता है और माध्यम/साधन को **निरूपक भाषा** (meta language) की संज्ञा दी जाती है। सैद्धांतिक भाषाविज्ञान का केंद्र निरूपक भाषा होती है। उसका उद्देश्य वस्तु भाषा से संबंधित सिद्धांतों का प्रतिपादन तथा उन सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषण प्रणाली का विकास करना है। ध्यातव्य है कि सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के लिए भाषाविशेष से ली गई सामग्री दृष्टांत मात्र होती है वस्तुतः वह विश्व की समस्त भाषाओं के पीछे कार्यरत नियम को जानने की चेष्टा करता है और इन्हीं नियमों के आधार पर भाषाओं की सार्वभौम (universal) प्रकृति पर प्रकाश डालता है। भाषा की आंतरिक प्रकृति को समझने के लिए भाषाविदों ने भिन्न दृष्टिकोणों से सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। जहाँ अमरीकी भाषाविद् **ब्लूमफील्ड** वस्तु भाषा को भाषा संरचना का केंद्र मानते हैं वहीं चॉम्स्की मानव मन की भाषायी चेतना को। हर सिद्धांत अपने को व्यावहारिक बनाने के लिए एक प्रारूप निर्मित करता है। इस प्रकार भाषाविदों की भिन्न अंतर्दृष्टि के आधार पर सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के दो निश्चित संदर्भ-सिद्धांत तथा भाषा वर्णन होते हैं। शुद्ध सिद्धांत के रूप में निरूपक भाषा केंद्र में रहती है जिसकी प्रकृति व्यवस्थित, सर्वांगीण तथा निर्भ्रान्त होती है तथा भाषा-वर्णन का संबंध सिद्धांत प्रेरित प्रारूप से होता है।

अध्ययन का वह विषय जो 'भाषा का वैज्ञानिक वर्णन-विश्लेषण' करता है भाषाविज्ञान नाम से अभिहित किया जाता है। यहाँ 'भाषा' शब्द का प्रयोग किसी विशेष भाषा के संदर्भ में न होकर भाषा सामान्य के लिए किया गया है। इस प्रकार भाषा की संरचना एवं उसकी आंतरिक प्रकृति से संबद्ध विषय भाषाविज्ञान है जिसका उद्देश्य भाषा संरचना का वर्णन विश्लेषण कर सिद्धांतों का निर्माण करना है। भाषाविद् के लिए भाषा साध्य भी है और साधन भी। साध्य के रूप में भाषा विश्लेष्य सामग्री है और साधन के रूप में विश्लेषण उपकरण। भाषा की आंतरिक प्रकृति को समझने के लिए विद्वानों ने विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। किसी ने भाषा को निर्मायक घटकों

का जाल कह उसकी रूपात्मकता पर बल दिया तो अन्य ने उसकी सृजनशीलता एवं प्रजनकता को रेखांकित किया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अंतर्दृष्टियों के आधार पर भाषिक सिद्धांत का निर्माण एवं सिद्धांत प्रेरित प्रारूप द्वारा भाषा का वर्णन किया गया। इसे ही सैद्धांतिक भाषाविज्ञान नाम भी दिया गया। सैद्धांतिक भाषाविज्ञान का केंद्र साधन/माध्यम या निरूपक भाषा होती है जिसका उद्देश्य साध्य/वस्तु भाषा से संबंधित सिद्धांतों का प्रतिपादन तथा उन सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषण प्रणाली का विकास करना है। इसके लिए भाषा विशेष से ली गई सामग्री दृष्टान्त मात्र होती है वस्तुतः सैद्धांतिक भाषाविज्ञान विश्व की समस्त भाषाओं के पीछे कार्यरत सार्वभौम नियम जानने की चेष्टा करता है। वर्णन के आधार पर निर्मित भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों का किसी लक्ष्य विशेष की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयोग ही 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' कहलाता है।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के विचारानुसार

"अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसका मुख्य लक्ष्य भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों एवं प्रणाली के अनुप्रयोग द्वारा उन भाषायी समस्याओं का पता लगाना और उनका समाधान ढूंढ़ना है जो भाषा से इतर विषय क्षेत्रों के अनुभव से संबद्ध होती हैं।"

सन् 1974 में कुछ इसी प्रकार के विचार पिट कार्डर द्वारा भी व्यक्त किए गए थे--

"Applied linguistics is the utilization of the knowledge about the nature of language achieved by linguistic research for the improvement of the efficiency of some practical task in which language is a central component."

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को एक स्वतंत्र वैज्ञानिक विषय माना जाए या यह सैद्धांतिक भाषाविज्ञान पर निर्भर एक तकनीक है इस बिंदु पर विद्वानों में मतभेद है। जैसा कि उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि आरंभ में विद्वानों ने इसे भाषावैज्ञानिक प्रकृति, स्वरूप और प्रयोजन को निम्न रूप में देखा जा सकता है--

(i) यह उपभोक्ता सापेक्ष विषय है।
(ii) इसका उद्देश्य इस तथ्य को प्रकाशित करता है कि 'भाषा हमारे किस-किस काम आती है?
(iii) इसका संबंध मानवीय समस्याओं से होता है।
(iv) अंतर्विषयी अध्ययन विषय होने के कारण यह एक अंतःप्रक्रियात्मक विषय कहा जा सकता है।
(v) मानवीय एवं अंतःप्रक्रियात्मक होने के कारण यह समस्या के स्वरूप के अनुरूप परिवर्तित होता है अतः इसको परिभाषा में बाँधना कठिन है।

आधुनिक भाषाविदों के मतानुसार—अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का लक्ष्य मात्र भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों एवं प्रणाली का अनुप्रयोग नहीं है वरन् इसका अपना दर्शन है तथा यह निश्चित सिद्धांत युक्त स्वयं एक स्वतंत्र अध्ययन विषय है। जिसकी प्रकृति प्रकार्यात्मक होती है। सामान्यतः इसका प्रयोग वक्ता की मनःस्थिति को समझने के लिए **मनोभाषाविज्ञान**, समाज पर भाषा के प्रभाव को ज्ञात करने के लिए **समाजभाषाविज्ञान**, भाषा विशेष में रचित साहित्य की संरचनात्मक व्याख्या के लिए **शैलीविज्ञान**, मानव तथा मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति से भाषा के संबंध को ज्ञात करने के लिए **नृभाषाविज्ञान**, अनुवाद से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु **अनुवाद विज्ञान**, मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा शिक्षण की प्रकृति एवं प्रश्नों के निराकरण हेतु **भाषाशिक्षण**, **भाषा नियोजन**, **शब्दकोश** निर्माणार्थ आदि क्षेत्रों में हो रहा है। व्यवहार व प्रयोग की दृष्टि से अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के दो रूप हैं—सीमित और व्यापक। सीमित रूप में यह भाषाशिक्षण का पर्याय माना जाता है और व्यापक रूप में इसकी सीमा में अन्य अंतर्विषय आते हैं। मानवीय समस्याओं से संबंधित होने के कारण अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान गत्यात्मक होता है जबकि सैद्धांतिक भाषाविज्ञान प्रकृत्यः स्थिर होता है। अंतर्विषयी एवं बहुविषयी होने के कारण अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान जहाँ अंतर्प्रक्रियात्मक होता है वहाँ सैद्धांतिक भाषाविज्ञान पृथक्करण पर बल देने के कारण अन्य विषयों से अलग-थलग भाषा घटना का अध्ययन करने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह विषय गत्यात्मक, मानवीय एवं अंतर्प्रक्रियात्मक है जो प्रत्येक समस्या के साथ पुनर्परिभाषित होता है।

विषयवस्तु की संकीर्णता और विस्तार के आधार पर विगत कुछ वर्षों से भाषाविज्ञान को **सूक्ष्म** (micro) और **बृहत्** (macro) इन वर्गों में विभाजित किया जा रहा है। संकीर्ण विचारधारा भाषाविज्ञान को स्वतंत्र विज्ञान के रूप में स्थापित करती है जिसका उद्देश्य भाषा के एककालिक वर्णन के लिए सामान्य सिद्धांत का निर्माण करना है। मानव भाषार्जन कैसे करता है? समाज में भाषा का क्या स्थान है? भाषा का संस्कृति, दर्शन या तर्कशास्त्र से क्या संबंध है आदि प्रश्नों का समाधान बृहत्भाषिकी द्वारा होता है। सर्वप्रथम सेस्यूर ने भाषाध्ययन के संकुचित क्षेत्र की आवश्यकता पर बल दिया और यह प्रतिपादित किया कि भाषाविज्ञान का उद्देश्य भाषा के कलेवर में प्राप्त समस्त विशेषताओं का भाषिक आधार पर वर्णन करना है। इस प्रकार सूक्ष्म भाषाविज्ञान भाषायी संरचना-ध्वनि, व्याकरण तथा अर्थ का वर्णन-विश्लेषण भाषिक आधार पर करने का प्रयास करता है। समाज, मानव व संस्कृति से संबंधित होने के कारण भाषिक अर्थ का अध्ययन कुछ समस्याएँ उत्पन्न करता है। बृहत् भाषाविज्ञान में वह सभी परीक्षण, विश्लेषण व शोधकार्य आते हैं जो मानव की ज्ञान वृद्धि करते हैं तथा भाषायी तत्वों से भिन्न होते हुए भी मानवीय-संप्रेषण-प्रक्रिया से सीधे संबंधित होते हैं, यथा—बोली का अध्ययन सूक्ष्म भाषाविज्ञान की सीमा में आता है किंतु

यदि अध्ययनकर्ता सूचक की संस्कृति से प्रभावित भाषिक-अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करें अथवा सूचक के व्यक्तित्व को उजागर करने वाले कथनों की समीक्षा करें तो अध्ययन सूक्ष्म की सीमा पार कर बृहत् भाषाविज्ञान के अंतर्गत आ जाएगा। चूँकि भाषाविज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों के लिए भी भाषा का महत्व है अतः आधुनिक समय में अनेक अंतर्विषयी क्षेत्र प्रकाश में आए हैं—संगणक भाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी आदि की गणना बृहत् भाषाविज्ञान के अंतर्गत होती है। कतिपय विद्वान सैद्धांतिक और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के वर्गीकरण तथ सूक्ष्म और बृहत् भाषाविज्ञान के विभाजन को सदृश समझने की भूल करते हैं, वस्तुतः प्रत्येक बृहत् भाषाविज्ञान की शाखा का एक सैद्धांतिक पक्ष भी होना अनिवार्य है।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. Communication is ... essentially the relationship set up by the transmission of stimuli and the evocation of responses.
   – Colin Cherry.
2. Man is a man because of language he has to become human to invent language. – W.Von Humboldt
3. अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला में 81 प्रतीकों का प्रयोग भाषा की इस सार्वभौमिकता को रेखांकित करता है।
4. रघुवंश के प्रारंभ में लिखा गया महाकवि कालिदास का निम्न श्लोक भाषा की द्विवपक्षीयता का ही संकेतक है-

   वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।

   जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।। 1/1

   भाषा की इसी विशेषता का उल्लेख महाकवि कालिदास द्वारा भी किया गया है*

   गिरा अर्थ जल-बीचि सम

   कहियत भिन्न न भिन्न। रामचरितमानस 1/18/1
5. The virtue of a language is measured by ability to accomplish much with little means, or, in other words ... to express greatest amount of meaning with the simplest mechanism.
   –W.Von Humboldt
6. (अ) ... it will be sufficient to say that by the scientific study of language is meant its investigation by means of empirically verifiable observation and with reference to some general theory of language-structure. – Lyons.

   (आ) science, ... is nothing, but trained and organised common sense Huxley, T.
7. हेल्मस्लेव के मतानुसार, a totality does not consist of things but of relationships.
8. Language is not a system but system of systems. – Saussure, F.

स्वनविज्ञान

2.1 स्वनविज्ञान का स्वरूप

स्वनविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसमें भाषायी ध्वनियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन, विश्लेषण तथा वर्गीकरण किया जाता है। विश्व की समस्त भाषाओं में प्राप्त ध्वनियों के सूक्ष्म अंतरों को ज्ञात करना, इन ध्वनियों के उच्चारण स्थान और उनके लिए अपेक्षित प्रयत्नों को जानना तथा उनका स्पष्ट उल्लेख करना और इन ध्वनियों को स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से वर्गीकृत करना स्वनविज्ञान का उद्देश्य एवं क्षेत्र है। चूँकि ध्वनियाँ बोली व सुनी जाती हैं और व्यक्ति बोलते समय स्वयं भी सुनता है तथा श्रवण शक्ति के अभाव में व्यक्ति का बोलना प्रभावित होता है अतः स्वनविज्ञान उत्पादन एवं ग्रहण दो आधारों पर निर्भर है। इन दोनों के अतिरिक्त ध्वनि का तीसरा क्षेत्र वक्ता के मुख से बाहर तथा श्रोता के कानों के पूर्व होता है। हमारे चतुर्दिक् असंख्य वायुकण प्रवाहित हैं। कोई भी ध्वनि तरंग के रूप में होती है और ध्वनि बोले जाने पर यह तरंगें वायुकणों को विक्षुब्ध करती हैं और ध्वनि कणों द्वारा संवहित होती हुई श्रोता के कानों तक पहुँचती हैं। इस प्रकार उच्चारण प्रसरण एवं श्रवण की मूलभूत स्थापना के आधार पर स्वनविज्ञान की तीन शाखाएँ की जाती हैं।[1]

(क) उच्चारणमूलक स्वनविज्ञान (articulatory phonetics)

(ख) संवहन मूलक स्वनविज्ञान (acoustic phonetics)

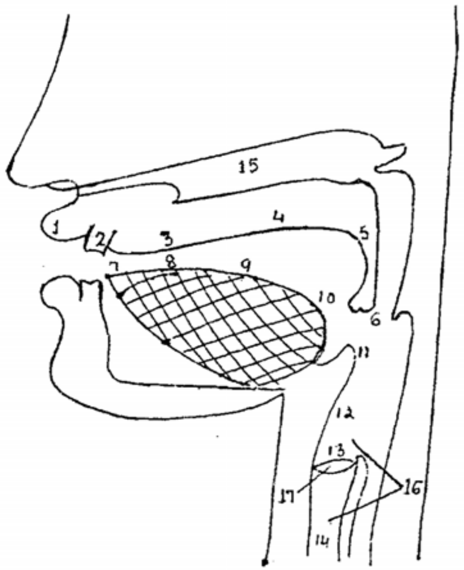
(ग) श्रवणमूलक स्वनविज्ञान (auditory phonetics)

स्वनविज्ञान की वह शाखा जिसमें ध्वनियों का अध्ययन उनके उच्चारण में प्रयुक्त अवयवों की संचालन-प्रक्रिया के आधार पर होता है अर्थात् विभिन्न भाषायी ध्वनियों के उच्चारण में कौन से अंग किस प्रकार सहायता करते हैं इसका वर्णन उच्चारणमूलक स्वनविज्ञान का क्षेत्र हैं।

द्वितीय शाखा में ध्वनियों का विश्लेषण अध्ययन तरंगों के रूप में किया जाता है। ध्वनियों के उच्चारण में निहित विशेषताओं की पहचान यंत्रों द्वारा तरंगों के रूप में होती है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् स्वनविज्ञान की इस शाखा के क्षेत्र में अत्यधिक विकास हुआ। आज ध्वनि तरंगों का विश्लेषण उनकी घटक आवृत्तियों एवं संबंधित आयामों में किया जाता है। इसकी सहायता से स्वनिम तथा सहस्वनिमों का

निश्चयन और वर्णन सरल हुआ है तथा विभिन्न ध्वनियों में प्राप्त भेदक विशेषताएँ कंपनावृत्तियों की सहायता से ज्ञात की जाती है। श्रवणेंद्रिय द्वारा ध्वनियों को ग्रहण किए जाने की संक्रियाओं का वर्णन, विश्लेषण श्रवणमूलक स्वनविज्ञान के अंतर्गत होता है। वक्ता द्वारा उच्चरित ध्वनि तरंगों के रूप में श्रोता तक पहुँचती है। इन ध्वनियों या ध्वनिगुण समवाय से जो अर्थगत धारणा बनती है उसमें मस्तिष्क निश्चायक और निर्णायक का कार्य करता है। वस्तुतः उच्चरित ध्वनियों को ग्रहण कर कान उन्हें मस्तिष्क को प्रेषित करता है। अतः कानों का कार्य सम्प्रेषक का है जो भाषा के अर्थ-पक्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2.2 उच्चारण अवयव



आरेख-6

1. ओष्ठ 2. दंत 3. वर्त्स्य 4. कठोर तालु 5. कोमल तालु 6. अलिजिह्वा 7. जिह्वा नोंक 8. जिह्वा फलक 9. जिह्वाग्र 10. जिह्वा पश्च 11. उपजिह्वा 12. ग्रसनी विवर 13. स्वरयंत्र की स्थिति 14. श्वास नलिका 15. नासिका विवर 16. स्वरयंत्र 17 श्वास द्वार।

उच्चारण अंगों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—श्वासांग, स्वरयंत्र और उपरिश्वासद्वारीय विवर।

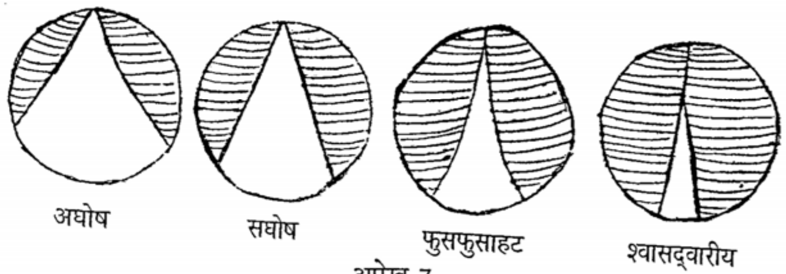
श्वासांग

फेफड़े से वायुप्रवाह अंतर्गामी एवं बर्हिगामी दो प्रकार का होता है। सामान्यतः भाषायी ध्वनियाँ बहिर्गामी वायु प्रवाह से उच्चरित होती हैं। किंतु कतिपय भाषाओं में ध्वनियाँ अंतर्गामी प्रवाह से उच्चरित होती हैं, यथा- नार्वीजयन भाषा के शब्द के उच्चारण में अंतर्गामी ध्वनि का प्रयोग होता है। जिन ध्वनियों के उच्चारण में बहिर्गामी वायु का प्रवाह सामान्य होता है उन्हें **अल्पप्राण** ध्वनियाँ कहते हैं तथा जिन ध्वनियों के उच्चारण में सामान्य से अधिक वायु निकलती है उन्हें **महाप्राण** ध्वनियाँ कहते हैं, यथा—हिंदी क, ग की तुलना में ख, घ ध्वनियों के उच्चारण में अधिक शारीरिक ऊर्जा का प्रयोग होता है। कुछ भाषाओं में ये भिन्नता प्रभदेक (अर्थ में परिवर्तन लाने वाली) होती है, यथा—हिंदी में—काल-खाल; फल-वल; गिन-छिन; तन-थन। हिंदी व्यंजन शृंखला के प्रथम एवं तृतीय व्यंजन अल्पप्राण तथा द्वितीय और चतुर्थ व्यंजन महाप्राण ध्वनियाँ हैं।

स्वरयंत्र (larynx)

स्वरयंत्र वायु नलिका के मुख पर उपास्थितियों द्वारा निर्मित एक डिब्बे के रूप में होता है। स्वरयंत्र के चारों ओर उपास्थि व ऊतक (tissues) होते हैं और मध्य में खाली जगह होती है जिसके दोनों ओर लंबी-लंबी पतली झिल्लियाँ होती हैं जो घोषतंत्रिका कहलाती हैं। ये स्वरयंत्र के अंदर ओष्ठ की भाँति स्थित रहती हैं। इन झिल्लियों में सिकुड़ने व फैलने की क्षमता होती है जिससे मध्य का मार्ग संकीर्ण व विस्तृत होता है। बोलते समय जब घोषतंत्रियाँ पूर्णतः निश्चेष्ट रहें और मध्य का मार्ग खुला रहने के कारण वायु निर्बाध रूप से बाहर आती रहे तो ऐसी स्थिति में उच्चरित ध्वनि **अघोष** (voiceless) कहलाती है। जब बोलते समय घोषतंत्रियों के परस्पर सन्निकट आने के कारण मध्य का मार्ग संकीर्ण हो जाए तथा घोषतंत्रियों में तनाव के कारण वायु प्रकम्पित होकर निकले तो उच्चरित ध्वनि को **सघोष** (voiced) कहते हैं। सभी स्वर ध्वनियाँ सघोष होती हैं। तीसरी स्थिति वह होती है जब स्वरतंत्रियों में अधिक तनाव होता है। वे एक दूसरे से अधिक सन्निकट होती हैं। फुसफुसा कर बोलते समय यही स्थिति होती है। तनाव अधिक होने के कारण घोषतंत्रियों में कंपन नहीं होता है। इन्हें **फुसफुसाहट-ध्वनि** (whispered sound) कहते हैं। एक अन्य स्थिति वह है जबकि घोषतंत्रियों के ऊपर का भाग एक दूसरे के साथ पूरी तरह जुड़ जाए और बीच का मार्ग पूर्णतः अवरुद्ध हो जाए। इस प्रकार श्वासद्वार बंद होने के कारण बाहर की वायु बाहर तथा अंदर की वायु अंदर ही रहती है। इन ध्वनियों को **श्वासद्वारीय ध्वनियाँ** (glottal sounds) कहते हैं। ब्रिटेन की cockney बोली में ये ध्वनियाँ मिलती हैं। यदि अंग्रेजी के butter, bottle या water शब्दों को मध्य की –tt ध्वनि के बिना बोला जाए तो इसका उच्चारण किया जा सकता है। इस ध्वनि का ध्वन्यात्मक

प्रतिलेखन [?] इस चिह्न द्वारा किया जाता है। घोषतंत्रियों की ये चार स्थितियाँ निम्नांकित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट होती हैं—



आरेख-7

घोषतंत्रियों के कारण ही भाषा में लय, तान, स्वराघात आदि विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं जो मानव संभाषण का प्रमुख अंग है।

उपरिश्वासद्वारीय विवर

श्वासद्वार के ऊपर तीन विवर होते हैं—कंठ विवर, नासिका विवर, मुख विवर इनके बीच से वायु निर्गत होती है। वायु उच्चारण के समय इन विवरों में होने वाली गूँज को अनुनाद (resonance) कहते हैं। श्वासद्वार से अलिजिह्वा तक कंठ विवर होता है। इसमें कोई विशेष ध्वनि उत्पन्न नहीं होती वरन् यह अनुनाद कक्ष के रूप में सभी ध्वनियों के उत्पादन में सहायता करता है। अलिजिह्वा से ओंठ तक का भाग मुख विवर कहलाता है। भाषाओं की अधिकांश ध्वनियाँ इसी विवर में उच्चरित होती हैं। कोमल तालु से ऊपर का भाग नासिक विवर कहलाता है। नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण में इसका योगदान होता है।

उच्चारण अवयवों की चर्चा के उपरांत उच्चारण प्रक्रिया में योगदान देने वाले विभिन्न घटकों की कार्यविधि की चर्चा होगी। उच्चारण प्रक्रिया का वर्णन तीन बिंदुओं के आधार पर किया जाता है—

(क) कौन सा अंग बाधा उत्पन्न कर रहा है? —उच्चारक

(ख) किस स्थान पर बाधा उत्पन्न हो रही है? —उच्चारण स्थान

(ग) किस प्रकार की बाधा उत्पन्न हो रही है? —उच्चारण प्रकार

उच्चारक—ध्वनियों के उत्पादन में जब कोई सचल अंग वायु मार्ग में बाधा उत्पन्न करे तो उस अंग को उस ध्वनि का उच्चारक (articulator) कहते हैं। ओष्ठ, जिह्वा, कोमल तालु, अलिजिह्वा, श्वासद्वार तथा घोषतंत्रियाँ उच्चारक का कार्य करती हैं। ये प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार के होते हैं, यथा—हिंदी 'प' का प्रत्यक्ष उच्चारक ओष्ठ एवं परोक्ष उच्चारक फेफड़े एवं कोमल तालु हैं। संस्कृत में इसे 'करण' कहते हैं।

उच्चारण स्थान—जिस स्थान पर वायु बाधित होती है उसे उच्चारण स्थान कहते हैं, यथा—'प' ध्वनि के उच्चारण में ओष्ठ उच्चारक होने के साथ-साथ स्थान भी है। ओष्ठ, दन्त, वर्त्स्य, तालु, कोमल तालु, अलिजिह्वा, श्वासद्वार आदि अंग उच्चारण स्थान (place of articulation) का कार्य करते हैं।

उच्चारण प्रयत्न—उच्चारण अवयव किस प्रकार के प्रयत्न द्वारा मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। प्रयत्नविधि निम्न उपशीर्षकों में निरूपित की जा सकती है—

- श्वसन
  - अन्तर्गामी
  - बहिर्गामी
    - अल्पप्राण (क,ख, च, प)
    - महाप्राण (ख, घ, छ, फ)
- सुरयन्त्र
  - अघोष
  - सघोष
  - जपित
  - श्वासद्वारीय
- कोमल तालु
  - मौखिक
  - नासिक्य
  - अनुनासिक्य
- वायु मार्ग में बाधा
  - निर्बाध
  - सबाध
    - पूर्ण बाधा (स्पर्श)
    - आंशिक बाधा (संघर्षी, पार्श्विक प्रकम्पित, उत्क्षिप्त)

आरेख-8

इन प्रयत्नों को **अधोकाकलीय** (infra glottal) एवं **उपरिकाकलीय** (supra glottal) दो वर्गों में रखा जाता है। प्रथम तीन प्रयत्न काकल के नीचे के अंगों द्वारा घटित होने के कारण अधोकाकलीय तथा अंतिम दो काकल के ऊपर के

अंगों द्वारा घटित होने के कारण उपरिकाकलीय कहलाते हैं। संस्कृत वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण आभ्यन्तर एवं बाह्य, का आधार मुखविवर है। अलिजिह्वा, जिह्वा तथा ओष्ठ द्वारा किए गए प्रयत्न आभ्यंतर एवं कोमल तालु, तालु, सुरयंत्र आदि द्वारा किए गए प्रयत्न बाह्य कहलाते हैं।

2.3 वाग्ध्वनियों का वर्गीकरण

औच्चारिक विशेषताओं के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण तीन वर्गों में किया जाता है—

● **स्पर्श**—जिनके उच्चारण में वायु-प्रवाह पूर्णतः बाधित हो। ये ध्वनियाँ सिर्फ वायु के एक झटके से उत्पन्न होती है, यथा- क,त, प।

● **संप्रवाही**—जिनके उच्चारण में वायु का सतत प्रवाह बना रहता है। इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु-प्रवाह आंशिक रूप में बाधित होते हुए भी निरंतर बना रहता है। इनके दो उपवर्ग होते हैं—निर्बाध और सबाध। निर्बाध में बाधा होते हुए भी वायु-प्रवाह पूर्णतः बाधित नहीं होता है। सभी स्वर इस वर्ग में आते हैं। जिनमें बाधा होने पर भी वायु-प्रवाह निरंतर बना रहे उन्हें सबाध संप्रवाही कहते हैं, जैसे—'स', 'ल'।

● **श्रुति**—इन ध्वनियों के उच्चारण में प्रारंभ में उच्चारण-अवयव जिस अवस्था में होते हैं अंत में वह अवस्था परिवर्तित हो जाती है। हिंदी की 'य' तथा 'व' ध्वनियाँ इस वर्ग में आती हैं। ये ध्वनियाँ गतिशील होती हैं।[2]

हॉकेट ने अपनी पुस्तक 'मैनुअल ऑफ फोनोलॉजी' के अंतर्गत ध्वनियों का एक अन्य वर्गीकरण प्रस्तावित किया—

● स्वराभ (vocoids)

● व्यंजनाभ (contoids)

वे ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में वायु जीभ के बीचोबीच होकर बिना किसी घर्षण के मुँह से निकलती हैं स्वराभ कहलाती हैं। ये केंद्रगत, अनुनादी तथा मौखिक होती हैं। केंद्रगत न होने के कारण पार्श्विक 'ल' इसमें समाहित नहीं है तथा मौखिक न होने के कारण 'न' इसमें नहीं आता साथ ही अनुनादी न होने के कारण स्पर्श व संघर्षी ध्वनियाँ इसके अंतर्गत नहीं आती हैं। घर्षण मुख में न होकर अन्यत्र होने के कारण 'ह' इसमें सम्मिलित किया जाता है। स्वराभ से भिन्न ध्वनियों की गणना व्यंजनाभ के अंतर्गत होती हैं। स्पर्श, नासिक्य एवं पार्श्विक ध्वनियाँ इस वर्ग में आती हैं। चूँकि यह वर्गीकरण केवल श्रुत्यात्मक और औच्चारिक विशेषताओं पर ध्यान देता है अतः भाषाविदों ने इसको अधिक महत्व नहीं दिया गया।

ध्वनियों का परंपरागत विभाजन दो वर्गों में किया जाता है—

● स्वर (vowel)

● व्यञ्जन (consonant)

स्वर—वे सघोष ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में वायु-प्रवाह फेफड़ों से निःसृत हो निर्बाध रूप से कंठ और मुखविवर से होकर बाहर निकलता है।[3] साथ ही जिनके उच्चारण में न तो किसी प्रकार की रुकावट उत्पन्न होती है और न ऐसी संकीर्णता जिससे संघर्षण सुना जा सके। यदि मुखविवर का मार्ग बंद होता है तो नासिक्य स्वर उच्चरित होता है और यदि यह मार्ग आंशिक रूप से बंद होता है तो अनुनासिक स्वर उच्चरित होता है। स्वर मुखर एवं आक्षरिक भी होते हैं। स्वरों की आक्षरिकता भाषा विशेष का गुण है।

स्वरों के उच्चारण में मुख्यतः पाँच अंग सक्रिय रहते हैं—

1. स्वरयंत्र स्वर के उच्चारण में घोषता उत्पन्न करता है।
2. कोमल तालु पीछे की ओर हट कर नासिका विवर को अवरुद्ध करता है और संपूर्ण वायु मुख विवर से बिना किसी बाधा के निःसृत होती है।
3. जबड़े की कार्यकारिता के आधार पर वायुमार्ग संवृत, अर्धसंवृत, अर्धविवृत और विवृत हो सकता है। ये स्थितियाँ स्वर के उच्चारण में सहायता देती हैं।
4. जिह्वा के तीन भाग*अग्र, मध्य व पश्च में कौन स्वर उत्पन्न करने में सहायक है यह जानना आवश्यक होता है।
5. वायु बाहर निकलने का अंतिम अंग ओष्ठ है। इसकी स्थिति तीन प्रकार की हो सकती है*वृत्ताकार, अद्‌र्धवृत्ताकार तथा अवृत्ताकार।

स्वरों में संस्कार होते हैं। जब तक श्वास निःसृत हो स्वर ध्वनि उच्चरित हो सकती है, इस अवधि को मात्रा कहते हैं। मात्रा के लिए [:] चिह्‌न का प्रयोग करते हैं। एक इकाई के लिए [:] तथा ज्यादा के लिए [:::] का प्रयोग किया जाता है। हिंदी में मात्रा अर्थगत भेद उत्पन्न करती है, यथा- कल और काल, मर और मार, पर तथा पार इत्यादि। जब स्वर के उच्चारण में वायु मुख और नासिका विवर दोनों से निकलती है तो उसे अनुनासिक कहते हैं। ध्वन्यात्मक लिपि में इसके लिए निश्चित [~] चिह्‌न का प्रयोग होता है। हिंदी के लगभग सभी दीर्घ स्वर अनुनासिक हो सकते हैं। साथ ही हिंदी में अनुनासिकता प्रभेदक का कार्य करती है अर्थात् हिंदी में अनुनासिकता शब्दों में अर्थ संबंधी भेद उत्पन्न करती है, यथा—सास-साँस/गोद-गोंद/है-हैं/हुई-हुईं/होगे-होंगे।

व्यंजन—जिनके उच्चारण में वायु पूर्णतः या अंशतः बाधित होकर मुख अथवा नासिका विवर से निःसृत होती है वे ध्वनियाँ व्यंजन कहलाती हैं। ये संघर्षी तथा संघर्षहीन दोनों होते हैं और स्वरों की तुलना में कम मुखर होते हैं। ये ध्वनियाँ स्वर ध्वनियों की भांति स्वतः उच्चरित नहीं की जा सकतीं और सदैव स्वर ध्वनि के साथ ही उच्चरित होती हैं। प्रायः भाषा में अनाक्षरिक व्यंजन ही मिलते हैं। व्यंजनों को उच्चारण-स्थान तथा उच्चारण-प्रयत्न दो आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। साथ ही बहिर्गामी वायु प्रवाह के आधार पर व्यंजन के अल्पप्राण एवं महाप्राण वर्ग भी मिलते हैं।

उच्चारण-स्थान के आधार पर व्यंजन का निम्नलिखित वर्गीकरण किया जाता है—

1. द्वयोष्ठ्य (bilabial)—जिनके उच्चारण में दोनों ओंठ एक दूसरे का स्पर्श करें या निकट आएँ। हिंदी के 'प्' 'फ्' 'ब्' 'भ्' 'म्' इस तरह के उच्चरित व्यंजन हैं।

2. दंत्योष्ठ्य (labiodental)—वह व्यंजन जिसके उच्चारण में ऊपर के सामने वाले दाँत-उच्चारण स्थान का तथा नीचे का ओंठ करण का कार्य करते हैं, जैसे—अंग्रेजी के f, v तथा हिंदी का 'फ़्' तथा हिंदी के आवाज़, संवाद और काव्य शब्दों में आगत 'व'।

3. दंत (dental)—वह स्पर्श व्यंजन जिसके उच्चारण में ऊपर के दाँत उच्चारण स्थान का और जिह्वाग्र करण का कार्य करता है, यथा—भारतीय भाषाओं का तवर्ग तथा फ्रेंच का t, d आदि।

4. वर्त्स्य (alveolar)—वह ध्वनि जिसके उच्चारण में दंतकूट उच्चारण स्थान का और जिह्वाग्र या जिह्वाफलक करण का कार्य करता है, यथा- अंग्रेजी के t, d, n तथा हिंदी में नमक का - 'न'।

5. वर्त्स्य तालव्य (alveo palatal)—वर्त्स्य तथा तालव्य दोनों ध्वनियों की विशेषताओं ये युक्त वह ध्वनि जिसके उच्चारण में जिह्वाग्र को दंतकूट और कठोर तालु के मिलन-स्थल तक उठाया जाता है, यथा—अंग्रेजी के shoot तथा child शब्दों की प्रारंभिक ध्वनियाँ।

6. कोमल तालव्य (velar)—वह स्वन जिसके उच्चारण में कोमल तालु उच्चारण स्थान का और जिह्वा-पश्च करण का कार्य करता है, यथा—हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में क्, ख्, ग्, घ्, ङ् इन्हें कंठ्य भी कहते हैं।

7. काकल्य (glottal)—श्वासद्वार को बंद करके स्फोटक प्रभाव द्वारा वायु को एकदम बाहर निकालने से काकल्य स्पर्श ध्वनि का उच्चारण होता है। यह कई पूर्वी तथा अफ्रीकी भाषाओं में स्वनिम रूप में मिलती है और इसका अंतर्राष्ट्रीय स्वनिक चिह्न [?] है। अंग्रेजी who तथा whose तथा शब्दों में आगत प्रथम ध्वनि अघोष काकल्य कहलाती है।

उच्चारण प्रयत्न के आधार पर व्यंजन वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जाता है :—

1. स्पर्श (stop)—वह ध्वनियाँ जिनके उच्चारण में उच्चारण स्थान और करण के संपर्क से वायु प्रवाह पूर्णतः अवरुद्ध रहता है। काकल पर किए गए अवरोध को छोड़कर अन्य स्पर्श ध्वनियों में वायुमार्ग का अवरोध दो बिंदुओं पर होता है-

(अ) कोमल तालु—इस अवरोध के कारण वायु नासिका विवर में नहीं जा पाती है।

(आ) मुखांतर्गत किसी स्थान पर अवरोध होता है।

तैत्रेय प्रतिशाख्य में स्पर्श ध्वनि के उच्चारण की तीन अवस्थाएँ वर्णित हैं—

संपर्क (contact)
विराम (hold)
मोचन (release)

स्पर्श के पूर्ण उच्चारण के लिए इन तीनों अवस्थाओं का होना अनिवार्य है किंतु भाषाओं में प्रायः यह स्थिति नहीं होती है। कहीं संपर्क स्पष्ट होता है तो कहीं विराम और कहीं तीनों।

2. संघर्षी (fricative)—वह व्यंजन जिसके उच्चारण में वायु-मार्ग संकुचित हो जाता है और वायु घर्षण करके निकलती है, यथा—स ज फ। संघर्षी ध्वनियों में वायु मार्ग की दीवारों से वायु की रगड़ के कारण संघर्ष का सुनाई पड़ना अनिवार्य लक्षण है। वायु का संकुचित मार्ग दो प्रकार का होता है—

(अ) कभी-कभी मार्ग दरारनुमा होता है इन्हें फलक संघर्षी (slit fricative) कहते हैं। वह संघर्षी स्वन जिसके उच्चारण में जीभ के आगे के दोनों किनारे बराबर होते हैं।

(आ) कभी-कभी दरार नहीं एक छोटा सा छिद्र बनता है इन्हें नलक संघर्षी (grooved fricative) कहते हैं।

3. स्पर्श संघर्षी (affricate) - वह व्यंजन स्वन जिसके उच्चारण का आरंभ तो स्पर्श के रूप में हो पर जिसकी समाप्ति प्रलबिंत निर्मोचन के कारण सवर्णी संघर्षी स्वन के रूप में हो स्पर्श संघर्षी कहलाता है, यथा—हिंदी में 'च्' 'ज्'।

4. नासिक्य (nasal) - प्रायः ध्वनियों का उच्चारण कोमल तालु के उठे होने के कारण मुख विवर से होता है किंतु जब कोमल तालु के बंद होने के कारण वायु-प्रवाह नासिका विवर से होता हुआ नाक से बाहर आए तो उच्चरित ध्वनियों को नासिक्य कहते हैं। हिंदी-व्यंजनों में न्, म्, ञ्, ण्, ङ् नासिक्य हैं। इनमें स्पर्श व संप्रवाही दोनों की विशेषताएँ मिलती हैं। नासिक्य ध्वनियाँ सदैव सघोष होती हैं।

5. पार्श्विक (lateral) - व्यंजन के उच्चारण में जिह्वाग्र अथवा फलक दंत वर्त्स अथवा तालु के साथ इस प्रकार संपर्कित होता है कि केंद्रीय मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। पार्श्व ढीले रहते हैं और वायु पार्श्व तथा दन्त पंक्ति से निकलती रहती हैं। पार्श्विक व्यंजन सघोष व अघोष दोनों होते हैं। हिंदी की [ल] ध्वनि तथा अंग्रेजी का स्पष्ट एवं अस्पष्ट [l] पार्श्विक होता है।

6. उत्क्षिप्त (flapped)—वह व्यंजन जिसके उच्चारण में करण (जिह्वाग्र) पीछे खिंचकर उच्चारण-स्थान (वर्त्स या कठोर तालु) की ओर मुड़ता है और अंततः झटके से अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता है, यथा—हिंदी [ड़] और [ढ़]

7. लुंठित (rolled)—ऐसा व्यंजन जो जिह्वाग्र को बेलन की तरह थोड़ा लपेटकर जिह्वाग्र से दाँतों का या वर्त्स्य का ताड़न करने से उच्चरित होता है, यथा—हिंदी का [र]

अक्षर (syllable)

संभाषण का वह लघुतम अंश जिसमें स्वतंत्रतः उच्चरित होने की क्षमता हो अक्षर कहलाता है। शरीर-रचना-प्रक्रिया की दृष्टि से अक्षर का संबंध उच्चारण-अवयवों की उस सक्रियता से है जो प्रतिफल होती है उदरस्थ मांसपेशियों की सक्रियता का। हमारे फेफड़ों के चारों ओर मांसपेशियाँ सतत् सक्रिय रहती हैं जिसके कारण श्वासवायु का आवागमन होता है। इसमें एक झटके से निष्क्रमित वायु से उच्चरित ध्वनि खंड अक्षर कहलाता है। अक्षर ध्वनि की शृंखला नहीं हृत्स्पंदन द्वारा उच्चरित ध्वनि खंड है जिसमें एक या एकाधिक ध्वनियाँ हो सकती हैं। स्पष्ट है कि साधारणतः जहाँ अक्षर का अर्थ लेखन की इकाई से लिया जाता है वहाँ भाषाविज्ञान में एक या एक से अधिक ध्वनि इकाइयों का समूह जिसका उच्चारण एक ही साथ या झटके से किया जाए, अक्षर कहलाता है। अंग्रेजी में इसे सिलेबल कहते हैं। हिंदी के 'आ, ला, क्या, बात' आदि शब्द एक अक्षर वाले उदाहरण हैं जिनमें क्रमशः एक, दो, तीन तथा चार ध्वनियाँ हैं। इसी प्रकार 'आद-मी', 'भार-तीय' आदि शब्द दो अक्षर वाले उदाहरण हैं।

प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने इसे औच्चारिक चेष्टा का प्रतिफल मानते हुए निम्नवत् परिभाषित किया है—

''अक्षरं नाक्षंर विद्यात्
न क्षीयते न क्षरतीति वाक्षरम्।''   महाभाष्य 1/2

प्रत्येक उच्चरित ध्वनि क्षयमान है। उच्चरित ध्वनि को रूपायित करने वाले स्फोट के रूप में अक्षर नित्य और अविनाशी है। यह विनष्ट नहीं होता है। ध्वनिविदों ने अक्षर शब्द की दो व्याख्याएँ की हैं—'अ + क्षर' अर्थात् जो अविनाशी है। 'अक्ष + र अर्थात् जो धुरी है। प्रथम व्याख्या दार्शनिक है द्वितीय भाषा में अक्षर के महत्व को रेखांकित करती है। चूँकि अक्षर उच्चारण की लघुतम इकाई है इसलिए ध्वनि के वे प्रकार जो स्वतंत्र होते हैं अक्षर का आधार माने जाते हैं। यह विशेषता स्वर में होती है अतः स्वर अक्षर का मूलाधार या केंद्र होता है। स्वर व अक्षर समानांतर हैं। सामान्यतः स्वरों की प्रवृत्ति आक्षरिक होती है अतः भाषा में जो स्वर है वही अक्षर है। व्यंजन अनाक्षरिक होते हैं। कतिपय भाषाओं में अपवाद रूप में आक्षरिक व्यंजन भी मिलते हैं, यथा—अंग्रेजी शब्द button एवं little में प्रयुक्त 'n' व 'l' आक्षरिक व्यंजन हैं। इसी प्रकार संस्कृत ऋ एवं ऌ आक्षरिक हैं। यदि अक्षर की अंत ध्वनि स्वर हो तो वह विवृत कहलाता है और यदि इसका अंत व्यंजन ध्वनि से हो तो अक्षर संवृत कहलाता है, जैसे 'चम्पा' शब्द में दो अक्षर हैं प्रथम है 'चम्' जो संवृत अक्षर है और द्वितीय 'पा' विवृत अक्षर है।

ध्वनि का एक अन्य गुण मुखरता (sonority) या गूँज कहलाती है जो स्वरों में अधिक होती है और व्यंजनों में कम। ऑटो जेस्पर्सन के मतानुसार कम मुखरता वाली ध्वनियाँ अधिक मुखरता वाली ध्वनियों से संयुक्त हो अक्षर बनाती हैं।

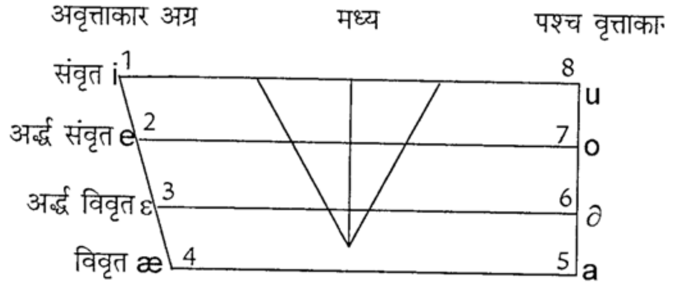
2.4 मान स्वर (cardinal vowels)

स्वर-उच्चारण में संलग्न ओष्ठ एवं जबड़े की सक्रियता तो दृष्टिगत होती है किंतु जिह्वा आदि अंगों की सक्रियता दिखाई नहीं देती है। अतः स्वरों के स्वरूप की सही जानकारी के लिए इनके उच्चारण की स्थिति का निश्चित मापदंड स्वीकृत है, जिसके द्वारा भाषा के स्वरों का वर्णन किया जाता है। इस सामान्य मापक को मानस्वर की संज्ञा दी जाती है।[4] वास्तव में ये किसी भाषा के स्वर नहीं अपितु भाषा के स्वरों के मापक होते हैं। मान स्वर के उच्चारण में ओष्ठ की सिर्फ दो स्थितियाँ स्वीकार की जाती हैं—अवृत्ताकार तथा वृत्ताकार। जिह्वा तथा ओष्ठ की निश्चित स्थिति के आधार पर आठ उच्चारण बिंदुओं की स्थापना की जाती है।

अवृत्ताकार			वृत्ताकार
अग्र		मध्य	पश्च
संवृत	.		.
अर्द्ध संवृत	.		.
अर्द्ध विवृत	.		.
विवृत	.		.

आरेख-9

प्रसिद्ध ध्वनिशास्त्री डेनियल जोन्स ने इसे अधिक व्यावहारिक बनाने के लिए निम्नवत प्रस्तुत किया—



आरेख-10

[i] अवृत्ताकार संवृत अग्र स्वर। हिंदी कीट; अंग्रेजी seed, need, eat, key.

[e] अवृत्ताकार अर्ध संवृत अग्र स्वर। हिंदी एक; अंग्रेजी pet, net, weight.

[ɛ] अवृत्ताकार अर्ध विवृत अग्र स्वर। हिंदी में यह ध्वनि नहीं मिलती है। अंग्रेजी hat, said, dead आदि शब्दों में इसका प्रयोग किया जाता है।

[æ] अवृत्ताकार विवृत अग्र स्वर। हिंदी में यह ध्वनि कुछ भिन्न रूप में मिलती है। अंग्रेजी sat, laugh.

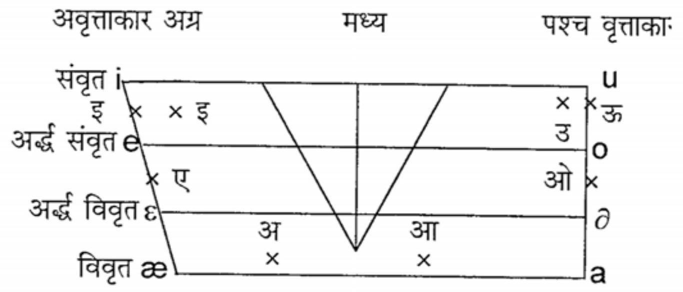
[a] वृत्ताकार विवृत पश्च स्वर। अमरीकी अंग्रेजी उच्चारण में calm.

[∂] वृत्ताकार अर्ध विवृत पश्च स्वर। अंग्रेजी law, doctor, fall.

[o] वृत्ताकार अर्ध संवृत पश्च स्वर। अंग्रेजी no, know.

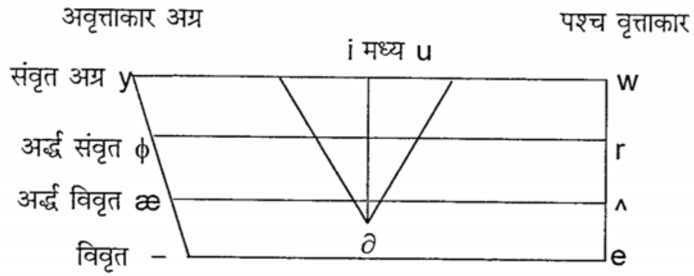
[u] वृत्ताकार संवृत पश्च स्वर। इसके उच्चारण में ओंठ आगे निकलते हैं। अंग्रेजी move, two, glue.

मानस्वर के आधार पर हिंदी स्वरों का वर्गीकरण निम्नवत किया जाता है—



आरेख-11

आठ मूल मानस्वरों (primary cardinal vowels) के साथ-साथ गौण मानस्वरों की भी चर्चा की जाती है। यदि अग्र मानस्वरों को वृत्ताकार कर दें और पश्च मानस्वरों को अवृत्ताकार कर दें अर्थात् ओष्ठ की कार्यकारिता विपरीत कर दें तो गौण मानस्वरों की उत्पत्ति होती है।



आरेख-12

[y] वृत्ताकार संवृत अग्र स्वर-अंग्रेजी louis में जो ई ध्वनि है यह फ्रेंच तथा जर्मन में मिलती है।

[ϕ] वृत्ताकार अर्ध संवृत अग्र स्वर।

[æ] वृत्ताकार अर्ध विवृत अग्र स्वर।

[-] विवृत स्थिति में ओष्ठ वृत्ताकार नहीं हो सकते अतः यहाँ कोई मान स्वर नहीं है।

[é] अवृत्ताकार विवृत पश्च स्वर।

[^] अवृत्ताकार अर्ध विवृत पश्च स्वर अंग्रेजी but

[r] अवृत्ताकार अर्ध संवृत पश्च स्वर।

[w] अवृत्ताकार संवृत पश्च स्वर।

i और u केंद्रीय भाग में रखे जाते हैं। ∂ के उच्चारण में जिह्वा का केंद्रीय भाग नीचे रहता है।

[i] संवृत अग्र केंद्रीय स्वर।

[u] संवृत पश्च केंद्रीय स्वर।

[∂] अर्ध विवृत अग्र केंद्रीय स्वर अंग्रेजी—sofa तथा about

2.5 संयुक्त स्वर एवं त्रिसंयुक्त स्वर (dipthongs and thriphthong)

साधारणतः दो स्वरों के संयोग से बनी एक ध्वनि को संयुक्त स्वर कहते हैं[5]। यह ध्वनि मुख्यतः एक इकाईवत कार्य करती है। यह एक श्वासाघात से उत्पन्न हो एक अक्षर का निर्माण करती है। संयुक्त स्वर एक बलाघात का वहन करता है। इनके उच्चारण में उच्चारण-अवयव एक अवस्था से दूसरी अवस्था में गतिशील होते हैं, अतः संयुक्त स्वर एक स्वर श्रुति भी कहलाते हैं। संभाषण के मध्य अनेक श्रुतियाँ स्वतः उच्चरित होती हैं, जो आश्रित श्रुतियाँ हैं। संयुक्त स्वर में श्रुति का उच्चारण सप्रयास ध्वनि विशेष के लिए किया जाता है अतः ये स्वतंत्र स्वर श्रुति माने जाते हैं। श्वासाघात के बढ़ने पर संयुक्त स्वर का उत्तरांश अधिक स्पष्ट होता है और कम होने पर पूर्वांश अधिक स्पष्ट और प्रमुख होता है। पूर्वांश प्रमुख होने पर अवरोही संयुक्त स्वर (falling dipthong) तथा उत्तरांश प्रमुख होने पर आरोही संयुक्त स्वर (rising dipthong) कहते हैं। हिंदी के दोनों संयुक्त स्वर-ऐ औ-आरोही संयुक्त स्वर हैं। अवरोही संयुक्त स्वर के उदाहरण अंग्रेजी में मिलते हैं, यथा—they [e^i], boy- [∂^i]। जब संयुक्त स्वर के उच्चारण में जिह्वा अपेक्षाकृत निम्नतर अवस्था से उच्चतर अवस्था की ओर गतिशील हो तो इन्हें संवृतोन्मुखी कहते हैं और जब जिह्वा अपेक्षाकृत उच्चतर से निम्नतर अवस्था की ओर गतिशील हो तो इन्हें विवृतोन्मुखी कहते हैं। जब अग्र अथवा पश्च से केंद्र की ओर अग्रसर हो तो केंद्रोन्मुखी संयुक्त स्वर कहते हैं, यथा—अंग्रेजी poor [u$\hat{∂}$], their [ε$\hat{∂}$]।

जब स्वर श्रुति के उच्चारण में श्वासाघात में उत्थान के उपरांत पतन भी होता है अर्थात् प्रमुखता एक ऊँचाई पर पहुँच कर गिरती है तो ऐसी ध्वनि त्रिसंयुक्त स्वर कहलाती है।[6] त्रिसंयुक्त स्वर के उच्चारण में तीन स्वर अवस्थाओं का योग रहता है। एक ही अक्षर का निर्माण करने के कारण और एक श्वासाघात से उत्पन्न होने के कारण ये स्वर ध्वनियाँ कहलाती हैं, यथा- अंग्रेजी में—

dire [a $\hat{i}$ ∂]

hire [a $\hat{i}$ ∂]

2.6 अद्‌र्ध स्वर (semi vowel)

औच्चारिक दृष्टि से स्वर के उच्चारण के सन्निकट एवं भाषा में व्यवहार की दृष्टि से व्यंजन के अनुरूप होने के कारण इन्हें अद्‌र्ध स्वर कहते हैं। इनमें कतिपय विशेषताएँ व्यंजन की और कतिपय स्वर की होती हैं। इसीलिए अमरीकी भाषाविद् हॉकेट का मानना है कि इनका 'अद्‌र्ध व्यंजन' नाम भी हो सकता है। इनके उच्चारण में संघर्षहीनता की स्थिति रहती है। उच्चारण अवयव एक स्वर-स्थिति से दूसरे की दिशा में गतिशील होते हैं अतः ये श्रुत्यात्मक ध्वनि हैं। चूँकि ये आक्षरिक एवं मुखर नहीं होते हैं अतः स्वर नहीं कहे जा सकते अपितु ये आक्षरिक के आगे पीछे संयुक्त होकर व्यंजनवत प्रयुक्त होते हैं। स्वर की एक अन्य विशेषता होती है बलाघात का वहन करना, वह भी इनमें नहीं प्राप्त होती है। इस विशेष प्रवृत्ति के कारण इन्हें अद्‌र्ध स्वर कहते हैं। साधारणतः भाषाओं में दो अद्‌र्ध स्वर पाए जाते हैं-

वृत्ताकार सघोष कंठयोष्ठ अद्‌र्ध स्वर [w]

अवृत्ताकार तालव्य अद्‌र्ध स्वर [j]

प्रथम के उच्चारण में जिह्वा पश्च कोमल तालु की दिशा में ऊपर उठकर पश्च संवृत स्वर 'ऊ' की अवस्था के अनुरूप अवस्था ग्रहण करती है और तुरन्त अपेक्षाकृत अग्र अवस्था की दिशा में गतिशील हो जाती है। ओंठ को वृत्ताकार स्थिति के कारण इन्हें वृत्ताकार अद्‌र्ध स्वर कहते हैं। इनके उच्चारण की प्रारंभिक अवस्था अपेक्षाकृत अधिक सुनिश्चित होती है और उत्तरांश निर्भर करता है परवर्ती स्वर पर। द्वितीय के उच्चारण में जिह्वाग्र तालु की दिशा में ऊपर उठकर संवृत अग्रस्वर 'इ' की अवस्था के सन्निकट अवस्था ग्रहण करता है और अपेक्षाकृत विवृत स्वर की अवस्था की ओर अग्रसरित हो जाता है।

2.7 उपरिखंडीय ध्वनि लक्षण (suprasegmental features)

स्वर, व्यंजन, संयुक्त स्वर आदि खंडीय ध्वनियाँ कहलाती हैं। भाषण सम्प्रवाह एक तारतम्य रूप में होता है। उसमें आगत मध्य ध्वनि की सीमा आदि व अंत की तुलना में अधिक स्पष्ट होती है और इसी आधार पर इनका खंडीकरण होता है। सुर, तान,

बलाघात, मात्रा आदि विशेषताएँ एक से अधिक स्वनिमिक खंडों के अनुक्रम पर छाई रहती हैं। अतः इन्हें खंडेतर/उपरिखंडीय ध्वनि लक्षण कहते हैं। यह विशेषताएँ किसी भाषा को उसकी व्यक्तिगत अस्मिता देती है। हिंदी में इन्हें रागीय लक्षण भी कहते हैं।

2.7.1 कालावधि (duration)

किसी कथन के उच्चारण में जो समय लगता है उसे तात्विक दृष्टि से उस कथन की कालावधि (duration) कहते हैं। कथन की कालावधि संभाषण की गति पर आधृत होती है। गति द्रुत होने पर ध्वनि को समय कम मिलेगा तथा विलंबित होने पर अधिक समय मिलेगा। यदि संभाषण की गति मध्यम है तो ध्वनि को सामान्य समय लगेगा। इस गति को प्रवेग (tempo) कहते हैं। कालावधि का सीधा संबंध प्रवेग से होता है। वक्ता की मानसिक अवस्था एवं सामाजिक परिस्थिति प्रवेग को प्रभावित करती है। आवेश में यह बढ़ जाता है एवं आराम की स्थिति में कम होता जाता है। प्रवेग तथा कालावधि दोनों का मापन किया जा सकता है। कालावधि का मापन सेंटी सेकंड में होता है, यथा- कल शब्द में आगत 'अ' के उच्चारण में आठ सेन्टीसेकण्ड लगते हैं। सामान्यतः स्वर एवं संप्रवाही ध्वनियाँ स्पर्श की तुलना में अधिक कालावधि लेती हैं। भाषा में ध्वनियों का प्रयोग संदर्भ उनकी सापेक्षिक कालावधि को प्रभावित करता है, यथा- सघोष ध्वनि शृंखला आने पर यह बढ़ जाती है। यही कारण है कि 'पात्र' तथा 'लाल' शब्दों में प्रयुक्त 'आ' ध्वनि की कालावधि में भिन्नता मिलती है।

2.7.2 मात्रा (length)

समस्त वाक् व्यवहार समय की रेखा पर घटित होता है, किंतु हर भाषा इस समय का अपने ढंग से प्रयोग करती है और यही मात्रा है। मात्रा समान होने पर भी कालावधि में भिन्नता हो सकती है, यथा- कामायनी शब्द में दो दीर्घ 'आ' हैं किंतु दोनों की कालावधि भिन्न-भिन्न है क्योंकि भाषा में ध्वनियाँ विलग होकर उच्चारित नहीं होती वरन् पूर्व और पर में आगत ध्वनियाँ उन्हें प्रभावित करती हैं। इस प्रकार जब कालावधि प्रभेदक रूप में कार्य करती है तो उसे मात्रा की संज्ञा देते हैं। मात्रा के दो सापेक्षिक रूप-ह्रस्व एवं दीर्घ मिलते हैं। सापेक्षिक से तात्पर्य है कि समान संदर्भ में ह्रस्व ध्वनि की तुलना में दीर्घ ध्वनि अधिक समय लेती है। सामान्यतः मात्रागत यह भेद स्वर ध्वनियों में मिलता है। IPA में दीर्घता को [:] द्वारा चिह्नित किया जाता है। हिंदी व अंग्रेजी में जहाँ ह्रस्व व दीर्घ दो वर्ग मिलते हैं वहाँ संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत तीन मात्राओं की चर्चा की गई है।[7]

2.7.3 बलाघात (stress)

ध्वनि के उच्चारण में प्रयुक्त बल की मात्रा को बलाघात कहते हैं।[8] यह वक्ता की सचेष्ट शारीरिक क्रिया से संबंधित होता है। चूँकि उच्चारण की लघुतम इकाई अक्षर

होती है अतः जो अक्षर अन्य अक्षरों की अपेक्षा अधिक श्वासबल से युक्त होते हैं वे बलाघात युक्त कहलाते हैं। इनके उच्चारण में वक्ता अधिक ऊर्जा का प्रयोग करता है। श्रोता की दृष्टि से बलाघात युक्त अंश अधिक स्पष्ट सुनाई देते हैं।

बहुधा बलाघात तथा प्रमुखता (prominence) को समानार्थी माना जाता है क्योंकि बलाघात युक्त अक्षर अन्य निकटवर्ती अक्षरों की अपेक्षा अधिक प्रमुख होते हैं लेकिन इनमें तात्विक अंतर है। बलाघात वक्ता द्वारा प्रयुक्त श्वासबल की मात्रा पर निर्भर होने के कारण एक सचेष्ट प्रयत्न है जबकि प्रमुखता श्रोता की प्रतीति पर निर्भर करती है। सभी भाषाओं में (चाहे वह बलाघात का प्रयोग करें या न करें) संभाषण के कुछ अंश अन्य की तुलना में श्रोता को अधिक स्पष्ट व प्रमुखता से सुनाई पड़ते हैं। यह 'प्रमुखता' बलाघात अथवा अन्य ध्वनिक विशेषताओं के कारण हो सकती है। बहुधा बलाघात युक्त अक्षर के पूर्व ['] इस चिह्न का प्रयोग होता है। जहाँ एकाधिक बलाघात युक्त अक्षर होते हैं वहाँ सर्वाधिक बलाघात युक्त को ऊपर चिह्नित करते हैं और द्वितीय को नीचे, यथा—[ˌ]। प्रायः सामान्य बल का प्रयोग अचिह्नित रहता है। बलाघात की एकाधिक सापेक्षिक मात्राएँ मिलती हैं—

पूर्ण बलाघात

S trong/full stress

दुर्बल बलाघात

weak/unstressed

भाषाओं में बलाघात की प्रकृति एवं प्रयोग में पर्याप्त भिन्नता मिलती है। इस दृष्टि से भाषाओं के दो वर्ग किए जाते हैं—(1) वे भाषाएँ जिनमें बह्वाक्षरिक शब्दों में बलाघात की प्रकृति और प्रयोग शब्द के उच्चारण की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। इन भाषाओं में एकाधिक अक्षरों से बने हुए शब्दों में बलाघात की मात्रा व स्थान दोनों का महत्व होता है। इनके पुनः दो वर्ग किए जा सकते हैं—(क) जिन भाषाओं में बलाघात का शब्दांतरगत प्रयोग स्थान स्थिर रहता है, यथा—फिन्निश या चेक भाषाओं में शब्द का आदि अक्षर सदैव बलाघात युक्त होता है। इसी प्रकार फ्रेंच में शब्द का अंतिम अक्षर तथा लैटिन में उपान्त्य अक्षर बलाघात युक्त होता है। (ख) दूसरे वर्ग में वे भाषाएँ आती हैं जिनमें शब्दांतरगत बलाघात का स्थान अस्थिर होता है। शब्द रचना एवं प्रकृति के अनुसार इसके स्थान में परिवर्तन होता रहता है। इस वर्ग का प्रमुख उदाहरण अंग्रेजी भाषा है, यथा- ['photo] में प्रथम, [pho 'tograph] में द्वितीय तथा [photo'graphic] में तृतीय। कतिपय भाषाओं में बलाघात प्रभेदक प्रकार्य सम्पादित करता है अर्थात् शब्दार्थ में परिवर्तन अथवा व्याकरणिक प्रकार्य में भिन्नता के कारण अपना व्याकरणिक कार्य परिवर्तित कर देते हैं, यथा—['inkri:s] संज्ञा, [ink'ri:s] क्रिया increase, ['ins^.lt] संज्ञा [in's^ lt] क्रिया insult । यह प्रवृत्ति जर्मन, ग्रीक, स्पेनिश में भी दृष्टिगत होती है।

लगभग सभी भाषाओं में वाक्य बलाघात का प्रयोग होता है। वाक्यांतरगत एकाक्षरी शब्द भी बलाघात वहन करते हैं। साधारणतः संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण और क्रिया विशेषण बलाघात युक्त होते हैं और अव्यय तथा परसर्ग बलाघात वहन नहीं करते हैं। अंग्रेजी में शब्द बलाघात और वाक्य बलाघात दोनों मिलते हैं। साधारणतः वाक्य बलाघात व्यक्ति के आशय, मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति करता है। हिंदी में बलाघात का महत्व शब्द की दृष्टि से नहीं अपितु वाक्य की दृष्टि से होता है, यथा—यह मोहन नहीं राम है। यहाँ विरोध के लिए राम पर बल देकर बोला जाता है।

2.7.4 स्वराघात/सुर (pitch)

वह औच्चारिक विशेषता जो सुरतंत्रियों से उत्पन्न होती है, सुर कहलाती है। अतः सुरतंत्रियों के कंपन की मात्रा में भिन्नता सुर में भिन्नता का कारण बनती है। साधारणतः मानव की सुरतंत्रियाँ 42 आवृत्ति प्रति सेकेंड की न्यूनतम सीमा से लेकर 2400 की अधिकतम सीमा के मध्य कंपित होती हैं। कंपन की मात्रा व्यक्ति की आयु व लिंग पर भी निर्भर करती है। सुरतंत्रियाँ जितनी पतली व लचीली होंगी कंपन उतना ही अधिक होगा तथा मोटी व लंबी सुरतंत्रियों में कंपन की मात्रा कम होगी। स्पष्ट है कि सुर संबंधी विशेषता औच्चारिक दृष्टि से सुरतंत्रियों के कंपन पर आधृत है। अतः जो ध्वनियाँ सघोष होती हैं उन्हीं में सुर होता है। बहुधा उच्च, सम तथा निम्न तीन सुरों को मान्यता दी जाती है। सुर जब प्रभेदक का कार्य करे तो तान (tone) कहलाता है और जिन भाषाओं में सुर का प्रयोग अर्थ में भिन्नता उत्पन्न करता है उन्हें तान भाषाएँ कहते हैं, यथा—चीनी परिवार की भाषाएँ। ग्रीक, संस्कृत आदि भाषाओं में सुर संबंधी यह विशेषता शब्द की औच्चारिक विशेषता होती है। संस्कृत वैयाकरणों ने सुर के उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित तीन वर्ग किए।[९]

अंतर्राष्ट्रीय स्वन वर्णमाला (IPA) में उच्च [–] तथा निम्न [–] को चिह्नित करते हैं और सम अचिह्नित रहता है। कभी-कभी इन्हें संख्या द्वारा भी चिह्नित किया जाता है [3], [2], [1]। सुर की वह विशेषता जो पदबंध या वाक्य पर प्रतिफलित मिलती है सुरलहर/अनुतान (intonation) कहलाती है।

2.7.5 संहिता (juncture)

भाषा संप्रवाह में विराम की स्थिति को संहिता की संज्ञा दी जाती है। यह विराम स्तर पर परिकल्पित अधिखंडात्मक अभिलक्षण है। वह संहिता जो व्यतिरेक रूप में स्वनिक स्तर पर अनुभवगम्य होती है स्वनिमिक संहिता कहलाती है, यथा—

अंग्रेजी में-

night + rate : ni trate
a + dress : address

I + scream : icecream

हिंदी में-

हाथ + ही : हाथी

कल + छीने : कलछी ने

वह संहिता जो मात्र संरचना स्तर पर अनुभवगम्य हो उसे संरचनात्मक संहिता कहते हैं, यथा- खा + ली : खाली; पी + ली : पीली।

2.8 अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला (International Phonetic Alphabets)

विश्व की समस्त भाषाओं के निष्ठ अंकन के लिए अंतर्राष्ट्रीय लिपि चिह्न बनाए गए हैं। ओटो जेस्पर्सन नामक विद्वान ने 1886 में अंतर्राष्ट्रीय वर्णमाला संबंधित विचार रखा तथा 1888 में यह वर्णमाला प्रकाशित हुई। समय के साथ कई बार इस वर्णमाला में संशोधन एवं विस्तार किए जा चुके हैं। 1979 में संशोधित वर्णमाला निम्नांकित है—देखें आरेख-13

2.9 स्वनिक लेखन (phonetic transcription)

भाषायी ध्वनियों के लेखन के लिए प्रत्येक भाषा एक विशिष्ट लिपि व्यवस्था का प्रयोग करती है जैसे—हिंदी भाषा देवनागरी लिपि का, किंतु ये लिपि व्यवस्थाएँ भाषा की समस्त ध्वनियों के लेखन के लिए पर्याप्त नहीं होती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए विद्वानों ने स्वनिक लेखन व्यवस्था की खोज की। जिसका प्रत्येक स्वनिक प्रतीक एक प्रभेदक ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे 'b' एक स्वनिक प्रतीक है जिसका उच्चारणात्मक मूल्य 'सघोष, अल्पप्राण, द्वयोष्ठ्य एवं स्पर्श' है। इसका वास्तविक उच्चारण किसी भाषा में जहाँ लगभग 75% सघोष है तो दूसरी भाषा में इसके स्वरूप में मात्र 60% अंश घोषत्व है। फिर भी यह एक ही ध्वनि के रूप में बोला, सुना व समझा जाता है।

स्वनिक लेखन की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—सूक्ष्म लिप्यंकन एवं स्थूल लिप्यंकन जिन्हें क्रमशः स्वनिक एवं स्वनिमिक नाम भी दिए जाते हैं। सूक्ष्म/स्वनिक लिप्यंकन में सहस्वनों के लिए भी भिन्न प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। साथ ही प्रभेदक का कार्य न करने वाले स्वनगुण भी अंकित किए जाते हैं। स्थूल लिप्यंकन के प्रतीक स्वनिमों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लेखन व्यवस्था में आर्थी संदिग्धता को दूर करने वाले स्वनगुणों का ही लिप्यंकन किया जाता है।

THE INTERNATIONAL PHONETIC ALPHABET (revised to 2005)

CONSONANTS (PULMONIC)

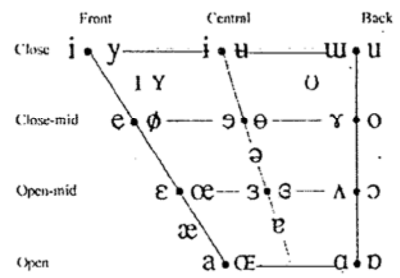
	Bilabial	Labiodental	Dental	Alveolar	Postalveolar	Retroflex	Palatal	Velar	Uvular	Pharyngeal	Glottal
Plosive	p b			t d		ʈ ɖ	c ɟ	k ɡ	q ɢ		ʔ
Nasal	m	ɱ		n		ɳ	ɲ	ŋ	ɴ		
Trill	ʙ			r					ʀ		
Tap or Flap		ⱱ		ɾ		ɽ					
Fricative	ɸ β	f v	θ ð	s z	ʃ ʒ	ʂ ʐ	ç ʝ	x ɣ	χ ʁ	ħ ʕ	h ɦ
Lateral fricative				ɬ ɮ							
Approximant		ʋ		ɹ		ɻ	j	ɰ			
Lateral approximant				l		ɭ	ʎ	ʟ			

Where symbols appear in pairs, the one to the right represents a voiced consonant. Shaded areas denote articulations judged impossible.

CONSONANTS (NON-PULMONIC)

Clicks		Voiced implosives		Ejectives	
ʘ	Bilabial	ɓ	Bilabial	ʼ	Examples:
ǀ	Dental	ɗ	Dental/alveolar	pʼ	Bilabial
ǃ	(Post)alveolar	ʄ	Palatal	tʼ	Dental/alveolar
ǂ	Palatoalveolar	ɠ	Velar	kʼ	Velar
ǁ	Alveolar lateral	ʛ	Uvular	sʼ	Alveolar fricative

VOWELS



Where symbols appear in pairs, the one to the right represents a rounded vowel.

OTHER SYMBOLS

ʍ	Voiceless labial-velar fricative	ɕ ʑ	Alveolo-palatal fricatives
w	Voiced labial-velar approximant	ɺ	Voiced alveolar lateral flap
ɥ	Voiced labial-palatal approximant	ɧ	Simultaneous ʃ and x
ʜ	Voiceless epiglottal fricative		
ʢ	Voiced epiglottal fricative		Affricates and double articulations can be represented by two symbols joined by a tie bar if necessary. k͡p t͡s
ʡ	Epiglottal plosive		

DIACRITICS Diacritics may be placed above a symbol with a descender, e.g. ŋ̊

̥	Voiceless	n̥ d̥	̤	Breathy voiced	b̤ a̤	̪	Dental	t̪ d̪
̬	Voiced	s̬ t̬	̰	Creaky voiced	b̰ a̰	̺	Apical	t̺ d̺
ʰ	Aspirated	tʰ dʰ	̼	Linguolabial	t̼ d̼	̻	Laminal	t̻ d̻
̹	More rounded	ɔ̹	ʷ	Labialized	tʷ dʷ	̃	Nasalized	ẽ
̜	Less rounded	ɔ̜	ʲ	Palatalized	tʲ dʲ	ⁿ	Nasal release	dⁿ
̟	Advanced	u̟	ˠ	Velarized	tˠ dˠ	ˡ	Lateral release	dˡ
̠	Retracted	e̠	ˤ	Pharyngealized	tˤ dˤ	̚	No audible release	d̚
̈	Centralized	ë	̴	Velarized or pharyngealized	ɫ			
̽	Mid-centralized	e̽	̝	Raised	e̝		(ɹ̝ = voiced alveolar fricative)	
̩	Syllabic	n̩	̞	Lowered	e̞		(β̞ = voiced bilabial approximant)	
̯	Non-syllabic	e̯	̘	Advanced Tongue Root	e̘			
˞	Rhoticity	ɚ a˞	̙	Retracted Tongue Root	e̙			

SUPRASEGMENTALS

ˈ	Primary stress	
ˌ	Secondary stress	ˌfoʊnəˈtɪʃən
ː	Long	eː
ˑ	Half-long	eˑ
̆	Extra-short	ĕ
|	Minor (foot) group	
‖	Major (intonation) group	
.	Syllable break	ɹi.ækt
‿	Linking (absence of a break)	

TONES AND WORD ACCENTS

LEVEL			CONTOUR		
e̋ or	˥	Extra high	ě or	˩˥	Rising
é	˦	High	ê	˥˩	Falling
ē	˧	Mid	e᷄	˦˥	High rising
è	˨	Low	e᷅	˩˨	Low rising
ȅ	˩	Extra low	e᷈	˧˦˧	Rising-falling
ꜜ		Downstep	↗		Global rise
ꜛ		Upstep	↘		Global fall

आरेख-13

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. बी. मामबर्ग (Bertil Malmberg) अध्ययन सामग्री की विविधता के आधार पर स्वनविज्ञान की चार शाखाओं का उल्लेख करते हैं* (क) सामान्य स्वनविज्ञान (मनुष्य उच्चारण तंत्र द्वारा स्वनों के उत्पादन की प्रक्रिया तथा इस प्रकार के उच्चरित स्वनों का विश्लेषण एवं अध्ययन), (ख) वर्णनात्मक स्वनविज्ञान (भाषा या बोली विशेष की स्वनिक विशेषताओं का विश्लेषण तथा अध्ययन), (ग) ऐतिहासिक स्वनविज्ञान (भाषाविज्ञान की स्वनिक विशेषताओं का कालक्रमिक विश्लेषण तथा अध्ययन) (घ) मानकीय/आदर्श स्वनविज्ञान (किसी भाषा के शुद्ध उच्चारण को निरूपित करने वाले नियम समुच्चय का विश्लेषण तथा अध्ययन)।
2. डेनियल जोन्स के मतानुसार, 'a glide is the incidental transitory sound produced when the organs of speech are passing from the position for one speech-sound to that of another by most direct route.'
3. महाभाष्य में स्वर को परिभाषित करते हुए कहा गया है,
   'स्वयं राजन्ते इति स्वरा अन्वग्भवति व्यंजनमिति'। 1/2/29
4. 'Cardinel vowel is a set to fixed vowel sounds having known acoustic qualities and known lip and tongue position.'
5. A dipthong is a syllabic element which begin in one sound and shifts to another – Heftner.
6. A syllabic element which begins with one sound and shifts through a second to third sound within the same syllabic is a thriphthong –Heftner.
7. Stress may be described as a degree of force with which a sound or syllable is uttered, it involves a strong push from the diaphran and consequently strong force of exhalaration. This generally gives the objective impression of loudness. –Daniel Jones.
8. फिन्नो-उगरिक परिवार की एस्टोनिअन भाषा में स्वर की तीन मात्राएँ मिलती हैं- ह्रस्व, दीर्घ और अत्यंत दीर्घ। इस भाषा sada (ह्रस्व अ) शब्द का अर्थ है 'सौ', saada (दीर्घ आ) का अर्थ है 'भेजा' तथा saada (अति दीर्घ अ) का अर्थ है 'आज्ञा लेना'।
9. 'उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः' ऋक् प्रातिशाख्य 3.1 में स्वर (सुर) के तीन भेद बताए गए हैं। संस्कृत वैयाकरण पाणिनी ने अष्टाध्यायी में इन तीनों को परिभाषित किया है-उच्चैरुदात्तः 1/2/29, नीचैरनुदात्तः 1/2/30, समाहारः स्वरितः 1/2/31 उच्चारण स्थान के उच्च अंश से उच्चरित स्वर उदात्त नीचे से अनुदात्त तथा दोनों से उच्चरित स्वन स्वरित कहलाता है।

स्वनप्रक्रिया

3.1 स्वरूप

स्वनविज्ञान के अंतर्गत मानवीय उच्चारण अवयवों की औच्चारिक कार्यविधि के आधार पर वाग्ध्वनियों के भौतिक गुणों का विवेचन होता है। द्वितीय अध्याय में की गयी चर्चा से स्पष्ट है कि ध्वनि उच्चारण में सुरतंत्रियों का विशेष महत्व है और मानव की सुरतंत्रियों के आकार-प्रकार में, आयु के अनुरूप परिवर्तन मिलता है। बच्चों तथा स्त्रियों की सुरतंत्रियाँ पतली व लचीली तथा पुरुषों और वयस्कों की कम लचीली होती है। अतः कह सकते हैं कि भौतिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उच्चरित ध्वनियाँ अन्य व्यक्तियों से भिन्न होंगी। प्रत्यक्षतः समान प्रतीत होने वाली, दो वक्ताओं द्वारा उच्चरित समान ध्वनि या शब्द की पृथकता को सूक्ष्म विवेचन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यही कारण है कि हम व्यक्ति को उसकी आवाज से पहचान लेते हैं। हर व्यक्ति नींद, क्रोध या प्रसन्नता की अवस्था में समान शब्द का उच्चारण कुछ न कुछ भिन्नता के साथ करता है। उच्चारण में कहीं सुर नीचा तो कहीं ऊँचा होता है, कभी किसी स्वन पर बल अधिक होता है तो कभी किसी अन्य पर। यद्यपि उच्चारण में इस प्रकार की एकाधिक सूक्ष्म भिन्नताएँ मिलती हैं किंतु उच्चारणगत अनेकरूपता होने पर भी शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

किसी भाषा की ध्वनियाँ अनेक शब्दों में व्यवहृत होती हैं, यथा—हिंदी की 'क' ध्वनि कमल, शक्ति, अचानक, पक्का, शब्दों में अलग-अलग स्थिति व भिन्न-भिन्न संयोजन क्रम में आई है। इन सभी स्थितियों में 'क' का उच्चारण बिल्कुल समान है, यह कहना कठिन है क्योंकि शब्द की अन्य ध्वनियाँ भी ध्वनि के उच्चारण पर प्रभाव डालती हैं। स्पष्ट है कि भाषा विशेष की ध्वन्यात्मक व्यवस्था विशिष्ट होती है और भाषिक ध्वनियों पर अनेक तत्व प्रभाव डालते हैं। एक भाषा की ध्वन्यात्मक संरचना में प्राप्त विविधता का विश्लेषण एवं वर्णन स्वनप्रक्रिया का क्षेत्र है।

3.2 स्वनविज्ञान एवं स्वनप्रक्रिया का संबंध

जहाँ स्वनविज्ञान ध्वनियों के भौतिक रूप के अध्ययन से संबद्ध है वहाँ सैद्धांतिक होने के कारण स्वनप्रक्रिया ध्वनियों के अमूर्त मानसिक पक्ष का अध्ययन करता है। स्वनविज्ञान सामान्य है जो स्वनों के उच्चारण, श्रवण एवं संवहन का वर्णन

करता है, स्वनप्रक्रिया विशिष्ट है जो भाषा विशेष में प्राप्त ध्वन्यात्मक संरचनाओं और व्यवस्थाओं का विश्लेषण वर्णन करती है।[1] अतः जहाँ विश्व की सभी भाषाओं के लिए स्वनविज्ञान सदृश होगा वहाँ विश्व की प्रत्येक भाषा स्वनप्रक्रिया की दृष्टि से दूसरी भाषा से भिन्न होगी। मानव द्‌वारा उच्चरित असंख्य स्वनों में से कोई भी भाषा कतिपय निश्चित संख्यक स्वनों का चयन कर उन्हें अपनी संरचनानुसार विशिष्ट अभिरचनाओं में व्यवस्थित करती है और ये किसी भाषा की स्वनप्रक्रिया का निर्माण करते हैं। स्पष्ट है कि विषय क्षेत्र समान होने पर भी स्वन ही स्वनविज्ञान एवं स्वनप्रक्रिया भिन्न दृष्टिकोणों से समान सामग्री का विश्लेषण करते हैं। जहाँ स्वनविज्ञान में वाग्ध्वनियों के उच्चारण, संवहन एवं प्रसारण से संबंधित सामान्य वर्णन किया जाता है वहाँ स्वनप्रक्रिया में भाषा विशेष में आगत ध्वनियों के प्रकार्य व व्यवस्था का विश्लेषण होता है। अतः स्वनप्रक्रिया को प्रकार्यात्मक स्वनविज्ञान भी कहते हैं।

3.3 स्वनिम एवं सहस्वन (phoneme and allophone)

भाषा की औच्चारिक विशेषताएँ मुख्यतः उसके प्रयोक्ताओं की भिन्नता पर निर्भर करती है। एक ही शब्द न केवल विविध वक्ताओं द्‌वारा अपितु एक ही वक्ता द्‌वारा बार-बार बोले जाने पर कुछ न कुछ पृथक् अवश्य होता है। प्रायः भाषाभाषी इस पृथकता को समझ नहीं पाते हैं और इन्हें समान मानते हैं। उच्चारण की यह भिन्नता जहाँ वक्ता के कारण होती है वहाँ इसका एक अन्य कारण ध्वनि प्रकृति भी हो सकता है। ध्वनियाँ अपने संदर्भ, परिवेश और पर्यावरण से प्रभावित होने के कारण संभाषण तारतंय में बहुधा एक दूसरे में अंतर्लीन हो जाती हैं अथवा पूर्व, पर की ध्वनियों की विशेषता उन पर आच्छादित हो जाती है, उदाहरणार्थ—फलूदा तथा उलटा में हिंदी 'ल' ध्वनि है किंतु दोनों शब्दों में 'ल' के उच्चारण में भिन्नता है जबकि प्रत्येक हिंदी भाषी इन्हें एक मानता है। इसी प्रकार भाषा के सुर, बलाघात एवं दीर्घतापरक लक्षण ध्वनि का संस्कार कर देते हैं। यही नहीं प्रतिवेशी ध्वनियाँ भी एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। इन कारणों से संभाषण में ध्वनियों का स्वरूप निरंतर परिवर्तित होता है। यह परिवर्तन हमारे स्वाभाविक उच्चारण का अंग है किंतु भाषाभाषी के रूप में हम किसी ध्वनि की इन आनुषांगिक भिन्नताओं के प्रति सजग नहीं रहते और इन्हें एक ही (समान) ध्वनि के रूप में पहचानते हैं, यथा—काल, आकार, फाका शब्दों में आगत 'क' ध्वनि को हम एक ही ध्वनि के रूप में मान्यता देते हैं। भाषा तथा वक्ताओं की यह प्रवृत्ति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि हम ध्वनि की कुछ विशेषताओं के प्रति सजग रहते हैं और कुछ के प्रति उदासीन। साधारणतः वक्ता उन्हीं भिन्नताओं के प्रति सजग रहता है जो प्रभेदक होती हैं[2] अर्थात् जो अर्थगत भिन्नता लाती हो, यथा- काल, खाल, माल, गाल शब्दों में प्रथम ध्वनि शब्द के अर्थ को परिवर्तित करती है अतः वक्ता इनके अंतर को समझता है और इनके प्रति सचेत रहता है जबकि पहले दिए गए उदाहरण की 'क' ध्वनि सार्थक परिवर्तन नहीं लाती है। अतः वक्ता इसकी भिन्नता के प्रति

उदासीन रहता है। भाषा विशेष की ध्वनियों की जिन भिन्नताओं के प्रति भाषाभाषी उदासीन रहते हैं और उन्हें समान ध्वनि के रूप में मान्यता देते हैं सदृश ध्वनियों के ऐसे समूहों का पारिभाषिक नाम स्वनिम (ध्वनिग्राम) है।[3]

इस प्रकार स्वनिम ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ध्वनियों का एक वर्ग है, जिनकी भिन्नता के प्रति वक्ता सचेत नहीं रहता है तथा जो ऐसे अन्य वर्गों से व्यतिरेक प्रदर्शित करता है। इस वर्ग की सदस्य ध्वनियाँ पूरक वितरण में मिलती हैं अर्थात् कोई भी सदस्य एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकता है। इस प्रकार समुच्चय के प्रत्येक सदस्य का स्थान और स्थिति निश्चित होती है, उदाहरणार्थ—हिंदी स्वनिम /ब्/, /सब्/, /कब्/, /जब्/ शब्दों के अंत में अस्फोटित है किंतु /बस्/ /बड़ा/ /सबक्/ शब्दों में स्फोटित है। इन दोनों सहस्वनों के प्रयोग स्थान भिन्न-भिन्न हैं। ये एक वर्ग के सदस्य हैं, एक नहीं हैं जबकि व्यावहारिक दृष्टि से समुच्चय के सभी सदस्यों को बिल्कुल एक माना जाता है। स्वनिम भाषा की लघुतम इकाई है जिसे खंडीकृत नहीं किया जा सकता है। यह निश्चित है कि एकाधिक अभिलक्षण से युक्त होने के कारण यह एक जटिल औद्भूति है क्योंकि ये अभिलक्षण स्वतंत्र नहीं होते हैं तथा स्वनिम में इनका निर्वाह साथ-साथ होता है। इस प्रकार स्वनिम ध्वनि न होकर सदृश ध्वनि लक्षणों का समूह है जिसकी परिधि से बाहर जाते ही ध्वनि पृथक् प्रतिभासित होने लगती है। इस समूह की सदस्य ध्वनियाँ **सहस्वन/उपस्वन (allophone)** कहलाती हैं। सहस्वन स्वनिम (वर्ग) के परिवर्तों में से एक परिवर्त होता है जिनका प्रयोग शब्द के अर्थ में परिवर्तन नहीं लाता है अर्थात् ये स्थानापत्ति किए जाने पर प्रभेदक नहीं होते हैं और इनके स्वनिक रूप परस्पर मिलते-जुलते हैं। प्रायः सहस्वन एक दूसरे से भिन्न परिवेश में प्रयुक्त होते हैं, यथा- अंग्रेजी के /l/ स्वनिम के दो सहस्वन मिलते हैं। lamp, light शब्दों में प्रयुक्त [l] जो clear l कहलाता है जिसका प्रयोग अग्र स्वर के पहले होता है तथा अन्य शब्दों table, old आदि में आगत [l] जिसे dark l कहते हैं। इनके प्रयोग संदर्भ निश्चित हैं जहाँ clear l मिलता है वहाँ dark l का प्रयोग नहीं किया जा सकता अतः ये पूरक वितरण में हैं। कतिपय सहस्वन मुक्त वितरण में भी मिलते हैं, यथा- दक्षिणीय ब्रिटिश अंग्रेजी में दो स्वरों के मध्य आगत /r/ – very – संघर्षी या उत्क्षिप्त दोनों रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। हिंदी में भी कतिपय सहस्वन आगत शब्दों में मुक्त वितरण में मिलते हैं, जैसे गरीब/ग़रीब, कानून/क़ानून, आफिस/आफ़िस आदि। सहस्वन सदैव कोष्ठकों में [ ] रखे जाते हैं जबकि स्वनिम समानान्तर रेखाओं // में। व्यावहारिक दृष्टि से सहस्वनों का विश्लेषण अत्यंत कठिन होता है। यही कारण है कि लिपि चिह्न प्रतिनिधि ध्वनियों के होते हैं। उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्वनिम की कतिपय विशेषताएँ निरूपित की जा सकती हैं।

1. स्वनिम ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ध्वनियों का एक समुच्चय है। यह ध्वनि नहीं है वरन कतिपय ध्वनि लक्षणों के समूह का द्योतक है।

2. ध्वनियों का उच्चारण ध्वनिलक्षणों की समिष्ट रूप में होता है। एक भाषा में प्रभेदक का कार्य करने वाला ध्वनि लक्षण आवश्यक नहीं है कि दूसरी भाषा में भी प्रभेदक हो (अर्थगत भिन्नता उत्पन्न करे), यथा—बंगाली भाषा में इ एवं उ स्वरों में दीर्घता प्रभेदक नहीं होती है जबकि हिंदी में होती है- बिन : बीन, सिल : सील, सुना : सूना आदि। इसी प्रकार गुजराती और मराठी में इ और उ प्रभेदक नहीं है यद्यपि बंगला की ही भाँति लिखित भाषा में मौजूद हैं। अंग्रेजी में महाप्राणता प्रभेदक नहीं होती है वहाँ क : ख, प : फ समान ध्वनियों के रूप में स्वीकार्य हैं जबकि हिंदी में काट : खाट, पाक : फाक शब्दों में महाप्राण ध्वनियों के कारण ही अर्थ में भिन्नता आती है। स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषा में भिन्न-भिन्न स्वनिम होते हैं और ये सदैव प्रभेदक होते हैं अर्थात् समान संदर्भ में एक के स्थान पर दूसरा स्वनिम प्रयोग किए जाने पर सार्थक भिन्नता प्रदर्शित करता है, यथा—कल : पल, काल : माल, कील : खील, कगर : डगर, किस : जिस, कोरा : गोरा, कोई : सोई, काम : नाम, कूक : चूक, कूकना : थूकना, कैसा : ऐसा, कभी : अभी, कर : नर, करम : भरम इत्यादि। स्पष्ट है कि स्वनिम सार्वभाषिक नहीं होते हैं और प्रत्येक भाषा में इनकी संख्या निश्चित होती है।

3. कभी-कभी स्वनिम मुक्त वितरण (free variation) में भी मिलते हैं। भाषा में जब दो स्वनिम अन्य संदर्भों में प्रभेदक का कार्य करें किंतु कुछ निश्चित स्थानों पर सार्थक भिन्नता न प्रदर्शित करें तो उन्हें मुक्त वितरण में मानते हैं, यथा—हिंदी में /ल/ तथा /र/ स्वनिम हैं- लाल : राल, कर : कल, किंतु दिवाल : दिवार शब्द में ये प्रभेदक नहीं हैं।

3.4 स्वनिम निर्धारण के सिद्धांत

भाषा विशेष के स्वनिमों व सहस्वनिमों के निर्धारण व विश्लेषण के लिए कतिपय मार्गदर्शी सिद्धांतों का निरूपण किया गया है—

3.4.1 ध्वन्यात्मक समानता (phonetic similarity)

एक स्वनिम के अंतर्गत जिन सदृश ध्वनियों की गणना होती है वे स्थूल रूप से ध्वन्यात्मक समानता रखती हैं। ऐसी ध्वनियाँ जिनका उच्चारण स्थान तथा प्रयत्न दोनों आधार पर समान हैं ध्वन्यात्मक दृष्टि से सदृश कही जाती हैं। कभी-कभी स्वनिम की सदस्य ध्वनियाँ ध्वन्यात्मक दृष्टि से भिन्न भी होती हैं किंतु ये भिन्नता प्रभेदकता के कारण नहीं वरन् प्रकार्यात्मक समानता के कारण होती है, जैसे—हिंदी में ड तथा ड़ के मध्य की भिन्नता से हिंदी भाषी परिचित हैं किंतु ये ध्वन्यात्मक समानता रखती हैं। ये दोनों मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में जिह्वा की स्थिति प्रतिवेष्ठित रहती है। इसमें भिन्नता यह है कि ड स्पर्श है तो ड़ उक्षिप्त किंतु हिंदी में उत्क्षिप्तता प्रभेदक लक्षण नहीं है। अतः दोनों ध्वन्यात्मक रूप से समान हैं और एक ही स्वनिम के सदस्य

हैं। यहाँ प्रकार्यात्मक समानता है जहाँ ड शब्द में प्रत्येक स्थिति में प्रयुक्त होता है—डाल, डगर, अड्डा, अंडा वहाँ ड़ शब्द मध्य व अंत में ही आता है—पहाड़, सड़क, पकड़, घुड़साल। पश्चिमी हिंदी की बोली बाँगरू में संभवतः इसी कारण घोड़ा, घोडा दोनों रूप मिलते हैं।

3.4.2 वितरण (distribution)

परिवेश विशेष के अनुसार किसी भाषिक इकाई के संभावित प्रयोगों का विन्यास वितरण कहलाता है अर्थात् वह प्रयोग संदर्भ जिसमें कोई भी भाषिक इकाई प्रयुक्त होती है। वितरणात्मक विश्लेषण यह ज्ञात करने का प्रयास करता है कि छोटी भाषिक इकाइयाँ बृहत्तर इकाइयों में कहाँ निविष्ट हो सकती हैं, यथा—शब्दों का वाक्यान्तर्गत वितरण अथवा स्वनिमों का शब्दांतर्गत वितरण। सर्वप्रथम वितरण सिद्धांत का विकास स्वनप्रक्रिया के क्षेत्र में हुआ परवर्ती अध्ययनों में अन्य भाषायी स्तरों में भी इसका प्रसार हो गया। वितरण तीन प्रकार के होते हैं—

(क) पूरक वितरण (complementary distribution)—एक भाषिक इकाई जिस परिवेश में आए वहाँ दूसरी भाषिक इकाई का प्रयोग न किया जा सके अर्थात् जब दो या दो से अधिक ध्वनियों का वितरण इस प्रकार हो कि उनमें से कोई भी ठीक उसी प्रकार की स्थिति में घटित न हो, जिसमें एक घटित होती है, ऐसी स्थिति में प्रयुक्त ध्वनियाँ पूरक वितरण में कही जाती हैं। किसी स्वनिम की सदस्य ध्वनियाँ सदैव पूरक वितरण में रहती हैं, उदाहरणार्थ जहाँ [ड़] का प्रयोग होता है वहाँ प्राचीन हिंदी में [ड] ध्वनि नहीं प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार अंग्रेजी के [k] स्वनिम के दो उपस्वन [k] और महाप्राण [k^h] पूरक वितरण में मिलते हैं। अल्पप्राण [k] या तो [s] के बाद आता है, जैसे—sky अथवा मध्य या अन्त्य स्थिति में किसी अन्य व्यंजन के पूर्व आता है जैसे—act जबकि महाप्राण [k^h] आद्य स्थिति में किसी स्वर के पूर्व आता है, जैसे—key।

(ख) व्यतिरेकी वितरण (contrastive distribution)—दो या दो से अधिक सदृश स्वनों या रूपों का ऐसा वितरण जिससे समान परिवेश वाले शब्दों की भिन्नता की प्रतीति हो अर्थात् जब भाषिक इकाइयाँ समान संदर्भ में प्रयुक्त होकर अर्थगत भिन्नता उत्पन्न करें, यथा—गाना : खाना में /ग्/ : / ख्/ और काल : साल में / क् / : / स् /। भाषाओं के समस्त स्वनिम व्यतिरेकी वितरण में मिलते हैं।

(ग) मुक्त वितरण (free distribution)—दो भाषिक इकाइयों का ऐसा वितरण जिनका संदर्भ/परिवेश समान हो और वे अर्थगत भिन्नता न उत्पन्न करें, मुक्त वितरण कहलाता है, उदाहरणार्थ—भोजपुरी में अनुस्वार एवं अनुनासिक के मध्य मुक्त वितरण है—लंबा : लाँम्बा या जापानी में [ल] और [र]।

3.4.3 अभिरचना समता (pattern congruity)

किसी भाषा के स्वनिमों तथा रूपिमों की व्यवस्था में अंतर्निहित सममिति अभिरचना समता कहलाती है। यह सममिति स्वनिम विशेष या कुछ स्वनिमों को एक स्वनिम या स्वनिम गुच्छ सिद्ध करने का आधार होती है। भाषा संरचना विविध इकाइयों से निर्मित है। ये इकाइयाँ बहुआयामी संबंधों में आबद्ध रहती हैं। अतः आवश्यक है कि जिस स्वनिम का निरूपण हो वह भाषा के इन समस्त संबंधों के परिप्रेक्ष्य में हो उससे विरोधी न हो, उदाहरणार्थ—हिंदी में ह्रस्व स्वर तीन 'अ, इ, उ' हैं तथा दीर्घ पाँच 'आ, ई, ऊ, ए, ओ' किंतु फिर भी यहाँ अभिरचना समता है क्योंकि तीन ह्रस्व स्वरों का संबंध पाँच दीर्घ स्वरों से है, यथा—ह्रस्व इ दीर्घ ई एवं ए से संबंधित है तथा ह्रस्व ए का संबंध दीर्घ ऊ एवं ओ से है। इसी प्रकार ह्रस्व अ का दीर्घ आ से स्पष्ट संबंध है अतः हिंदी के तीन ह्रस्व स्वरों की तुलना में दीर्घ स्वरों की संख्या का स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। स्वनिमिक विश्लेषण की संदेहास्पद स्थिति के विश्लेषण में अभिरचना समता सहायक होती है।

3.4.4 लघुता (economy)

किसी भाषा के स्वनिम निर्धारण में कम से कम संख्या में स्वनिमों का चयन अधिक उपयुक्त एवं वैज्ञानिक माना जाता है। हिंदी में पाँच नासिक्य ध्वनियाँ (न्, म्, ङ्, ञ्, ण्) मिलती हैं। व्यतिरेक प्रदर्शित करने के कारण न् तथा म् स्वतंत्र स्वनिम हैं किंतु ङ्, ञ्, ण् को स्वतंत्र स्वनिम नहीं कहा जा सकता है। इनके प्रयोग संदर्भ निश्चित हैं। हिंदी में ङ् और ञ् का महत्व नगण्य है और इनका प्रयोग स्थान की दृष्टि से अपनी वर्गीय ध्वनियों के पूर्व ही होता है अर्थात् ङ् का कवर्ग के पूर्व और ञ् का चवर्ग के पूर्व प्रयोग होता है, अन्यत्र नहीं। हिंदी के स्वनिमिक विश्लेषण के आधार पर /n/, /m/, /M/ तीन नासिक्य स्वनिम माने जाते हैं। लघुता के कारण यह विश्लेषण अन्य की तुलना में अधिक स्वीकार्य होगा। किंतु यह निश्चित है कि उपरिवर्णित सिद्धांतों का सम्मिलित रूप ही स्वनिम निर्धारण में सहायक होता है।

3.5 स्वनिम के प्रकार

स्वनिम के दो प्रकारों की चर्चा मिलती है— **खंडात्मक** (segmental) एवं **अधिखंडात्मक** (suprasegmental)

वह स्वनिम जिसकी निश्चित कालावधि होती है और जो अनुक्रमशील होता है खंडात्मक स्वनिम कहलाता है। कतिपय भाषाओं में अनुनासिकता, बलाघात, मात्रा आदि अधिखंडात्मक अभिलक्षण स्वतंत्र स्वनिम के रूप में मिलते हैं, यथा—हिंदी में अनुनासिकता एवं मात्रा स्वतंत्र स्वनिमवत् कार्य करते हैं। अतः ये अधिखंडात्मक वर्ग

में आते हैं—बाट : बाँट; सास : साँस; आधी : आँधी; फास : फाँस (अनुनासिकता) सिल : सील, मन : मान/कम : काम/सुना : सूना (मात्रा)। इस प्रकार मात्रा, आघात, अनुनासिकता, संहिता आदि से संबद्ध एवं स्वनिमिक स्तर पर सिद्ध अभिलक्षण, द्वितीय वर्ग में आते हैं।

3.6 निर्विषमीकरण (neutralization)

यदि किसी निश्चित परिवेश में दो स्वनिमों के बीच प्राप्त भेद/व्यतिरेक समाप्त हो जाए तो इसे परिवेश के निर्विषमीकरण की संज्ञा देते हैं। इस विशिष्ट स्थिति में आगत दो स्वतंत्र स्वनिमों का एकीकृत स्वरूप आर्की-स्वनिम (archi phoneme) कहलाता है। हिंदी में अनुस्वार आर्की स्वनिम का उदाहरण माना जा सकता है क्योंकि एक स्थिति में नासिक्य व्यंजन न्, म् व्यतिरेक प्रदर्शित करने के कारण स्वनिम हैं (यथा- नाला : माला, नाना : मामा, कान : काम) किंतु व्यंजनपूर्व स्थिति में इनके मध्य का भेद समाप्त हो जाता है, यथा—

संतान : संतान, सम्वाद : संवाद

संताप : संताप, सम्पत्ति : संपत्ति

इसी प्रकार जर्मन तथा रूसी भाषाओं में आद्य और मध्य स्थिति में तो /t, d/ स्वतंत्र स्वनिम हैं किंतु अंत्य स्थिति में उनका निर्विषमीकरण हो जाता है, यथा—जर्मन Rad (चक्र, साइकिल) तथा Rat (सलाह, काउन्सिल) का उच्चारण समान /ra:T/ होता है। आर्की स्वनिम को सामान्यतः कैपिटल अक्षर में लिखा जाता है, उदाहरणार्थ— t, d के घोषत्व अभिलक्षण के निर्विषमीकरण से उत्पन्न आर्की स्वनिम को /T/–/ra:T/ से व्यक्त किया जाता है।

3.7 स्वन गुण विश्लेषण (prosodic analysis)

लन्दन संप्रदाय के विद्वान जे. आर. फर्थ तथा उनके अनुयायियों ने स्वनप्रक्रिया के एक नवीन पक्ष स्वनगुण विश्लेषण की खोज की। इसका संबंध उन स्वनप्रक्रियात्मक अभिलक्षणों से है जो स्वनिमिक इकाई के बाद आते हैं। वास्तव में यह सिद्धांत प्रभेदक अभिलक्षण सिद्धांत के आधुनिक रूप से संबंधित है किंतु भिन्न पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग ने इनकी समानता को ढक दिया है। स्वनगुण सिद्धांत तथा परंपरावादी प्रभेदक अभिलक्षण सिद्धांत का मुख्य अंतर यह है कि इनमें से द्वितीय, अमरीकी स्वनिमिकी की भाँति खंडात्मक/स्वनिमिक सिद्धांत है जबकि प्रथम सिद्धांत खंडात्मक एवं अधिखंडात्मक तत्वों को भाषा की स्वनप्रक्रियात्मक तालिकाओं में समान स्थान देता है। इसका मानना है कि यद्यपि भाषाओं में कुछ अभिलक्षणों की प्रवृत्ति खंडात्मक और कुछ की अधिखंडात्मक होती है तथापि सिद्धांततः अधिखंडात्मक भाषा विशेष की व्यवस्था से संबंधित होती है। यह सिद्धांत अधिखंडात्मक के अंतर्गत सुर, मात्रा,

बलाघात के अतिरिक्त प्राणता, घोषीकरण नासिक्यीकरण, मूर्धन्यीकरण आदि की गणना भी करता है।

इस प्रकार स्वनगुण से तात्पर्य उस ध्वन्यात्मक अभिलक्षण से है जिसका संबंध एकाधिक खंड (segment) या स्वनिमिक इकाई से होता है, यथा—कन्नड़ में पाँच नासिक्य व्यंजन प्राप्त होते हैं और प्रत्येक नासिक्य एक स्पर्श युग्म के साथ प्रयोग में आता है इनकी विशेषता यह है कि ये नासिक्य परवर्ती स्पर्श ध्वनि के अभिलक्षण से युक्त होकर उच्चरित होते हैं। इन्हें 'a class of syllabic finals' की संज्ञा दी जाती है और इनकी अभिव्यक्ति निम्नवत् होती है।

$$m\begin{Bmatrix}\mathrm{p}\\\mathrm{b}\end{Bmatrix}\quad n\begin{Bmatrix}\mathrm{t}\\\mathrm{d}\end{Bmatrix}\quad \eta\begin{Bmatrix}\mathrm{t}\\\mathrm{d}\end{Bmatrix}\quad \lambda\begin{Bmatrix}\mathrm{c}\\\mathrm{j}\end{Bmatrix}\quad \partial\begin{Bmatrix}k\\g\end{Bmatrix}$$

द्वयोष्ठ्य दंत्य मूर्धन्य तालव्य वर्त्स्य

$$N\begin{Bmatrix}\mathrm{c-v}\\\mathrm{c+v}\end{Bmatrix}\quad N\begin{Bmatrix}\mathrm{c-v}\\\mathrm{c+v}\end{Bmatrix}\quad N\begin{Bmatrix}\mathrm{c-v}\\\mathrm{c+v}\end{Bmatrix}\quad N\begin{Bmatrix}\mathrm{c-v}\\\mathrm{c+v}\end{Bmatrix}\quad N\begin{Bmatrix}\mathrm{c-v}\\\mathrm{c+v}\end{Bmatrix}$$

इस प्रकार हमें पाँच आधारिक NC syllable finals का एक समुच्चय प्राप्त होता है जिनमें से प्रत्येक की विशेषता उच्चारण स्थान के आधार पर एक समग्रता के रूप में है।[4]

यह सिद्धांत किसी कथन की स्वनिक सामग्री के विश्लेषण के लिए सारणिक एवं शृंखलात्मक संबंधों के मध्य भेद करता है। सारणिक संबंधों की इकाइयाँ व्यवस्थापरक होती हैं और शृंखलात्मक संबंधों की संरचनात्मक। सारणिक संबंधों द्वारा व्याख्येय इकाइयाँ स्वनिमिक (phonomatic) कहलाती हैं अर्थात् वे जो स्वर, व्यंजन के रूप में प्राप्त होती हैं और जिन्हें खंडित किया जा सकता है। जो इकाइयाँ ध्वनि खंड का अंग न होकर अक्षरांश, अक्षर, वाक्यांश व वाक्य में प्राप्त होती हैं वे संरचना का अंग होती हैं। इन्हें स्वनगुण (prosody) कहते हैं। संरचना में उत्तरोत्तर आने वाली एकाधिक इकाइयों से इनका संबंध होता है अर्थात् वह इकाई जिसका संबंध एकाधिक स्वनिमिक इकाइयों से हो, यथा—कुछ भाषाओं में नासिक्य व्यंजन के बाद का स्वर हमेशा अनुनासिक होता है तथा कोई भी अनुनासिक स्वर नासिक्य व्यंजन के बाद ही आता है। इन भाषाओं में अनुनासिकता एक ध्वनि में न होकर ध्वनिसमूह में मिलती है, यही स्वनगुण है। स्वनगुण व स्वनविज्ञान के मध्य आख्याता का संबंध होता है। कोई भी ध्वन्यात्मक शृंखला एक ही साथ खंडीय तथा स्वनगुणिक दोनों हो सकती हैं। इनके मध्य न कोई नियम और न ही कोई क्रम मिलता है। स्वनगुण अनेक प्रकार

के होते हैं कुछ प्रमुख स्वनगुण कोटियाँ निम्नलिखित हैं—

1. वाक्य स्वनगुण—अनुतान परिरेखा; इसके उपवर्ग के रूप में पदबंधन परिरेखा या वाक्यांशों के स्वनगुण आते हैं।

2. शब्द स्वनगुण—संपूर्ण शब्द या एकाक्षर से बड़े अंशों द्वारा अभिव्यक्त अभिलक्षण, यथा- स्वर संगति।

3. अक्षर स्वनगुण - संपूर्ण अक्षरों में प्राप्त अभिलक्षण, यथा—तान, बलाघात या तालव्यीकरण अथवा वर्त्स्यीकरण।

4. अक्षर - अंश स्वनगुण—अक्षर के आदि, मध्य या अंत में प्राप्त अभिलक्षण, यथा—अंग्रेजी में महाप्राणीकरण और श्वासद्वारीकरण।

5. संहिता स्वनगुण—यह विशेषता उच्चस्तरीय संरचनात्मक इकाइयों (शब्द, रूपिम) के मध्य की सीमा में प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ—चेक, फिनीश या पोलिश आदि भाषाओं में प्राप्त निश्चित बलाधात स्वनगुण माना जा सकता है क्योंकि इसका केंद्र शब्द की सीमा होती है, यह संपूर्ण शब्द का गुण होता है और इसका प्रकार्य विभाजन करना है।

3.8 प्रजनक स्वनप्रक्रिया (generative phonology)

प्राग संप्रदाय एक प्रमुख संरचनात्मक संप्रदाय था जिसके प्रणेता एन. त्रुबेत्सकॉय ने भाषा के स्वनप्रक्रियात्मक अध्ययनों को एक नई दिशा दी। 1940 के लगभग प्राग संप्रदाय द्वारा प्रवर्तित स्वनप्रक्रिया अमरीका पहुँची और त्रुबेत्स्कॉय के सहयोगी रोमन जकोब्सन ने इसका आगे विस्तार किया। स्वनप्रक्रिया के क्षेत्र में प्राग संप्रदाय अपने अमरीकी संरचनावादी साथियों से बहुत आगे था। इनका स्वनप्रक्रियात्मक अध्ययन स्वनिम पर नहीं वरन् प्रतियोग (opposition) पर आधृत था। प्रतियोग से तात्पर्य भाषिक प्रतीक के अभिव्यक्ति (स्वनिक) पक्ष द्वारा एक भाषिक प्रतीक का दूसरे भाषिक प्रतीक से भेद है। यही भेद प्रभेदक लक्षण (distinctive teature) का कारण होता है और प्राग संप्रदाय प्रभेदक लक्षणों के गुच्छ के रूप में स्वनिम की व्याख्या करता है। स्वनिमों के ये अभिलक्षण एक स्वनिम को दूसरे से भिन्न स्थापित करते हैं इसी कारण इन्हें प्रभेदक लक्षण नाम दिया जाता है। त्रुबेत्सकॉय के अनुसार प्रतियोग में दो इकाइयों में जो भेद का कारण है उसके साथ-साथ, विरोधी इकाइयों के बीच पाई जाने वाली समानता भी समाविष्ट है। इनके अनुसार विश्व की समस्त भाषाओं की स्वनिमिक व्यवस्थाएँ कतिपय सीमित संख्यक द्विचर अभिलक्षण प्रतियोगों के आधार पर वर्णित की जा सकती हैं।

प्रजनक स्वनशास्त्री प्राग संप्रदाय तथा जकोब्सन के कार्यों से अत्यधिक प्रभावित थे। प्रजनक व्याकरण के विकास के साथ चॉम्स्की, हॉले, पोस्टल, बोथा आदि विद्वानों ने इस दिशा में अध्ययन प्रारंभ किए। इस क्षेत्र में किए गए मौरिस हॉले तथा चॉम्स्की

के कार्य विशेष रूप से सराहनीय हैं। प्रजनक स्वनप्रक्रिया भाषाविज्ञान की तीन समसामयिक धाराओं को अपने में समाविष्ट करती है। यह सपीर, ब्लूमफील्ड आदि अमरीकी भाषाविदों के अध्ययन से प्राप्त स्वनप्रक्रियात्मक प्रक्रियाओं से संबंधित अरूपात्मक अंतर्दृष्टियों को आत्मसात् करती है। साथ ही सभी नियमों को सुस्पष्ट व व्यवस्थित स्वरूप देने का प्रशिक्षण इन्होंने अमरीकी संरचनावादियों से ग्रहण किया और अंततः प्रजनक स्वनप्रक्रिया ने प्राग संप्रदाय के स्वनप्रक्रियात्मक सिद्धांत, विशेष रूप से प्रभेदक लक्षण से प्रेरणा ली।

प्रजनक स्वनप्रक्रिया किसी वाक्य की अमूर्त वाक्य विन्यासात्मक बाह्य संरचना और स्वनिक तथ्य के मध्य के संबंधों का विश्लेषण करता है। ये विद्वान स्वनप्रक्रिया के दो प्रकार्यों का उल्लेख करते हैं--आधारिक प्रकार्य तथा अन्य प्रकार्य। प्रत्येक वाक्य/बाह्य संरचना का उच्चारण कैसे किया जाए, यह वर्णन स्वनप्रक्रियात्मक घटक द्वारा सम्पादित आधारिक प्रकार्य के अंतर्गत आता है। साथ ही स्वनप्रक्रियात्मक घटक प्रत्येक बाह्य संरचना को एक स्वनिक प्रस्तुति समानुदेशित करता है और स्वनप्रक्रियात्मक नियमों द्वारा दुर्बोध बाह्य संरचनाओं एवं स्वनिक सामग्री के मध्य के संबंध को स्पष्ट करता है। ये सभी कार्य आधारिक प्रकार्य कहलाते हैं। अन्य प्रकार्य में मुक्त व व्यतिरेकी वितरण की व्याख्या, स्वनप्रक्रियात्मक दृष्टि से सम्भावित रूपिमों की स्थापना तथा स्वनप्रक्रियात्मक स्पष्टीकरण किया जाता है।

प्रजनक स्वनप्रक्रिया में स्वनिम को नहीं वरन् अभिलक्षण (feature) को एक इकाई माना गया है तथा स्वनिक खंड (segment) को समकालिक निर्देशित अभिलक्षणों के गुच्छ रूप में प्रतिपादित किया गया। इन अभिलक्षणों की व्याख्या स्वनिक या औच्चारिक आधारों पर की गई और इन्हें द्विचर माना गया जिनकी अभिव्यक्ति + तथा- चिह्नों द्वारा की जाती है। प्रजनक स्वनशास्त्रियों के मतानुसार एक स्वनिक खंड आक्षरिक या अनाक्षरिक (यथा— ± आक्षरिक) हो सकता है तथा आक्षरिकता का ज्ञान 'अक्षर शिखर' की धारणा द्वारा होता है, यथा--'काम' में 'आ' और अंग्रेजी शब्द button में [b^t ṇ] में ^ और ṇ ।

जकोब्सन ने बारह द्विचर प्रतियोगी प्रभेदक अभिलक्षण निश्चित किए थे जिनका आधार स्वनिक था। इस आधार पर किसी भी भाषा की ध्वनि के उच्चारण स्थान को ज्ञात करने के लिए चॉम्स्की तथा हॉले ने निम्नलिखित छः अभिलक्षण निश्चित किए—

3.8.1 पूर्ववर्ती-अपूर्ववर्ती (anterior - non anterior) मुखविवर के तालुवर्त्स्य क्षेत्र तथा उसके आगे के भाग में वायु प्रवाह के अवरोध से उच्चरित स्वन पूर्ववर्ती कहलाते हैं, यथा—[प्, त्] पूर्ववर्ती स्वन हैं और [क्, ख्] अपूर्ववर्ती।

3.8.2 जिह्वाफलकीय तथा अजिह्वाफलकीय (coronal and non coronal) जिनके उच्चारण में जिह्वा फलक अपनी तटस्थ स्थिति से ऊपर उठता है तथा अजिह्वाफलकीय स्वनों का उच्चारण जिह्वाफलक को तटस्थ स्थिति में

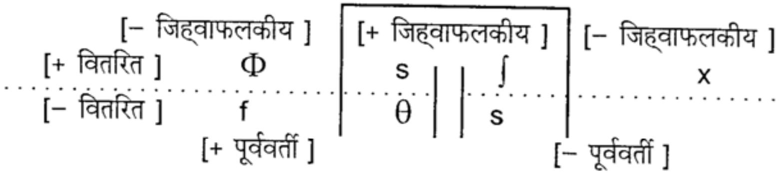
रखकर किया जाता है, यथा—[त्, द्, स्] जिह्वाफलकीय हैं जबकि [प्, ब्, क्] अजिह्वाफलकीय।

3.8.3 वितरित तथा अवितरित (distributed and non distributed) वायुप्रवाह की दिशा के साथ-साथ अधिक दूरी तक व्याप्त संकोचन के माध्यम से उच्चरित ध्वनि वितरित कहलाती है कम दूरी तक व्याप्त होने पर स्वन अवतरित होगा, यथा—

[Φ,ʃ,x] वितरित

[f,s] अवितरित

अभी तक वर्णित तीन अभिलक्षण सात उच्चारण स्थानों का निर्देश देते हैं—



आरेख-14

3.8.4 पश्च एवं अपश्च (back and non back) जिह्वा द्वारा अपनी तटस्थ स्थिति की अपेक्षा आकुंचित स्थिति में उच्चरित स्वन पश्च तथा निराकुंचित स्थिति में उच्चरित स्वन अपश्च कहलाता है। यह अभिलक्षण तालव्य तथा वर्त्स्य व्यंजनों में भिन्नता स्थापित करने के साथ-साथ अग्र स्वर [i,odOe, ε] तथा पश्च स्वर [u, o,)] की पृथकता को भी स्पष्ट करता है।

3.8.5 उच्च और अनुच्च (high and non high) उच्च ध्वनियों का उच्चारण जिह्वा को तटस्थ स्थिति से ऊपर उठाने पर होता है जबकि ऐसा न करने पर अनुच्च ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, यथा—व्यंजनों में मूर्धन्य, तालव्य, कोमल तालव्य उच्च हैं और स्वरों में इ, उ। इसी प्रकार द्वओष्ठ्य, दन्त्योष्ठ्य, वर्त्स्य अलिजिह्वीय व्यंजन अनुच्च हैं और अ, आ, ए, ओ, औ स्वर अनुच्च हैं।

3.8.6 निम्न एवं अनिम्न (low and non low) जिह्वा को तटस्थ स्थिति से नीचे लाने अथवा न लाने से उच्चरित स्वन निम्न एवं अनिम्न कहलाते हैं। व्यंजनों में ग्रसन्य (pharyngeal), श्वासद्वारीय निम्न स्वन हैं तथा स्वरों में ऐ ओ सामान्यतः अनिम्न हैं। शेष सभी स्वर और व्यंजन सामान्यतः अनिम्न हैं।

कतिपय अन्य अभिलक्षण जिह्वा की स्थिति को स्पष्ट करते हैं—

वृत्ताकार और अवृत्ताकार (rounded and non rounded) ओंठों को गोल करके उच्चरित स्वन या जिनके उच्चारण में ओंठ गोलाकार न हों। स्वरों में उ, औ वृत्ताकार तथा इ, ए अवृत्ताकार हैं।

दृढ़ तथा अदृढ़ (tense and lax) जिन स्वरों के उच्चारण में करण का स्पष्ट और पूर्ण (क्षिप्र/लघु) अपेक्षित गति से संचालन; वाक् पथ का अपनी केंद्रीय स्थिति से अपेक्षाकृत अधिक विकसित होना या न होना; बढ़े हुए वायुदाब का होना या न होना पाया जाए उन्हें दृढ़ या अदृढ़ कहते हैं।

चॉम्स्की स्वरात्मक - अस्वरात्मक, व्यंजनात्मक - अव्यंजनात्मक - मुखरित - अमुखरित अभिलक्षण की भी चर्चा करते हैं। इस आधार पर स्वर को [+ स्वरात्मक] और [– व्यंजनात्मक] तथा व्यंजन को [– स्वरात्मक] और [+ व्यंजनात्मक] तथा अर्द्ध स्वर को [– स्वरात्मक] और [– व्यंजनात्मक] इस रूप में वर्गीकृत किया जाता है। चॉम्स्की तथा हॉले ने कतिपय अन्य उच्चारण स्थानों की चर्चा के लिए निम्नलिखित पाँच अभिलक्षण बताए हैं—

क. नासिक्य-अनासिक्य (nasal and non nasal) जिनके उच्चारण में अलिजिह्वा के नीचे गिरे रहने के कारण वायु नासिका विवर से होकर निकलती है, यथा- न् म्, ङ् ञ्, ण् व्यंजन तथा अँ आँ ङ ऊँ आदि स्वर। यह स्थिति न होने पर वायु मुख विवर से निकलती है और अनासिक्य स्वन उच्चरित होता है।

ख. पार्श्विक-अपार्श्विक (lateral and non lateral) पार्श्विक स्वन के उच्चारण में जिह्वा के मध्य भाग के दोनों या एक पार्श्व को नीचे करने पर वायुप्रवाह चर्वक दाँतों से निकलता है और अपार्श्विक ध्वनियों में पार्श्व वाला मार्ग नहीं खुलता है।

ग. रुक्ष-अरुक्ष (strident and non strident) औच्चारिक दृष्टि से रुक्ष ध्वनियाँ अधिक रवयुक्त होती हैं और अरुक्ष कम, यथा- Φ की तुलना में s और s की तुलना में Φ रुक्ष है।

घ. प्रवाही-अप्रवाही (continuant and non continuant) ऐसा उच्चारण जिसमें वाक्-पथ में वायु धारा का मार्ग इतना अवरुद्ध नहीं होता कि उक्त मार्ग बंद हो जाए, इस स्थिति में उच्चरित सभी स्वर और संघर्षी स्वन प्रवाही होते हैं जबकि स्पर्श नासिक्य व्यंजन और स्पर्शघर्षी स्वन असंप्रवाही होते हैं। इनके उच्चारण में वाक्-पथ में वायु धारा का मार्ग इस सीमा तक अवरुद्ध रहता है कि उक्त मार्ग खुला रहे।

ङ. तात्कालिक मोचन एवं विलंबित मोचन (instantaneous release and delayed release) स्पर्श स्वनों का इस प्रकार तेजी अथवा देरी से निर्मोचित होना कि वायु-प्रवाह किसी संघर्षण या प्रक्षोभ के बिना (साथ) निकले। सभी स्पर्श संघर्षी च, छ, ज, झ, ञ विलंबित निर्मोचन वाले और क, त, प, तात्कालिक मोचन वाले होते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक स्वनिम उपर्युक्त वर्णित एकाधिक अभिलक्षणों के गुच्छ रूप में होता है, उदाहरणार्थ—हिंदी स्वरों का वर्णन निम्नवत् हो सकता है—

	इ	ई	ए	ऐ	अ	आ	औ	ओ	उ	ऊ
आक्षरिक	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+
निम्न	−	−	−	+	+	+	+	−	−	−
उच्च	+	+	−					−	+	+
पश्च	−	−	−	−	+	+	+	+	+	+
वृत्ताकार					−	−	+			
दृढ़	+	−			−	+			−	+

आरेख-15

तालिका के रिक्त स्थान पूर्वानुमेय हैं अतः उनका संकेत अनावश्यक है।

प्रजनक व्याकरण के एक घटक प्रजनक स्वनप्रक्रिया का उद्देश्य स्वनप्रक्रिया एवं स्वनिम प्रतीति से संबंधित सामान्य नियमों की स्थापना एवं रूप स्वनिमिकी सिद्धांत का प्रतिपादन करना है।[6] इस अध्ययन में संरचनात्मक भाषाविज्ञान की भाँति स्वनप्रक्रिया को स्वतंत्र स्तर के रूप में नहीं माना गया वरन् प्रजनकशास्त्री वाक्यरचना एवं स्वनप्रक्रिया की अंतर्प्रक्रिया के अध्ययन द्वारा निम्न प्रश्नों के समाधान का प्रयास करते हैं- स्वनप्रक्रिया एवं व्याकरण के संबंध का स्वरूप क्या है? स्वनप्रक्रियात्मक सूचना में वाक्यीय नियमों की पैठ किस सीमा तक है? तथा वाक्यीय सूचना के संदर्भ में स्वनप्रक्रिया नियम की पहुँच कहाँ तक है? आज इस क्षेत्र में अनेक कार्य हो रहे हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. ...Phonology proper is concerned with the function, behaviour and organization of sounds as linguistic items, as opposed to phonetics, which is rather more neutral study of the sounds themselves as phenomenon in the physical world... Lass, R.
2. भाषा का कार्य संदेश वहन एवं अर्थाभिव्यक्ति है। इस कार्य में ध्वनियाँ किस रूप में योगदान देती हैं यह प्रभेदकता पर निर्भर करता है। ध्वनि के इस अभिलक्षण की ओर सर्वप्रथम पोलिश भाषाशास्त्री कूर्तने ने 1870 में विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। इनके मतानुसार स्वनिम औच्चारिक एवं ध्वानिक अभिलक्षणों का जटिल समुच्चय है।
3. विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आधार पर स्वनिम को परिभाषित किया। कूर्तने, सेस्यूर एवं एडवर्ड सपीर इसे मानसिक आधार पर परिभाषित करते हैं जबकि ब्लूमफील्ड ने मानसिक आधार पर विरोध किया और प्रभेदक लक्षणों की लघुतम इकाई के रूप में भौतिक आधार पर विवेचन की। इसी प्रकार जहाँ डेनियल जोंस प्रकृति व स्वरूप को आधार बनाते हैं वहाँ ब्लाख एवं ट्रेगर प्रकार्य व प्रकृति को आधार मानते हैं। ट्वाडेल इन सभी का खंडन कर स्वनिम को अमूर्त एवं काल्पनिक इकाई के रूप में निरूपित करते हैं।

4. Phonology: An Introduction to Basic Concepts Lass, R.
5. '...it owed to the Prague School the over all explanatory, goals of phonological theory along with the notion of the distinctive feature. Newmeyer, F.J.
6. Generative Phonology, in other words, is essentially a theory of morphophonemic structure, with phonetics as a 'last stage.' Roger Lass.

रूपरचना

4.1 स्वरूप

रूपरचना का अर्थ है आकृतियों (रूप) का अध्ययन। इसका संबंध किसी भी वस्तु या चेतन से जोड़ा जा सकता है, उदाहरणार्थ- अगर कोई चाहे तो पेड़-पौधों या जानवरों अथवा जानवर विशेष की आकृति का अध्ययन कर सकता है। भाषाविज्ञान में व्याकरण के उपस्तर के रूप में यह 'शब्दों की आकृति' का अध्ययन करता है अर्थात् किसी भाषा में शब्द किस प्रकार नवीन आकृति ग्रहण करते हैं। शब्द कब, कहाँ और कौन सी आकृति लेंगे इसका निर्धारण किन नियमों द्वारा होता है आदि। कह सकते हैं कि विभिन्न भाषिक प्रयोग एवं रचना में आने वाले शब्दों का अध्ययन रूपरचना के अंतर्गत किया जाता है।

आरंभ से ही भाषा अध्ययन के क्षेत्र से जुड़ा विद्यार्थी शब्द के महत्व को जानता और समझता है। चौथी सदी ईसा पूर्व में रचित पाणिनि के संस्कृत व्याकरण अष्टाध्यायी में भी यद्यपि शब्द की महत्ता को स्वीकारा गया तथापि भाषाविज्ञान के उपस्तर के रूप में 'शब्दों की आंतरिक संरचना का अध्ययन करने वाले विषय रूपरचना' का विकास उन्नीसवीं शताब्दी की देन है। पारंपरिक भाषिक विश्लेषण में शब्द को व्याकरणिक सिद्धांत तथा कोशविज्ञान की आधारिक इकाई माना गया। संरचनाशास्त्रियों ने इस तथ्य पर बल दिया कि कोई भी शब्द एक या अधिक रूपिमों द्वारा निर्मित होता है। इस प्रकार रूपिम एवं शब्द के अंतर्गत आगत रूपिमों के विन्यास (arrangement) का अध्ययन रूपरचना का अध्ययन विषय कहा जा सकता है।

4.2 रूपिम, रूप एवं सहरूप/उपरूप (morpheme, morph, allomorph)

रूपरचना की आधारभूत इकाई रूपिम कहलाती है। हिंदी शब्द कला, कलाओं, कलात्मक, कलात्मकता आदि का खंडन करने पर कहीं सिर्फ स्वनिम प्राप्त होते हैं, यथा—

/क्/ + /अ/ + /ल्/ + /आ/

तो कहीं शब्द में एक तत्व संयुक्त मिलता है, यथा—

कला + –ओं

कला + –त्मक

जबकि अन्य में एकाधिक तत्वों का संयोजन भी प्राप्त होता है, यथा-

कला + –त्मक + –ता

अ + कला + –त्मक + –ता

हिंदी भाषा का वक्ता इन सभी को शब्द कहता/समझता है। वस्तुतः इनकी प्रकृति और प्रकार्य में भिन्नता है। जहाँ 'कला' एक स्वतंत्र इकाई और शब्द है वहीं अन्य रूपों में –त्मक, –ओं आदि शब्दांश संयुक्त हैं जो उसे 'कला' से भिन्न अर्थ देते है। अर्थपूर्ण होते हुए भी इन शब्दांशों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त तालिका में आगत इकाइयाँ शब्द तथा शब्द से बनी रचनाएँ हैं तथा इन शब्दांशों की गणना शब्द-संकल्पना के अंतर्गत नहीं की जा सकती है। भाषाविदों ने इनके वर्णन-विश्लेषण के लिए रूपिम की कल्पना की। रूपिम में शब्द तथा शब्दांश (संयोजक तत्व) दोनों सम्मिलित हैं और रूपिम व्याकरण स्तर की सबसे छोटी-अर्थवान आकृति कही जा सकती है।[1] सहरूप की संकल्पना को समझने के लिए निम्न तालिकाओं पर ध्यान दें—

तालिका - 1	तालिका - 2
कुर्सी	कुर्सियाँ
औरत	औरतें
पंखा	पंखे

हिंदी संज्ञा शब्दों के एकवचन तथा बहुवचन रूपों की इन तालिकाओं की तुलना यह संकेत करती है कि जहाँ प्रथम तालिका के शब्दों का खंडन हिंदी स्वर व्यंजन स्वनिमों में हो सकता है वहाँ द्वितीय तालिका के सदस्यों का सार्थक खंडन संभव है, अर्थात् -

कुर्सी + –आँ

औरत + –एँ

पंखा + –ए

यहाँ संयुक्त होने वाले तत्व बहुवचनत्व का बोध कराते हैं। विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि प्रथम तालिका में आगत शब्द विखंडित किए जाने पर अर्थहीन हो जाते हैं और हमें स्वनिम प्राप्त होते हैं अर्थात् इनका ध्वन्यात्मक विभाजन किया जा सकता है किंतु व्याकरणिक स्तर पर ये सार्थक विभाज्य नहीं हैं। अपने अविभाजित रूप में इन्हें व्याकरणिक स्तर के लघुतम सार्थक अंश के रूप में भी जाना जा सकता है। प्रत्येक रूपिम अन्य रूपिमों से व्यतिरेक रखता है अर्थात् एक रूपिम का ध्वन्यात्मक

स्वरूप व अर्थ दूसरे से भिन्न होता है।

भाषा को मानसिक एवं भौतिक पक्षों का सम्वाय मानने के पक्षधर विद्वान प्रत्येक भाषिक इकाई को भी इन दोनों पक्षों में विभाज्य मानते हैं। उनके अनुसार रूपिम मानसिक, कल्पित, अमूर्त इकाई है। भाषा में प्रयुक्त होते हैं **रूप** (morph)। इसकी सत्ता मूर्त व भौतिक है। इसका निर्माण स्वनिमों द्वारा होता है।[2] इस प्रकार भाषा में प्रयुक्त हर छोटे से छोटा स्वनक्रम जिसका अर्थ होता है, रूप कहलाता है। प्रत्येक रूप दूसरे रूप से ध्वन्यात्मक, आर्थी या दोनों दृष्टियों से भिन्न होता है, यथा—

अंग्रेजी	हिंदी	
{hide, conceal}	{पानी, जल}	ध्वन्यात्मक भिन्नता
{bank, bank}	{आम, आम}	आर्थी भिन्नता
{table, man}	{लड़का, घोड़ा}	ध्वन्यात्मक व आर्थी भिन्नता

भाषिक कथनों में रूपिम नहीं रूप प्रयुक्त होते हैं। जहाँ रूपिम मानसिक, अमूर्त हैं वहाँ रूप उनकी भौतिक दृश्यमान/श्रव्यमान आकृति है। एक रूपिम की परिधि में आगत विभिन्न रूपों को सहरूप (allomorph) कहते हैं। सहरूपों के मध्य परिपूरक वितरण मिलता है। अंग्रेजी के निम्नलिखित शब्द बहुवचनत्व की अभिव्यक्ति करते हैं—

{maps, snacks, caps, cats} /-s/

{dogs, hands, ideas} /-z/

{horses, judges, classes}/-iz/

{oxen}/-en/

{sheep, fish}/-ϕ/

स्वनिमिक दृष्टि से भिन्न होते हुए भी {-s, -z, -iz, -en, ϕ} ये अंश अर्थ के स्तर पर समान हैं और इनके प्रयोग संदर्भ निश्चित हैं। इनका परस्पर स्थान परिवर्तन नहीं किया जा सकता है अर्थात् -s के स्थान पर -z और -z के स्थान पर -en नहीं संयुक्त किया जा सकता है। अतः ये अंग्रेजी बहुवचन रूपिम के सहरूप हैं। इसी प्रकार हिंदी में बहुवचनत्व की अभिव्यक्ति निम्नवत् की जाती है—

{लड़के, पंखे, दरवाजे, गमले} /-ए/

{मेजें, औरतें} /-एँ/

{कुर्सियाँ, डालियाँ, मक्खियाँ } /-आँ/

{नौकर, पेड़, घर} /ϕ/

हिंदी में बहुवचन रूपिम के सहरूप {-ए, -एँ, -आँ, -ϕ} हैं। कुछ भाषाविदों ने कुर्सियाँ, डालियाँ, मक्खियाँ शब्दों में -याँ का संयोजन माना है। वास्तव में यहाँ -आँ प्रत्यय के संयोजन से दीर्घ ई ह्रस्व हो गई है और -आँ से पूर्व 'य्' श्रुति का आगम हुआ है।

स्पष्ट है कि रूपिम व्याकरणिक उपयुक्तता वाली लघुतम इकाई है, जिसका खंडन संभव नहीं है तथा रूपिम का प्रतिनिधित्व करने वाली व्यष्टि इकाइयाँ रूप कहलाती हैं। रूपरचना में रूप का वही महत्व है जो स्वनविज्ञान में स्वन का होता है। रूपिम को स्वनिम के समकक्ष रखा जाता है। एक रूपिम के अंतर्गत आगत विविध रूपों को सहरूप कहते हैं। वस्तुतः इनके मध्य कोई प्रकृतिगत अंतर नहीं मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक में रूप एवं रूपिम शब्दों का समान अर्थ में व्यवहार किया गया है।

4.3 रूपिम के प्रकार

रूप का विभाजन कई आधारों पर किया जा सकता है-

(क) रूपिम के व्यवहार के आधार पर

(i) मुक्त रूप (free morph)- कतिपय रूप किसी अन्य तत्व के सहयोग के बिना ही बोले व सुने जा सकते हैं। उनकी सत्ता स्वतंत्र होती है। भाषण संप्रवाह में प्रयुक्त होने के लिए उन्हें किसी अन्य इकाई की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे रूप मुक्त रूप कहलाते हैं, यथा-

हिंदी में - {तुम, घर, लिख, वृक्ष } इत्यादि।

अंग्रेजी में - {girl, they, go, table} इत्यादि।

(ii) बद्ध रूप (bound morph)- वे रूप भाषा में जिनका प्रयोग किसी अन्य रूप पर निर्भर करता है। जिनका स्वतंत्र उच्चारण संभव है किंतु भाषा में एकाकी प्रयोग नहीं मिलता है, उन्हें बद्ध रूप की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि ये प्रयोग के लिए किसी अन्य तत्व की आकांक्षा करते हैं। यह अन्य तत्व मुक्त रूप भी हो सकता है और बद्ध भी और कभी-कभी मुक्त + बद्ध में पुनः रूप संयुक्त होता है, यथा—

लड़की	+/-आँ/
बच्चा	+/-पन/
भाव	+/-उक/
इतिहास	+/-इक/
कुशल	+/-ता/

उपर्युक्त शब्दों में मुक्त रूप में बद्ध रूप संयुक्त हुए हैं। एक अन्य उदाहरण देखें—

re- + -ceive	pre- + -clude
de- + -cieve	con- + -clude
con- + tain	in- + -clude
re- + -tain	ex- + -clude

अंग्रेजी के ये शब्द बद्ध + बद्ध रूप द्वारा निर्मित हुए हैं।

तीसरी स्थिति वह है जब मुक्त + बद्ध में पुनः बद्ध रूपिम संयुक्त होता है, यथा—

बैठ + -अक = बैठक + -एँ = बैठकें

इतिहास + -इक = ऐतिहासिक + -ता = ऐतिहासिकता

man + -ly = manly + -ness = manliness

nation + -al = national + -ty = nationality

(ख) निर्मायक स्वनिमों के पारस्परिक संबंधों के आधार पर

(i) सतत- वे रूप जिनके निर्मायक स्वनिम एक सातत्य में मिलते हैं और उनके तारतम्य को खंडित करने पर उनका स्वरूप नष्ट हो जाता है, यथा—

महेश, गणेश इत्यादि।

(ii) विभक्त- जिनके निर्मायक स्वनिमों का विभाजन किया जा सकता है और खंडन जिनकी सत्ता को नष्ट नहीं करता है। अरबी में कतिपय रूप व्यंजनों के एक समुच्चय के रूप में होते हैं जिसमें स्वनिमों के संयोग द्वारा नवीन शब्दों की रचना की जा सकती है, उदाहरणार्थ—

s - l - m		k - t - b	
muslim	(मुसलमान)	katab	(उसने लिखा)
islam	(इस्लाम)	katib	(लेखक)
salaam	(अभिवादन)	makatab	(स्कूल)
		kitab	(पुस्तक)
		kitabat	(पत्राचार)

(ग) रूप की प्रकृति के आधार पर

(i) प्रतिस्थापक- वे रूपिम जिनके निर्मायक स्वनिमों के किसी अंश की स्थानापत्ति नवीन स्वनिमों द्वारा होती है प्रतिस्थापक कहलाते हैं। प्रतिस्थापित स्वनिम की प्रकृति के आधार पर दो वर्ग मिलते हैं—

(अ) स्वर प्रतिस्थापन	(ब) व्यंजन प्रतिस्थापन
पुत्र - पौत्र	जा - गया

चल - चाल	send - sent
कटना - काटना	advice - advise

(ii) **द्विरुक्ति-** जहाँ नए रूप की रचना मूल रूप के किसी स्वनिम की पुनरुक्ति द्वारा होती है, यथा- फिलीपीन की इलोकानो भाषा में प्रायः संज्ञा एकवचन से द्विवचन का निर्माण द्विरुक्ति द्वारा होता है—

एकवचन	बहुवचन
ū,lo (मुखिया)	ulūlo
dalan (सड़क)	daldálan
biág (जीवन)	bibiág
tálon (मैदान)	taltálon

ग्रीक भाषा में भी यह प्रवृत्ति मिलती है-

वर्तमान	भूतकाल
luka-	leluka (देखा)
grapha-	gegrapha (गिना)
d ka-	de d ka (दिया)

संस्कृत में जुहोत्यादिगुण की धातु में परोक्षभूत के रूप द्विरुक्ति द्वारा निर्मित होते हैं- पठ् - पपाठ, बुध् - बुबोध, दिश् - दिदेश, गम् - जगाम

(iii) **अनुपूरक-** जहाँ रूप के निर्मायक स्वनिम पूर्णतः लुप्त हो जाएँ और उनके स्थान पर सर्वथा नये रूप आ जाएँ उसे अनुपूरक रूप कहते हैं। भाषाओं में ये प्रायः अपवाद रूप में मिलते हैं, यथा- हिंदी में क्रिया के भूतकालिक रूप

सो + आ = सोया

चल + आ = चला

उठ + आ = उठा

पढ़ + आ = पढ़ा

इस प्रकार निर्मित मिलते हैं किंतु

जा + आ = गया

यह सर्वथा भिन्न रूप मिलता है। इसी प्रकार अंग्रेजी में भी अनुपूरक के उदाहरण अपवाद रूप में मिलते हैं, यथा- विशेषण शब्दों की तुलनात्मक मात्रा के संदर्भ में देखा जा सकता है—

small -	smaller -	smallest
big -	bigger -	biggest

किंतु कतिपय शब्दों में-

bad -	worse -	worst
good -	better -	best

इसी प्रकार अंग्रेजी में क्रिया के भूतकाल के रूप / -t / संयुक्त होकर बनते हैं—

talk - talked

jump - jumped

walk - walked

जबकि कुछ शब्दों में

go - went

is - was

are - were हो जाता है।

(घ) वियोजक रूप- आधार रूप के स्वनिमों में से किसी एक के लोप द्वारा रूपिमों का निर्माण होता है यथा—

editor - edit

television - televise

फ्रेंच भाषा में स्त्रीलिंग से पुलिंग विशेषण शब्द का निर्माण पुलिंग शब्द के अंतिम अक्षर के वियोजन से होता है, यथा—

grãd - grã (बड़ा)

ptit - pti (छोटा)

bon - bo (अच्छा)

(iv) शून्य रूप- साधारणतः भाषाओं में किसी एक रूपिम द्वारा नवीन व्याकरणिक कार्य की अभिव्यक्ति किसी न किसी दृश्यमान परिवर्तन द्वारा होती है और इस प्रकार कहीं रूप के निर्मायक स्वनिम का लोप कहीं स्थानापत्ति तो कहीं अनुपूरण सर्वथा नवीन अर्थ की अभिव्यक्ति करता है किंतु जब कोई नवीन व्याकरणिक प्रकार्य बिना किसी दृश्यमान परिवर्तन के पूर्ण हो, तो इस स्थिति में शून्य रूप की चर्चा की जाती है अर्थात् भाषा में जब कोई व्याकरणिक कार्य (वचन परिवर्तन, लिंग परिवर्तन, काल भेद आदि) किसी रूपिम विशेष द्वारा सम्पादित हो और वही व्याकरणिक कार्य कुछ स्थलों में, अपवाद रूप में, बद्ध रूप प्रत्यय संयोजन के बिना ही सम्पादित हो तो उसे शून्य रूप पर आरोपित करते हैं, उदाहरणार्थ- हिंदी संज्ञा शब्दों में वचन परिवर्तन के लिए कई प्रत्यय संयुक्त मिलते हैं—

लड़का -	ए	लड़के
लड़की -	आँ	लड़कियाँ
घोड़ा -	ए	घोड़े

जबकि हिंदी में कुछ पुल्लिंग शब्दों का एकवचन तथा बहुवचन का बाह्यरूप

एक समान रहता है अर्थात् बहुवचन का व्याकरणिक कार्य बिना किसी दृश्यमान बाह्य परिवर्तन के पूर्ण होता है।

आदमी सोता है।

आदमी सोते हैं।

हाथी दौड़ पड़ा।

हाथी दौड़ पड़े।

नौकर आया।

नौकर आए।

शेर दहाड़ता है।

शेर दहाड़ते हैं।

ऐसी स्थिति में आदमी + शून्य रूप = बहुवचन यह प्रक्रिया स्वीकार की जाती है। विश्लेषण के लिए शून्य रूप को ϕ चिह्न द्वारा चिह्नित किया जाता है—

नौकर + ϕ = नौकर बहुवचन

अंग्रेजी के कतिपय भूतकालिक क्रियारूपों में भी शून्य रूपिम मिलता है—

cut - cut	wet - wet
put - put	bet - bet
cost - cost	slit - slit
shut - shut	shed - shed.

व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण शून्य रूपिम की संकल्पना संस्कृत वैयाकरण पाणिनि की देन है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अष्टाध्यायी में पाणिनि ने निम्न सूत्र में इसकी चर्चा की। **अदर्शनम् लोप** : 1/1/60 - जो दृश्यमान नहीं है उसकी लोप संज्ञा होती है। साथ ही 'प्रत्यये स्थाने प्रत्यय लक्षणम्' द्वारा इस तथ्य को अधिक स्पष्ट किया गया, अर्थात् प्रत्यय के स्थान पर प्रत्यय का लक्षण मानना चाहिए। यदि कहीं कोई व्याकरणिक कार्य प्रत्यय विशेष द्वारा पूर्ण होता है और अन्य उद्धरणों में प्रत्यय संयोजन के अभाव में भी वही कार्य होता है तो उस स्थिति में प्रत्यय की सत्ता को स्वीकार कर लोप संज्ञा माननी चाहिए।

(घ) आंतरिक संरचना के आधार पर

(i) खंडेतर स्वनिमों द्वारा निर्मित रूप- सुर, बलाघात अनुनासिकता आदि खंडीय न होने के कारण खंडेतर स्वनिम कहलाते हैं। कुछ भाषाओं में प्राप्त रूपिम खंडेतर स्वनिमों द्वारा निर्मित होते हैं, यथा-कांगो की नगबाका भाषा में क्रिया के काल और अर्थ का ज्ञान सुर पर निर्भर करता है। हिंदी में सीमित संदर्भों में अनुनासिकता बहुवचन लक्षित करती है—

एकवचन		बहुवचन
है-	अनुनासिकता	हैं
चली-	अनुनासिकता	चलीं
गई-	अनुनासिकता	गईं

इसी प्रकार वैदिक संस्कृत में बलाघात के कारण कतिपय शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है—

नपुसंकलिंग	ब्र'ह्मन् उदात्त स्वर आदि	'प्रार्थना'
पुल्लिंग	ब्रह्म'न् उदात्त स्वर अंत	'स्त्रोता'

(ii) खंडीय स्वनिमों द्वारा निर्मित—शेष समस्त रूपिम खंडीय स्वनिमों द्वारा निर्मित होने के कारण इस वर्ग में आते हैं।

(ङ) व्याकरणिक व्यवहार के आधार पर

(i) विभक्तिपरक रूप—जो रूप शब्द और उसके व्याकरणिक प्रकार्य-बहुवचनत्व, लिंग काल आदि के मध्य के संबंध को स्पष्ट करते हैं वे विभक्तिपरक कहलाते हैं, यथा—

हिंदी में लिंग संबंधी विभक्तिपरक रूपिम-

बाघ - बाघिन	-इन
शेर - शेरनी	-नी
हाथी - हथिनी	-इनी

अंग्रेजी में काल संबंधी विभक्तिपरक रूपिम-

walk	walked
talk	talked
jump	jumped
land	landed

इन्हें विभक्तिपरक प्रत्यय की संज्ञा भी दी जाती है और इनका विस्तारपूर्वक अध्ययन विभक्तपरक रूपरचना (inflectional morphology) के अंतर्गत किया जाता है।

(ii) व्युत्पादी रूप- वे रूपिम जो भाषा में नवीन शब्द-रचना में सहायक होते हैं और जिनके संयोजन से शब्द की वृयुत्पादक क्षमता बनी रहती है, यथा—

हिंदी में -	चल	इतिहास
	चलता	ऐतिहासिक
	अचल	ऐतिहासिकता
	अचलता	प्रागैतिहासिक

अंग्रेजी में-	mature	natural
	maturity	naturally
	immature	unnaturally
	immaturity	naturalness

4.4 धातु, प्रत्यय, प्रातिपादिक और आधार रूप

एक अन्य उपयोगी वर्गीकरण धातु (root) तथा प्रत्यय (affix) के मध्य किया जाता है।

धातु प्रकृति केंद्रीय आधारभूत तत्व हैं यह एक शब्दात्मक हो सकती है जिसमें कुछ भी संयुक्त नहीं होता है। धातु एक रूपिम द्वारा निर्मित होती है और मुक्त व बद्ध दोनों प्रकार की होती है।

किसी शब्द का अविभाज्य अंश जो केंद्रीय आधारभूत तत्व होता है धातु कहलाता है। यह शब्द का ऐसा अंश होता है जो सभी शब्दों में उपस्थित रहता है- कहीं अपने मूल रूप में तो कहीं कुछ परिवर्तन के साथ। उदाहरणार्थ- 'बैठ' धातु है जो बैठा, बैठी, बैठो, बैठक, बैठकी सभी शब्दों में उपस्थित है। कह सकते हैं जिसमें कुछ भी संयुक्त न हो वह अंश धातु होगा। स्वतंत्र प्रयोग की क्षमता रखने वाली धातु मुक्त रूपिम कहलाती है- जैसे- मेज, पंखा, चिड़िया, खा, नाच, उड़ आदि। कुछ धातुएँ बद्ध होती हैं अर्थात् स्वतंत्र प्रयोग की क्षमता नहीं रखती हैं इनका प्रयोग सदैव किसी अन्य के साथ जुड़कर होता है जैसे- अंग्रेजी- mit (permit, submit, admit) ceive (perceive, receive, conceive).

विभक्तिपरक प्रत्यय जुड़ने से पहले शब्द जिस रूप में होता है उसे प्रातिपादिक कहते हैं। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में इसे निम्न सूत्र द्वारा परिभाषित किया है-

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रतिपदिकम् (1/2/45) अर्थात् धातु एवं प्रत्यय के अतिरिक्त कोई भी अर्थयुक्त शब्द प्रातिपदिक कहलाता है। इनके अतिरिक्त कृदन्त, तद्धितान्त और समस्त पद भी प्रातिपदिक कहलाते हैं- कृत्तद्दित समासाश्च (1/2/46) कृत प्रत्यय सीधे धातु में जुड़ते हैं जबकि तद्दित प्रत्यय कृत जुड़ने के उपरांत संयुक्त होते हैं। दो या दो से अधिक स्वतंत्र शब्दों के योग से निर्मित शब्द समास कहलाता है। हिंदी का उदाहरण देखें- कठिन धातु है जो मुक्त रूप भी हैं। कठिन शब्द में- आई प्रत्यय संयुक्त होकर 'कठिनाई' शब्द बनता है जिसका बहुवचन रूप 'कठिनाइयाँ' होता है। यहाँ 'कठिन' धातु है 'कठिनाई' प्रातिपादिक जिससे विभक्ति प्रत्यय जुड़ कर नया शब्द बनता है 'कठिनाइयाँ'। अंग्रेजी में बहुवचन निर्माण के लिए dog शब्द में /-s/ विभक्ति प्रत्यय लगता है जबकि dancer शब्द में dance+er के बाद /-s/ संयुक्त होता है। पहले उदाहरण में dog धातु है तथा /-s/ प्रत्यय। जबकि दूसरे उदाहरण में dance धातु है dancer प्रातिपादिक है जिसमें /-s/ बहुवचन प्रत्यय संयुक्त हुआ है।

जिस अंश में कुछ जोड़ा जा सके उसे आधार रूप (base) कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों कठिन और कठिनाई दोनों आधार रूप हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी dance और dancer दोनों base का कार्य करते हैं। आधार रूप में संयोजित होने वाला तत्व प्रत्यय कहलाता है।

जो एक पराधीन शब्दांश है और बद्धरूपिम भी कहा जा सकता है। प्रायः भाषाओं में ये संख्या में सीमित होते हैं। धातु या प्रातिपदिक में प्रत्यय किस स्थान पर संयुक्त हो रहा है इस आधार पर प्रत्यय के तीन वर्ग किए जाते हैं—

(i) **पूर्व प्रत्यय** (prefix) - संस्कृत में इन्हें उपसर्ग कहते हैं। शब्द के पहले जुड़ने के कारण यह पूर्वप्रत्यय कहलाते हैं, यथा- अप-शकुन = अपशकुन, कु-रूप = कुरूप, अन-देखा = अनदेखा, बे-घर = बेघर, in-complete = incomplete, un-common = uncommon, de-generation = degeneration, re-write = rewrite.

(ii) **पर प्रत्यय** (suffix) - वे प्रत्यय जो शब्द के बाद संयुक्त होते हैं परप्रत्यय कहलाते हैं, उदाहरणार्थ- वेद-इक = वैदिक, धड़क-अन = धड़कन, भाव-उक = भावुक, girl-ish = girlish, sweet-ness = sweetness, jump-ing = jumping.

(iii) **मध्य-प्रत्यय** (infix) - कुछ भाषाओं में शब्द के बीच में प्रत्यय संयुक्त होकर नए रूप की रचना करते हैं। इनको मध्य प्रत्यय कहते हैं। उदाहरण के लिए प्राचीन लैटिन में /n/ /nigu-/ बर्फ /ningu-/ बर्फ गिरना। इसी प्रकार फिलीपीन की बोनटॉक भाषा में /um/ मध्य प्रत्यय मिलता है, यथा- /kas/ ताकतवर, /fumikas/ अर्थात् 'वह ताकतवर हो रहा है। ये प्रत्यय हिंदी एवं अंग्रेजी में नहीं मिलते हैं।

4.5 विभक्तिपरक एवं व्युत्पत्तिमूलक रूपरचना

इधर कुछ वर्षों से रूपरचना को विभक्तिपरक एवं व्युत्पत्तिमूलक रूपरचना इन दो उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा रहा है। विभक्तिपरक एवं वृयुत्पादक दोनों ही धातु (आधार रूप) के बाद संयुक्त होने वाले बद्धरूपिम हैं। अतः कतिपय विद्वान इन्हें परप्रत्यय के उपवर्ग भी मानते हैं किंतु इन दोनों की प्रकृति में भिन्नता होती है और इसी आधार पर रूप रचना के दो वर्ग किए गए। इनमें प्रथम का संबंध विभक्ति से है जो सामान्यतः निश्चित वचन, लिंग, पुरुष आदि किसी व्याकरणिक कार्य की अभिव्यक्ति करती है, यथा—

नदी + आँ	= नदियाँ
किताब + एँ	= किताबें
शेर + नी	= शेरनी

agree + s	= agrees
go + es	= goes
walk + ed	= walked
talk + ing	= talking

ये विभक्तियाँ संयुक्त होने के पश्चात् पुनः प्रत्यय संयोग स्वीकार नहीं करती हैं। विभक्तिपरक रूपरचना नियमित होती है। द्वितीय का संबंध व्युत्पादक प्रत्यय से है। ये प्रत्यय धातु अथवा प्रातिपदिक के पूर्व, मध्य या अंत में संयुक्त होकर नए-नए शब्दों की रचना करते हैं, यथा–

इतिहास + इक	= ऐतिहासिक
ऐतिहासिक + ता	= ऐतिहासिकता
agree + ment	= agreement
agree + able	= agreeable
agreeable + ness	= agreeableness

कुछ विद्वान सामासिक शब्दों को भी व्युत्पादक मान द्वितीय क्षेत्र में समाहित करते हैं किंतु पारंपरिक विद्वान सामासिक प्रक्रिया को एक स्वतंत्र रूप में स्वीकार करते हैं। विभक्ति और व्युत्पादक प्रत्ययों में निम्न बिंदुओं पर भिन्नता होती है।

1. विभक्ति प्रत्यय कभी भी धातु या प्रातिपदिक के पदवर्ग में परिवर्तन नहीं लाता है अर्थात् संयोजन के पूर्व शब्द जिस पद वर्ग का है प्रत्यय संयोजन के पश्चात् भी उसी वर्ग में रहता है जबकि व्युत्पादक प्रत्यय संयुक्त होने पर शब्द के वर्ग में परिवर्तन हो सकता है, जैसे–

बच्चा (संज्ञा) बचपन (भावाचक संज्ञा) पढ़ (क्रिया) पढ़ाकू (विशेषण)

cycle (संज्ञा) cycling (क्रिया) editor (संज्ञा) edit (क्रिया)

यहाँ व्युत्पादित शब्दों का वर्ग परिवर्तित हो गया है और 'बच्चा' से भाववाचक संज्ञा 'बचपन' तथा 'पढ़' क्रिया से 'पढ़ाकू' विशेषण की व्युत्पत्ति हुई है। विभक्ति नए शब्दों की रचना की प्रक्रिया नहीं है बल्कि विभक्ति संयोजन द्वारा वाक्य रचना के अनुरूप शब्द का रूप परिवर्तित होता है। यह वाक्य में प्रयुक्त अन्य इकाइयों के साथ संबंध की अभिव्यक्ति है, जैसे दौड़ेगा, दौड़ेगी शब्दों में 'दौड़' धातु के साथ प्रयुक्त प्रत्यय -एगा, -एगी धातु के वर्ग में परिवर्तन नहीं लाते और न ही अर्थ परिवर्तन होता है लेकिन यह स्पष्ट कर देते हैं कि वाक्य का कर्ता पुलिंग है या स्त्रीलिंग तथा क्रिया का समय भविष्यत् काल है।

2. विभक्तियों और व्युत्पादकों के संयोजन का एक निश्चित क्रम होता है। व्युत्पादक के पश्चात् विभक्ति या व्युत्पादक प्रत्यय दोनों संयुक्त हो सकते हैं जबकि विभक्ति संयोजन के पश्चात् कोई प्रत्यय नहीं जुड़ता है। कह सकते हैं विभक्ति धातु की व्युत्पादक/उत्पादक क्षमता को बाधित करती है जबकि व्युत्पादक उसको बनाए

रखते हैं, जैसे- 'मित्र' में बहुवचन प्रत्यय-ओं संयुक्त हो 'मित्रों' रूप बनता है। 'मित्रों' रूप के पश्चात् कोई प्रत्यय संयुक्त नहीं किया जा सकता है। जबकि मित्र, मित्रता, अमित्रता में व्युत्पादकों के प्रयोग से नए-नए शब्द निर्मित हुए हैं।

3. कतिपय व्युत्पादकों का प्रकार्य नवीन प्रातिपदिक का निर्माण होता है जिनमें विभक्ति या अन्य व्युत्पादक संयुक्त किए जा सकें। व्युत्पादकों के संयोजन से शब्दकोशीय अर्थों की सृष्टि होती है और विभक्तियों के योग से व्याकरणिक रूपों की सिद्धि तथा व्याकरणिक अर्थ उद्दिष्ट होते हैं, उदाहरणार्थ- इन्सान + / -इयत / = इन्सानियत (विशेषण) इन्सान + / -ओं / = इन्सानों (बहुवचन)।

4. विभक्ति और व्युत्पादक के अंतर को आर्थी संबंधों के आधार पर भी ज्ञात किया जा सकता है। विभक्तपरक प्रत्यय में धातु प्रातिपदिक का अर्थ धातु + प्रत्यय के अर्थ से मिलता हुआ होता है, यथा- 'वीर' और 'वीरों' के मध्य प्राप्त आर्थी पृथकता अन्य संज्ञा तथा संज्ञा + बहुवचन प्रत्यय के समानान्तर और एक रूप कही जा सकती है जबकि व्युत्पादक प्रत्यय में धातु या प्रातिपदिक का अर्थ प्रत्यय संयोग के उपरांत निर्मित शब्द के अर्थ से बहुत भिन्न होता है, यथा-वीर-विशेषण है जबकि वीरता संज्ञावत् वाक्य में प्रयुक्त होता है।

5. व्युत्पादक प्रत्यय संयोजन द्वारा निर्मित शब्द एक मुक्त रूपिम अर्थात् सरल शब्द के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जबकि विभक्ति संयोजित शब्द वाक्य में अन्य कोई परिवर्तन किए बिना प्रयोग नहीं किए जा सकते, उदाहरणार्थ-

(क) लड़का पढ़ रहा है।

(ख) **पुजारी** पढ़ रहा है। (व्युत्पन्न शब्द)

(ग) **लड़के** पढ़ रहा है। (विभक्ति)

(घ) लड़के पढ़ रहे हैं।

'ग' वाक्य में विभक्ति युक्त शब्द 'लड़के' का प्रयोग होने के कारण वाक्य में कुछ परिवर्तन करने आवश्यक हैं जबकि 'ख' वाक्य में व्युत्पादित शब्द 'पुजारी' परिवर्तन की अपेक्षा नहीं करता है।

6. व्युत्पादक प्रत्यय का कार्यक्षेत्र विभक्ति की तुलना में सीमित होता है। यही कारण है कि जिन भाषाओं में प्रत्यय द्वारा रूप परिवर्तन किया जाता है वहाँ व्युत्पादक प्रत्यय संख्या में बहुत अधिक होते हैं और विभक्ति प्रत्यय संख्या में अपेक्षाकृत कम होते हैं।

4.6 रूपरचना-प्रक्रिया

प्रायः भाषाओं में धातु और प्रातिपदिक में विभिन्न प्रत्यय कहीं संयुक्त होकर तो कहीं विलग होकर नवीन शब्दों का निर्माण करते हैं। प्रत्येक भाषा में भाषा विशेष की संरचना के अनुरूप पृथक्-पृथक् रूपरचना प्रक्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं। कतिपय

प्रमुख रूपरचना प्रक्रियाएँ निम्नलिखित हैं–

1. संयोजन प्रक्रिया–जब मूल रूप या व्युत्पादित रूप में नवीन प्रत्यय संयुक्त होकर नए रूप का निर्माण करते हैं। संयोजन प्रक्रिया के आधार पर किसी भाषा के शब्दों को धातु, प्रातिपदिक प्रत्यय इन तत्वों में वर्गीकृत करते हैं।

2. द्वित्वीकरण–द्वित्वीकरण की प्रक्रिया को निम्नलिखित सूत्र से स्पष्ट किया जा सकता है, यथा- क^1 ...⟶ क^{2}इ + क^1 द्वित्वीकरण पूर्ण या आंशिक हो सकता है। संस्कृत में पठ ⟶ पपाठ, दिश् ⟶ दिदेश यहाँ आंशिक द्वित्वीकरण है। माओरी भाषा के निम्न शब्दों में पूर्ण द्वित्वीकरण की स्थिति मिलती है, यथा- reo आवाज; reoreo वार्तालाप; patu मारना; patupatu सबको मारना।

3. विकृति (modification)–यह पूर्ण व आंशिक दोनों प्रकार की होती है। कहीं-कहीं सिर्फ धातु की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, यथा- man-men, send-sent, sing-sang, चल-चाल, लिख-लेख, भोज-भोग। पूर्ण परिवर्तन को अनुपूरण (suppletion) की संज्ञा देते हैं, यथा- है-था, जा-गया, to be-is, are, am। यह परिवर्तन की प्रक्रिया वियोजन के रूप में भी मिलती है। अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड ने इसे 'minus formation' की संज्ञा दी, यथा- emotion-emote, option-opt, donation-donate, television-telivise.

4.7 अनुबन्धन (conditioning)

भाषण संप्रवाह का लघुतम सार्थक अंश रूप होता है। इस दृष्टि से संभाषण के विविध अंश एक या एकाधिक रूपों द्वारा निर्मित होते हैं। अध्ययनकर्ता रूपग्रामिक विश्लेषण के आधार पर इस समस्या का समाधान करता है कि कोई रूप किस रूपिम से संबंधित है। एक निश्चित रूपिम के अंतर्गत रूप या सहरूप तीन प्रकार के बन्धन द्वारा नियंत्रित होते हैं, यह प्रक्रिया अनुबंधन कहलाती है।

1. स्वनप्रक्रियात्मक अनुबंधन–अंग्रेजी के बहुवचन रूपिम के सहरूप /-s/, /-z/, /-iz/ का प्रयोग संज्ञा प्रातिपदिक आधार रूप के अंतिम स्वनिम पर निर्भर करता है, यथा-

/-s/ का प्रयोग अघोष व्यंजन के बाद होता है स्पर्श-संघर्षी और दन्त्योष्म को छोड़कर, यथा- cups/k^ps/, coughs/k fs/

/-z/ का प्रयोग सघोष व्यंजन या स्वर के पश्चात् होता है स्पर्श संघर्षी और दन्त्योष्म को छोड़कर, यथा- dogs/d gs/, gloves/gl^vz/

/-iz/ स्पर्श संघर्षी और दन्त्योष्म के बाद जुड़ता है, यथा- classes /kla:siz/, mazes/meiziz/.

सहरूप के प्रयोग से संबंधित यह पूर्वानुमेयता स्वनप्रक्रियात्मक अनुबन्धन कहलाती हैं। अंग्रेजी का भूतकालिक रूपिम {-ed} भी स्वनप्रक्रियात्मक अनुबंधित होता

है। इसके तीन सहरूपों /-t, -d, -id/ के वितरण नियम निम्नलिखित हैं—

/-t/ का प्रयोग अघोष स्वनिमों के बाद होता है /t/ को छोड़कर,

यथा- walked/walkt/; helped/helpt/.

/-d/ का प्रयोग सघोष स्वनिम के पश्चात् होता है /d/ को छोड़कर,

यथा- paid/peid/; loved/l^vd/

/-id/ उन रूपिमों में संयुक्त होता है जहाँ स्पर्श /t/ और /d/ अंत में आते हैं, यथा- wanted/w^ntid/; wedded/wedid/

हिंदी रूपरचना में /-अक/ एवं /-क/ प्रत्यय एक रूप के सहरूप हैं तथा स्वनप्रक्रियात्मक अनुबंधित है। /-अक/ का योग संवृत्ताक्षर के बाद होता है, जैसे- ठुनक, ठुमक, और /-क/ का योग विवृत्ताक्षर के पश्चात् होता है, यथा- फूँक, छींक, हूक।

2. व्याकरणिक अनुबन्धन (grammatical conditioning)—एक रूपिम के अंतर्गत परिगणित सहरूपों की प्रयोग सीमाएँ व्याकरणिक अनुबंधित भी हो सकती है, उदाहरणार्थ-संस्कृत में मूल रूप पुलिंग होने पर भिन्न प्रत्यय से संयुक्त होता है 'बालकः बालकौ, बालकाः' और स्त्रीलिंग में भिन्न प्रत्यय लगते हैं—'बालिका, बालिके, बालिकाः' और नपुंसक लिंग में संयुक्त होने वाले प्रत्यय पृथक् होते हैं- 'पुस्तकम्, पुस्तकें, पुस्तकानि'। प्रायः भाषाओं में स्वनप्रक्रियात्मक तथा व्याकरणिक अनुबन्धन साथ-साथ कार्यरत मिलते हैं।

3. रूपात्मक अनुबन्धन (morphological conditioning)—जहाँ सहरूप का संयोजन पद विशेष के कारण हो वहाँ रूपात्मक अनुबंधन होता है, उदाहरणार्थ- हिंदी में कुरूप, कुकर्म, कुचाल में /क/ पूर्व प्रत्यय संयुक्त होता है। इसका सहरूप कपूत में /क-/ मिलता है जो समान भाव को द्योतित करता है। यहाँ कह सकते हैं कि /क-/ का प्रयोग पूत के पूर्व होगा तथा /कु-/ का अन्यत्र। इसी प्रकार/सीता का, उसका/ आदि रचनाओं में /का-/ परसर्ग का व्यवहार है परंतु सर्वनाम से निष्पन्न/मेरा, अपना/रचनाओं में /र/, /न/ का व्यवहार है। इनका व्याकरणिक कार्य /का-/ के समान है किंतु इनका प्रयोग सिर्फ /मैं/तथा/आप/सर्वनाम में होता है अन्यत्र नहीं। अतः ये सहरूप रूप-अनुबंधित हैं।

4.8 रूपस्वनिमिकी[3] (morphophonemics)

प्रत्येक रूपिम का निश्चित स्वनिमिक स्वरूप होता है। कुछ रूपिम सदैव एक ही रूप में प्राप्त होते हैं, यथा- घर, घरेलू, घरौंदा, बेघर, घर-द्वार इत्यादि शब्दों में प्राप्त 'घर' आधार रूप। कुछ शब्दों में अनेक प्रकार की अंतःरूपिमिक, भिन्नताएँ मिलती हैं अर्थात् इन रूपिमों के सहरूपों का स्वनिमिक स्वरूप पृथक्-पृथक् होता है, यथा—अंग्रेजी में भूतकालिक क्रिया रूप निष्पन्न करने के लिए एक ही रूपिम /-ed/

{t~d~id} तीन भिन्न स्वनिमिक आकृति वाले सहरूपों में मिलता है, यथा—

walk	:	walked / walkt /
pay	:	paid / peid /
hand	:	handed / handid /

रूपिमों के सहरूपों की स्वनिमिक विविधता रूपस्वनिमिक अध्ययनों को प्रेरित करती है। कौन से रूप को किस रूपिम के साथ संबद्ध किया जाए, एक रूपिम के सहरूपों के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या किस प्रकार की जाए? आदि प्रश्नों का समाधान रूपस्वनिमिकी का अध्ययन क्षेत्र है। वस्तुतः रूपस्वनिमिकी भाषा-विश्लेषण के दो स्तरों स्वनिमिकी और व्याकरण के मध्य वह सेतु है जो व्याकरणिक स्तर की लघुतम सार्थक इकाई रूपिम के स्वनिमिक वैविध्य और स्वनिमिकी के स्तर की लघुतम इकाई स्वनिम के व्याकरणिक वैविध्य का अध्ययन, विश्लेषण करता है।[4]

भाषा में जिन रूपिमों के एकाधिक सहरूप प्राप्त होते हैं अर्थात् विभिन्न संदर्भों में उनका पृथक-पृथक स्वनिमिक आकार रूपायित होता है उन्हें संपरिवर्तक (alternant) कहते हैं। ये संपरिवर्तक भाषा के विविध रूपिमों की स्वनिमिक भिन्नताओं का द्योतन करने के कारण रूपस्वनिमिक संपरिवर्तक (morphophonemic alternant) कहलाते हैं, जैसे- हिंदी में संज्ञाओं के सामान्य बहुवचन रूप जहाँ लड़का-लड़के में -ए द्वारा व्यक्त है वहाँ लड़की-लड़कियाँ में -आँ प्रत्यय द्वारा, बात-बातें में -एँ प्रत्यय द्वारा, घर-घर में शून्य प्रत्यय द्वारा व्यक्त होता है अतः {आ-ए-आँ-एँ-Φ} रूपस्वनिमिक संपरिवर्तक हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्दों—

incomplete
impossible
irregular
illegal

में /-in/ पूर्व प्रत्यय के अलग-अलग स्वनिमिक रूप संयुक्त हुए हैं- {in > -in, -im, -ir, -il} ये सभी / in / रूपिम के संपरिवर्तक हैं।

संभाषण में दो रूपिमों में सान्निध्य दो स्थितियों में होता है- शब्दान्तर्गत और वाक्यान्तर्गत। पद की आंतरिक संरचना में घटित स्वनिमिक परिवर्तन आंतरिक सन्धि कहलाते हैं और वाक्य के दो घटकों में सान्निध्य के कारण होने वाले परिवर्तन बहिर्सन्धि कहलाते हैं। रूपस्वनिमिकी के अंतर्गत शब्दान्तर्गत रूपिमों की सन्धिगत विशेषता के कारण उपलब्ध विविध रूपों का विश्लेषण एवं वर्णन होता है, यथा-

भूगोल + इक = भौगोलिक, वेद + इक = वैदिक

इतिहास + इक = ऐतिहासिक, व्यवहार + इक = व्यावहारिक।

भारतीय वैयाकरणों की सन्धि संबंधी अवधारणा इससे पूर्णतः मेल नहीं खाती है। उनकी मान्यता के अनुसार सन्धि सदैव प्रथम पद के अंतिम स्वनिम और द्वितीय पद

के प्रथम स्वनिम के मध्य घटित होती है, यथा- विद्या + आलय = विद्यालय, महा + ईश = महेश। जबकि रूपस्वनिमिकी में एक दूसरे के संयोग में आने वाले पदों में किसी भी स्थान पर होने वाले स्वनिमिक अंतर पर विचार किया जाता है, यथा- लौह + आर = लुहार, बहू + ओं = बहुओं, नदी + आँ = नदियाँ इत्यादि।

4.9 शब्द (word)

भाषायी संरचना के व्याकरणिक स्तर पर रूपिम के उपरांत आने वाली अगली इकाई शब्द है। पारंपरिक व्याकरण में शब्द को आधारभूत इकाई माना गया। यह रूप रचना व वाक्य रचना के द्वैतात्मक विभाजन का मुख्याधार और कोश विज्ञान की प्रमुख इकाई है। कतिपय विचारकों का मत है कि स्वनों की एक विशिष्ट रचना जो एक निश्चित अर्थ से संबंधित होती है और जिसका एक विशेष व्याकरणिक प्रकार्य होता है शब्द कहलाती है। इस आधार पर शब्द एक ऐसी इकाई है जो स्वनिमिक, व्याकरणिक और आर्थी तीनों स्तरों से संबंधित है। इस कथन में जिन तीन स्थितियों की चर्चा की गयी है वे विशेषताएँ अन्य भाषिक इकाइयाँ भी पूर्ण करती हैं, उदाहरणार्थ- 'मेरी पुस्तक' का निश्चित स्वनिमिक स्वरूप, निश्चित अर्थ और व्याकरणिक प्रकार्य है किंतु इसे शब्द नहीं कहा जा सकता है। अतः इन तीनों विशेषताओं के साथ-साथ शब्द का लघुतम होना भी अनिवार्य है। किंतु इससे भी उद्देश्य पूर्ण नहीं होता क्योंकि हिंदी शब्द 'अनियमितता' में संयुक्त 'अ' और '-ता' उपर्युक्त वर्णित तीन स्तरों पर पूरा उतरने के साथ-साथ लघुतम भी है किंतु इन्हें भी शब्द नहीं कह सकते हैं। अतः कह सकते हैं कि शब्द इन तीन विशेषताओं के साथ-साथ लघुतम और स्वतंत्र होता है अर्थात् समस्त भाषायी अंशों में लघुतम एवं मुक्त रूप जिसका निश्चित स्वनिमिक स्वरूप और अर्थ होता है और जो विशिष्ट व्याकरणिक कार्य सम्पादित करता है, शब्द कहलाता है[5]। शब्द दो प्रकार के होते हैं- (1) एकरूपिम शब्द (monomorphemic word) (2) बहुरूपिम शब्द (poly morphemic word)। प्रथम वर्ग में घर, पेड़, चल, दौड़, पेन्सिल आदि शब्द आते हैं। द्वितीय में कुरूप, दुर्भाग्य, चलो, बचपन इत्यादि। इसके अतिरिक्त दो या अधिक स्वतंत्र शब्दों से निर्मित इकाई समास (compound) कहलाती है, यथा- घुड़दौड़, घरद्वार, मातृभाषा इन्हें सामासिक शब्द भी कहते हैं।

4.9.1 शब्द के अभिलक्षण

भाषाविद् कतिपय स्वनिमिक एवं व्याकरणिक लक्षणों के आधार पर शब्द की स्वयंभू सत्ता की घोषणा करते हैं और शब्द की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख करते हैं—

क. स्वतंत्र प्रयोग की क्षमता- शब्द लघुतम मुक्त रूप है। यह वाक्यांतर्गत

भी प्रयुक्त होता है और वाक्यवत् भी। वाक्य के लक्षण शब्द में भी प्राप्त होते हैं। अनेक स्थितियों में शब्द अपने में पूर्ण कथन होता है, यथा—तुम कहाँ जा रहे हो? घर। यहाँ 'घर' से वक्ता का तात्पर्य है—'मैं घर जा रहा हूँ।'

ख. शब्द की सापेक्षिक अभेदता- शब्द अपने स्वरूप में व्याघात सहन नहीं करता है। सामान्य बातचीत में नवीन अंश प्रायः शब्द के मध्य में संयुक्त नहीं होते हैं। विराम भी सदैव शब्द के अंत में आता है। कथोपकथन के मध्य किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर वक्ता संपूर्ण शब्द उच्चरित करने के पश्चात् ही विराम लेता है।

ग. दृढ़ आंतरिक संरचना- समस्त भाषिक इकाइयों में शब्द की आंतरिक संरचना सर्वाधिक दृढ़ होती है अर्थात् बहुरूपिमिक शब्दों में पुनर्गठन या घटकों के स्थान परिवर्तन की संभावना बहुत कम होती है, यथा- अनियमितता में अ + नियम + इत + ता यह संयोजन क्रम निश्चित है जबकि 'यह ताजा मीठा दूध' इस रचना का दूसरा क्रम भी हो सकता है 'ताजा यह मीठा दूध।'

अनेक भाषाओं में शब्द की सत्ता के द्योतक स्वनिमिक लक्षण भी मिलते हैं। विभिन्न भाषाओं में ये लक्षण भिन्न-भिन्न होते हैं। ये मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं—

घ. बलाघात- कतिपय भाषाओं में बलाघात की निश्चित अवस्था शब्द के अस्तित्व का बोध कराती है। अंग्रेजी में एक शब्द में एक ही बलाघात होता है। एकाधिक बलाघात इस बात का द्योतक है कि दोनों के मध्य कहीं सीमा अवश्य है। अंग्रेजी में बलाघात का स्वनिमिक महत्व है और इसमें परिवर्तन करने पर शब्द संज्ञा से क्रिया या विशेषण का रूप लेता है, यथा—

ˈim port संज्ञा

imˈ port क्रिया

च. सुर- सुर प्रधान भाषाओं में सुर व्यवस्था शब्द के अस्तित्व का बोध कराती है। सुर आरोही (/) अवरोही (\) तथा सम (-) तीन प्रकार के होते हैं। आरोही और अवरोही साथ-साथ एक शब्द में नहीं होते हैं। किसी भाषिक इकाई में दोनों का होना दो शब्दों की सत्ता का ज्ञान कराता है।

छ. सुरसमता- सुर समता की विशेषता कुछ भाषाओं में मिलती है। इन भाषाओं में स्वरों की श्रेणी होती है, और एक शब्द में एक ही श्रेणी के स्वर प्रयुक्त होते हैं। तुर्की में शब्द की सीमा पर या तो अग्र स्वर आते हैं या पश्च।

4.10 शब्द रचना प्रक्रिया (compounds)

किसी भाषा का शब्द समूह सदैव परिवर्तित एवं परिवर्धित होता रहता है। भाषाभाषी समुदाय की आवश्यकतानुसार जहाँ उसमें कुछ शब्दों का आगमन होता है वहीं कतिपय शब्द प्रयोग च्युत हो लुप्त हो जाते हैं। नवीन शब्दों की रचना/निर्माण के लिए विश्व-भाषाएँ एकाधिक प्रक्रियाओं का प्रयोग करती हैं जिनमें से मुख्य प्रकियाएँ

निम्नलिखित हैं—

4.10.1 निर्मिति (coinage)

समाज में हुए किसी नवीन अन्वेषण के लिए जब भाषा में सर्वथा नए शब्द का निर्माण किया जाए, यथा- अंग्रेजी शब्द xerox, kleenex, spam आदि अथवा हिंदी में प्रयुक्त- संगणक, कुंजीपटल आदि शब्द।

4.10.2 मिश्रण (blending)

जब दो शब्द के अंशों को संयुक्त कर नवीन शब्द का निर्माण किया जाए। मिश्रण दो प्रकार का हो सकता है- एक ही भाषा के दोनों शब्दों के अंशों का मिश्रण (यथा—breakfast + Lunch = brunch) अथवा दो अलग-अलग भाषाओं को शब्दों के अंशों का मिश्रण (यथा- Garden ईश्वर = गार्डनेश्वर)।

4.10.3 छिन्नता (clipping)

भाषा में पहले से प्रचलित किसी शब्द के एक अंश को लुप्त कर नवीन शब्द का निर्माण करना छिन्नता कहलाता है, उदाहरणार्थ- Doctor-doc; aeroplane-plane आदि। हिंदी में दीदी के स्थान पर सिर्फ 'दी' का प्रयोग करना भी छिन्नता का उदाहरण है।

4.10.4 परिवर्तनीयता (conversion)

किसी शब्द के प्रकार्य परिवर्तन द्वारा नवीन शब्द का निर्माण इस वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है। यह परिवर्तन बिना किसी बाह्य विकृति के घटित होता है यथा- खेल (संज्ञा) खेल (क्रिया)।

4.10.5 परिवर्णिता (acronym)

शब्दों के आरंभिक स्वनों के संयोग द्वारा निर्मित शब्द परिवर्णी कहलाता है तथा कार्यरत प्रक्रिया को परिवर्णिता की संज्ञा दी जाती है, यथा- सपा (समाजवादी पार्टी), लूटा (लखनऊ यूनिवर्सिटी टीचर्स एसोसिएशन)।

4.10.6 आदान (borrowing)

आदान अर्थात् दूसरी भाषा या बोली से शब्द उधार लेना शब्द निर्माण की एक बहुप्रयुक्त एवं सरल प्रक्रिया है। जब नवीन संकल्पना के लिए भाषा में शब्द नहीं मिलता है तब वक्ता संपर्कित भाषा में व्यवहृत शब्द का प्रयोग आरंभ कर देते हैं, यथा- हिंदी में प्रयुक्त अनानास, आया और ऑलपिन शब्द पुर्तगाली से आए हैं।

4.10.7 सामासिकता (compounding)

दो या अधिक स्वतंत्र शब्दों के योग द्वारा भी नवीन शब्द का निर्माण किया जाता है। ये शब्द अपने निर्मायक घटकों से भिन्न अर्थ प्रेषित करते हैं और प्रकार्य की दृष्टि से भी मूल से अलग होते हैं, यथा—बगुलाभगत, कमलनयन, text book, sunburn.

4.11 समास (compounds)

दो या दो से अधिक कोशीय रूपिमों से निर्मित कोशीय इकाई समास कहलाती है, उदाहरणार्थ—कमलनयन, डाकघर, द्रुतगामी इत्यादि। स्पष्ट है कि इनका निर्माण दो या दो से अधिक मुक्त रूपों द्वारा होता है। समास शब्द के व्याकरणिक अभिलक्षणों का वहन करते हैं। रूपात्मक आधार पर समास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) समास में आगत शब्दों के पारस्परिक संबंध के आधार पर इसके तीन भेद किए जाते हैं—

(क) वाक्यात्मक समास- जब समास में प्रयुक्त होने वाला शब्द भाषा की व्याकरणिक संरचना के अनुरूप हो तो उसे वाक्यात्मक समास कहते हैं। भाषा की व्याकरणिक संरचना से तात्पर्य शब्दों के वाक्यान्तरगत प्रयुक्त क्रम, आकांक्षा आदि व्याकरणिक लक्षणों से है, जैसे—हिंदी का प्रचलित वाक्यात्मक क्रम है 'विशेषण + संज्ञा' (पीताम्बर) यहाँ विशेषण के स्थान पर कृदन्त का भी प्रयोग मान्य है, जैसे- चलता पुजा। हिंदी के अन्य स्वीकृत क्रम निम्न हैं—

(i) कर्म + क्रिया	देश निकाला, भड़भूजा आदि।
(ii) क्रिया विशेषण + क्रिया	द्रुतगामी आदि।
(iii) विशेषण + विशेषण	थोड़ा बहुत, लालपीला आदि।
(iv) कृदन्त + संज्ञा	रंगा सियार आदि।
(v) विशेषण + संज्ञा	एक रस, अंधकूप आदि।

इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के स्वीकृत वाक्यात्मक क्रम निम्न हैं—

(i) क्रिया + कर्म	pick pocket इत्यादि।
(ii) संज्ञा + संज्ञा	air craft, milk man आदि।
(iii) विशेषण + संज्ञा	green house, blackbird इत्यादि।

अस्तु वाक्यात्मक समास वे समास होते हैं जो भाषा में प्राप्त शब्दों के वाक्यात्मक संबंधों के अनुरूप हों।

(ख) अवाक्यात्मक समास—जब समासान्तरगत प्रयुक्त शब्द भाषा की

वाक्यात्मक संरचना के अनुरूप न हो अन्य वाक्यात्मक लक्षणों की अभिव्यक्ति करें तो उन्हें अवाक्यात्मक समास कहते हैं। हिंदी में इनके तीन रूप मिलते हैं-

(i) संज्ञा + विशेषण	रोगग्रस्त, कपोल कल्पित। यह हिंदी का स्वीकृत क्रम नहीं है।
(ii) संज्ञा + संज्ञा	घरद्वार, रातदिन, उषाकाल आदि।
(iii) क्रिया + संज्ञा	गुमराह, हँसमुख आदि।

(ग) अर्द्धवाक्यात्मक समास- वाक्यात्मक एवं अवाक्यात्मक अवाक्यीय समासों की मध्यवर्ती स्थिति अर्थात् जब समास के कुछ लक्षण भाषा संरचना के अनुकूल हों और एकाधिक लक्षण प्रतिकूल हों तो उन्हें अर्धवाक्यात्मक समास कहते हैं, जैसे- हिंदी संरचना में जहाँ संयोजक या परसर्ग प्रयुक्त मिलते हैं किंतु समास में उनका लोप हो।

भय से भीत	भयभीत
आज्ञा के अनुसार	आज्ञानुसार

(i) समास का दूसरा भेद सामासिक शब्द का घटक शब्दों से कैसा संबंध है इस पर निर्भर करता है। इसके दो भेद किए जा सकते हैं—

(क) अंतःकेंद्रिक समास—जब किसी समस्त पद का व्याकरणिक कार्य उसके किसी घटक शब्द के अनुरूप होता है तो उसे अंतःकेंद्रिक रचना/समास कहते हैं, यथा—मकान मालिक का व्याकरणिक कार्य इसके एक घटक 'मालिक' के ही समान है।

(ख) बहिःकेन्द्रिक समास—जब समस्त पद का व्याकरणिक कार्य व्यवहार समास के किसी घटक के अनुरूप न हो या भिन्न होता है तो इस प्रकार की रचना में शब्दों का संबंध या तो आश्रय-आश्रित (attributive) का होता है जब कि एक निर्णायक घटक प्रमुख और दूसरा गौण होता है अथवा समपदस्थ (coordinative) होता है जबकि दोनों निर्णायक घटक समान श्रेणी के होते हैं, यथा- बगुलाभगत, गोबर गणेश इत्यादि। यह बहिःकेंद्रिक समास कहलाता है।

4.12 शब्द वर्ग (word class)

प्रत्येक भाषा में शब्दों का वर्गीकरण किया जाता है। पारंपरिक व्याकरण में शब्दों का वर्गीकरण कहीं उनके व्यवहार के आधार पर तथा कहीं उनके अर्थ के आधार पर किया गया, उदाहरणार्थ- संज्ञा को 'व्यक्ति, वस्तु, स्थान तथा भाव का नाम' कहकर परिभाषित किया गया। संज्ञा की यह परिभाषा अर्थ पर आश्रित है। इसी प्रकार विशेषण की परिभाषा- 'जो संज्ञा और सर्वनाम की विशेषता बताता हो' प्रकार्य पर निर्भर है। भाषाविज्ञान में शब्दों का वर्गीकरण उनके रूप और प्रकार्य अर्थात् उनके स्वनिमिक, रूपिमिक व वाक्यीय गुणों के आधार पर किया जाता है। वाक्यीय घटकों के रूप में जो शब्द एक प्रकार के संबंधों की विज्ञप्ति करते हैं उनकी गणना एक वर्गान्तर्गत की

जाती है। चूँकि शब्द-वर्गों की स्थापना का आधार वाक्यीय संरचना के अंतर्गत वाक्य के घटक के रूप में शब्दों के प्रकार्य होते हैं अतः शब्द-वर्गों की कोई सार्वभाषिक योजना निर्धारित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक भाषा की संरचना के अनुरूप उसके शब्द-वर्गों की संख्या और प्रकृति का निर्धारण होता है। प्राचीन भारतीय संस्कृत वैयाकरण यास्क ने नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार वर्ग किए थे। वैयाकरण पाणिनि सुबन्त् और तिङ्न्त दो वर्गों की चर्चा करते हैं। अध्ययन के आधार पर आज यह प्रतिपादित हो चुका है कि संज्ञा व सर्वनाम दो ऐसे आधारभूत वर्ग हैं जिनकी सत्ता सार्वभाषिक है।

किसी भाषा के व्याकरणिक वर्णन हेतु किन शब्द-वर्गों की स्थापना अपेक्षित है यह सामान्य स्तर पर निरूपित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक भाषा शब्द-वर्गों की संख्या व परिज्ञान हेतु रूपात्मक लक्षणों का निर्धारण स्वयं करती है। भाषाओं में प्राप्त प्रमुख शब्द वर्गों का वर्णन निम्नवत् है—

संज्ञा—किसी भाषा के ऐसे शब्द जो समय की दृष्टि से स्थिर होते हैं संज्ञा वर्ग में आते हैं। संज्ञा में दो प्रकार की रूपवाक्यीय विशेषताएँ मिलती हैं- वितरणात्मक एवं संरचनात्मक। कोई संज्ञा पदबंध, उपवाक्य एवं पाठ में कैसे-कैसे व्यवहार करती है इसका संबंध संज्ञा वितरणात्मक अभिलक्षण से होता है, जैसे- संज्ञाएँ संज्ञा पदबंध का केंद्रीय घटक होती हैं; उपवाक्य के कर्ता और कर्म के रूप में प्रयुक्त होती हैं और किसी पाठ के टॉपिक की भाँति प्रयोग की जाती हैं। संरचनात्मक अभिलक्षण का संबंध संज्ञा की अपनी आंतरिक संरचना से होता है, यथा- कुछ भाषाओं में इसके द्वारा लिंग, वचन और कारक की रूपरचनात्मक अभिव्यक्ति होती है। यह सार्वनामिक रूपिमों के साथ संबंधपरक लक्षण व्यक्त करती है। यह शब्दों का मुक्तवर्ग है अर्थात् इसके सदस्यों की संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ती रहती है।

क्रिया—क्रिया विधेय का आधारभूत घटक है। शब्द का अपेक्षाकृत मुक्त वर्ग है। संज्ञा के साथ कर्ता कर्म के संबंध क्रिया द्वारा व्यक्त होते हैं। रूपात्मक दृष्टि से काल, पक्ष, विधि, वाच्य, सकर्मकता आदि व्याकरणिक लक्षणों की रूपात्मक अभिव्यक्ति क्रिया करती है।

सर्वनाम—ये बहुधा आकार में छोटे तथा संख्या में सीमित होते हैं। इनकी रूपसारिणी प्रायः अनियमित होती है। अनेक भाषाओं में सर्वनाम स्वतंत्र शब्द न होकर बद्धरूप तथा कई भाषाओं में पश्चाश्रयी होते हैं। हिंदी में सर्वनाम के कई उपवर्ग मिलते हैं—

पुरुषवाचक सर्वनाम	-	मैं, तुम
निश्चयवाचक सर्वनाम	-	यह, वह
प्रश्नवाचक सर्वनाम	-	कौन, कहाँ
अनिश्चयवाचक सर्वनाम	-	कोई, कुछ

निजवाचक सर्वनाम	-	आप, अपना
संबंधवाचक सर्वनाम	-	जो, सो, उस।

हिंदी में संबंध वाचक सर्वनामों में लिंग एवं वचन की अभिव्यक्ति भी होती है, यथा- उसका, उसकी, उसके आदि।

विशेषण- संज्ञा के गुण, लक्षण अथवा विशेषता को बताने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं। हिंदी में इनके दो रूप मिलते हैं- विकारी तथा अविकारी। विकारी विशेषण का लिंग, वचन और कारक संज्ञा के अनुरूप परिवर्तित होता है, जैसे- छोटा बच्चा, छोटी बच्ची, छोटे बच्चे। अविकारी विशेषण सदैव समान रहता है इन्हें अव्यय भी कह सकते हैं, यथा- सुंदर लड़का, सुन्दर लड़की, सुंदर साड़ी। रूपात्मक दृष्टि से विशेषण की परिभाषा निम्न चार आधारों पर की जा सकती है—

(i) ये संज्ञा पदबंध का अंग होते हैं—पीली साड़ी।

(ii) इनका प्रयोग क्रिया के पूर्व या विधेय की स्थिति में भी हो सकता है— साड़ी पीली है।

(iii) इन्हें तीव्रक द्वारा विकृत भी किया जा सकता है- हल्की पीली साड़ी।

(iv) अंग्रेजी में इनका प्रयोग तुलना और अतिशय कोटि में होता है—big, bigger, biggest.

हिंदी में विशेषण के चार मुख्य उपवर्ग मिलते हैं—

गुणवाचक	-	पीला, डरपोक
परिमाण वाचक	-	मुट्ठीभर, कुछ थोड़ा
संख्यावाचक	-	एक दो
सार्वनामिक	-	यह, वह

अव्यय—जिन शब्दों में लिंग, वचन, कारक अथवा पुरुष संबंधी कोई विकार नहीं होता है उन्हें अव्यय कहते हैं। ये बहुधा आश्रयी होते हैं तथा भाषाओं में इनकी संख्या सीमित होती है। रूप एवं अर्थ की दृष्टि से हिंदी में इनके चार प्रकार मिलते हैं- क्रिया विशेषण, समुच्चय बोधक, संबंध सूचक, विस्मयादिबोधक। क्रिया विशेषण वह पद है जो काल, स्थान, रीति परिमाण-संबंधी विशेषताओं का बोध कराकर क्रिया की व्याप्ति को मर्यादित करता है यह क्रिया की विशेषता व्यक्त करता है, यथा- तुम्हें पहले आना चाहिए। वे अव्यय पद जो किसी संज्ञा के बाद आकर उसका संबंध अन्य पदों से व्यक्त करते हैं संबंध सूचक कहलाते हैं। अंग्रेजी में ये संज्ञा के पूर्व (with the ball; on the table) तथा हिंदी में संज्ञा के बाद आते हैं (लड़के को, कलम से, गाँव तक, खाने के लिए)। अधिकांशतः संबंधसूचक अव्यय पूर्ण शब्द या शब्दांश होते हैं। विद्वानों का मानना है कि हिंदी परसर्ग प्रारंभ में स्वतंत्र शब्द रहे होंगे कालक्रमेण ध्वनि ह्रास के कारण से इतने सूक्ष्म हो गए कि इन्हें शब्द नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए इनको संबंधसूचक अव्यय न कहकर कारक परसर्ग कहना अधिक

उचित होगा।

दो पदों, वाक्यांशों अथवा वाक्यों को मिलाने वाले पद को समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं, उदाहरणार्थ- और, तथा, किंतु, लेकिन, यदि-तो। कुछ सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण भी दो वाक्यों में संबंध जोड़ते हैं और समुच्चयबोधक के समान कार्य करते हैं, यथा- जैसा कार्य करोगे वैसा ही परिणाम होगा।

जिनसे वक्ता के विस्मयादि तीव्र मनोविकारों को व्यक्त किया जाता है वे विस्मयादिबोधक पद कहलाते हैं। वास्तव में इनका वाक्य के किसी अन्य पद से कोई विशेष संबंध नहीं होता है, यथा- ओह! बाप रे बाप!

शब्दों का एक अन्य वर्गीकरण पूर्णार्थक शब्द (content word) तथा प्रकार्यात्मक शब्द (function word) इन दो शीर्षकों में भी किया जाता है। पूर्णार्थक शब्दों में कोशीय अर्थ होता है जबकि प्रकार्यात्मक शब्द व्याकरणिक संबंधों को लक्षित करते हैं, यथा- संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण पूर्णार्थक शब्द हैं और अव्यय, संयोजक आदि प्रकार्यात्मक शब्द कहलाते हैं।

4.13 व्याकरणिक कोटियाँ (grammatical categories)

वे अभिलक्षण जिनकी रूपात्मक अभिव्यक्ति शब्द वर्गों के माध्यम से होती है व्याकरणिक कोटि कहलाते हैं। शब्द वर्ग-संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि के निश्चित रूपात्मक स्वरूप द्वारा जिन विशेषताओं का ज्ञापन हो उन्हें व्याकरणिक कोटि कहते हैं। इस प्रकार लिंग, वचन, कारक, काल आदि की गणना व्याकरणिक कोटि के अंतर्गत की जाती है। प्रायः शब्द-वर्ग द्वारा प्रयुक्त विभक्ति किसी विशेष व्याकरणिक कोटि की अभिव्यक्ति करती है। किंतु कभी-कभी स्वतंत्र शब्द या अन्य वाक्यीय लक्षण जैसे वाक्य में उपस्थित पद क्रम, पदाकांक्षा या सहप्रयोग की संभावनाओं द्वारा भी इनकी अभिव्यक्ति होती है, यथा—हिंदी में अकर्मकता तथा सकर्मकता के आधार पर क्रिया-विभाजन मिलता है। यह विभाजन एक तरफ तो कोशपरक है दूसरी तरफ इस वाक्यीय लक्षण पर निर्भर करता है कि कौन सी क्रियाएँ ऐसे आधारभूत वाक्यों में प्रयुक्त हो सकती हैं जिनमें कर्म संज्ञा का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त कौन सी क्रियाएँ ऐसे वाक्यों में नहीं प्रयुक्त होती है, यथा- लड़का किताब पढ़ता है। नौकर चाय लाता है। यहाँ प्रयुक्त संज्ञाएँ कर्म के साथ सह प्रयोग की संभावना रखती हैं अतः क्रियाएँ सकर्मक हैं। यह ध्यातव्य है कि व्याकरणिक कोटियों का जागतिक वास्तविकता से लेशमात्र भी संबंध नहीं होता। यदि कहीं कोई संबंध दृष्टिगत भी होता है तो मात्र संयोग के कारण। संसार से इनका संबंध तार्किक न होकर यादृच्छिक व सांयोगिक है। साथ ही विभिन्न भाषाओं में इनकी संख्या में एकरूपता नहीं मिलती है। जिस प्रकार विभिन्न भाषाओं में प्राप्त रूपिमों, शब्द-वर्गों की रूपसारणी में भिन्नता प्राप्त होती है उसी प्रकार व्याकरणिक कोटियों और उसकी संख्या

में भिन्नता मिलती है अर्थात् ये सार्वभाषिक एवं समान रूप से वर्गीकृत नहीं होती हैं। विश्व में अनेक भाषाएँ हैं संभव है कि किसी भाषा विशेष में लिंग की कोटि न हो। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि लिंग की कोटि हो किंतु उसका विभाजन हमारी मातृभाषा के अनुरूप न हो। विभिन्न भाषाओं में प्राप्त प्रमुख व्याकरणिक कोटियाँ निम्नलिखित हैं।

4.13.1 लिंग (gender)

प्रत्येक भाषा का लिंग-विधान अन्य भाषाओं से भिन्न होता है। साधारणतः भाषाओं में लिंग का द्वैतात्मक या त्रिविधात्मक विभाजन मिलता है। संस्कृत, जर्मन, ग्रीक आदि भाषाओं में तीन लिंग होते हैं-पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। हिंदी में दो लिंग मिलते हैं पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। हिंदी में अनेक अचेतन वस्तुएँ बिना किसी तर्क के यादृच्छिक रूप से पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में आते हैं, जैसे- कागज, दही, पानी पुल्लिंग शब्द हैं तथा रोटी, पेंसिल, कुर्सी स्त्रीलिंग हैं। साथ ही एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करने वाले शब्द पृथक्-पृथक् भाषाओं में भिन्न-भिन्न लिंग में होते हैं, यथा- संस्कृत में सूर्य शब्द पुल्लिंग और रूसी में नपुंसक लिंग है। कभी-कभी एक ही प्राकृतिक अर्थ का द्योतन करने वाले शब्द भाषिक लिंग की दृष्टि से भिन्न वर्ग में आते हैं, जैसे- संस्कृत में 'दारा' पुल्लिंग, 'कलत्र' स्त्रीलिंग और 'जाया' नपुंसक लिंग है जबकि तीनों ही स्त्रीसूचक शब्द हैं। प्रायः भाषाओं में लिंग निरूपण तीन प्रकार से होता है—

क. प्रत्यय योग द्वारा

अनेक संज्ञाएं प्रत्यय संयोजन द्वारा लिंग परिवर्तन करती हैं—

हिंदी	संस्कृत	अंग्रेजी
मोर-मोरनी	बालक-बालिका	lion - lioness
शेर-शेरनी	सः- सा	master-mistress
नर-नारी		prince-princess
		host-hostess

ख. स्वतंत्र शब्द प्रयोग द्वारा

हिंदी	संस्कृत	अंग्रेजी
भाई-बहन	भ्रातृ-भगिनी	mother-father
माता-पिता	मातृ-पितृ	queen-king

ग. आधार के पूर्व स्वतंत्र शब्द योग द्वारा

हिंदी	अंग्रेजी	जर्मन
नर भेड़	male servant	der tisch, die milkh
मादा भेड़	maid servant	das kind

संस्कृत में लिंग की कोटि संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम व क्रियापद शब्द वर्ग द्‌वारा रूपायित होती है जबकि हिंदी में सर्वनाम शब्दवर्ग प्रायः लिंग से अप्रभावित रहता है। कुछ भाषाओं में लिंग की कोटि वस्तु के आकार से संबंधित होती है, यथा- अमरीकी जनजातियों की भाषा अलगोक्वियन। बान्टू परिवार में लिंग के चेतन, अचेतन, लघुतम, महत्तम आदि तीस वर्ग मिलते हैं।

4.13.2 वचन (number)

विश्व की समस्त भाषाओं में वचन संबंधी एकरूपता का अभाव है। कुछ भाषाओं में दो और कुछ में दो से अधिक वर्ग मिलते हैं। जहाँ हिंदी अंग्रेजी में एक वचन और बहुवचन का द्‌वैतात्मक विभाजन है वहाँ संस्कृत, ग्रीक, अरबी, लिथुअनी में एक वचन, द्‌विवचन, त्रिवचन एवं बहुवचन। संख्या के साथ-साथ वचन की कोटि को रूपायित करने वाले शब्द वर्ग भी भाषाओं में पृथक्-पृथक् हैं। हिंदी में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण शब्द वर्गों में प्रत्यय संयोग द्‌वारा वचन लक्षित होता है, जैसे- लड़का : लड़के; यह : ये; पढ़ता : पढ़ते; अच्छा : अच्छे। अंग्रेजी में संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रिया द्‌वारा वचन की अभिव्यक्ति होती है, यथा- boy : boys; he : they; go : goes. ऐसी संज्ञाएँ जिनकी गणना नहीं की जा सकती है, यथा-प्रेम, भूख, शक्ति आदि वचन से प्रभावित नहीं होती है। हिंदी में प्रत्यय योग के अतिरिक्त कतिपय समूहवाची शब्दों का प्रयोग भी बहुवचन के लिए किया जाता है, जैसे—गण, लोग, वृन्द, समूह-छात्रगण, किसान लोग, बालक वृन्द, जन समूह।

4.13.3 पुरुष (person)

पुरुष की कोटि का संबंध वाक् व्यवहार की भौतिक परिस्थिति से जुड़ा रहता है। वक्ता, श्रोता तथा जिसके विषय में वार्ता की जा रही है अलग-अलग पुरुष का प्रयोग करते हैं। संभवतः इसी कारण पुरुष की कोटि एक सार्वभौमिक भाषिक कोटि कही जा सकती है। संस्कृत, अंग्रेजी, हिंदी में तीन वर्ग मिलते है। ब्राजीलियन, पुर्तगाली आदि कुछ भाषाओं के क्रिया रूप प्रथम पुरुष तथा अप्रथम पुरुष इन दो वर्गों में मिलते हैं, यथा—

janto मैं खाता हूँ।	एक वचन
janta तुम, वह (खाता है)।	एक वचन
jantamos हम सब खाते हैं।	बहुवचन
jantam तुम सब, वे (खाते हैं)।	बहुवचन

प्रायः भाषाओं में सर्वनाम व क्रिया शब्द वर्ग की रूप सारणियाँ पुरुष से प्रभावित मिलती हैं। पुरुष की यह त्रिविधात्मक धारा कभी-कभी लिंग, वचन की कोटियों द्‌वारा भी प्रभावित होती है, यथा- अंग्रेजी में—

		Singular	Plural
First Person	I	we	
Second Person		You	x
Third Person	(M)	He	They
	(F)	She	
	(N)	It	

संस्कृत में भी पुरुष की कोटि वचन और लिंग से संबद्ध है।

		एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष		अहम्	आवाम्	वयम्
मध्यम पुरुष		त्वम्	युवाम्	यूयम्
उत्तम पुरुष	पु.	सः	तौ	ते
	स्त्री	सा	ते	ताः
	नपु.	तत्	ते	तानि

4.13.4 काल (tense)

व्याकरणिक कोटि के रूप में काल की सत्ता भाषामात्र में निहित है। भाषा के बाहर काल समय (time) कहलाता है। काल और समय के बीच अंतर है। जहाँ समय एक जागतिक कोटि है जिसका संबंध लौकिक जगत से है वहाँ काल एक व्याकरणिक कोटि है जो वस्तुतः व्याकरणिक काल-बोध है। जागतिक समय अखंडीय एवं अस्थिर है किंतु व्यवहार की सुविधा के लिए मानव उसे भूत, वर्तमान और भविष्य नामक तीन कृत्रिम खंडों में बाँटता है। इसी आधार पर प्रायः भाषाओं में व्याकरणिक काल के तीन वर्ग मिलते हैं जिनकी अभिव्यक्ति क्रिया शब्द वर्ग द्वारा होती है। भाषाओं में इससे संबंधित पर्याप्त यादृच्छिकता मिलती है। हिंदी में क्रिया की पूर्णता अपूर्णता और वृत्ति के आधार पर काल भेद किए जाते हैं। अर्थ-संरचना के स्तर पर काल क्रिया रूपों की नहीं वरन् वाक्यात्मक कोटि कही जा सकती है क्योंकि यह प्रायः वाक्य के अन्य समयपरक तत्वों से प्रभावित और प्रतिबंधित होती है, यथा—'मैंने अभी अभी खाना खाया है' वाक्य में 'खाया है' का सहप्रयोग 'अभी-अभी' के समय संदर्भ से नियन्त्रित है।

फ्रांसीसी भाषा में सामान्य भूत को सूचित करने के लिए पूर्ण वर्तमान का प्रयोग होता है तथा भूतकाल की क्रिया से अपूर्ण भूत या सुदूरभूत का बोध होता है। जर्मेनिक व स्लाविक भाषाओं में कालगत द्वैतात्मक विभाजन मिलता है भूत तथा अभूत (जो भूत नहीं है)। मलय तथा यूरोक (yurok) भाषाओं में काल की रूपात्मक कोटि क्रिया के रूपरचनात्मक रूपों द्वारा अभिव्यक्त नहीं होती है वरन् 'समय और अर्थ' के संबंध क्रिया विशेषण द्वारा रूपायित होते हैं।

4.13.5 कारक (case)

वाक्य में संज्ञा व सर्वनाम का क्रिया से संबंध कारक द्वारा स्पष्ट होता है। कारक सूचित करने के लिए जो प्रत्यय संयुक्त होते हैं उन्हें विभक्ति कहते हैं। संस्कृत में सात विभक्ति और छः कारक हैं, यथा- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। 'संबंध' को कारक नहीं मानते हैं क्योंकि इसमें संयुक्त प्रत्यय का संबंध क्रिया से नहीं होता है, यथा- रामस्य पुत्रः गच्छति (राम का पुत्र जाता है)। यहाँ क्रिया गच्छति का संबंध पुत्र से नहीं है। हिंदी में कारक और विभक्ति को एक मानना ठीक है। हिंदी में दो कारक हैं मूल और विकारी। लैटिन में छः कारक हैं, फिन्नी भाषा में इनकी संख्या पन्द्रह है जबकि चीनी में यह कोटि पूर्णतः नहीं होती है।

4.13.6 वाच्य (voice)

वाच्य-व्यवस्था विश्व की लगभग सभी भाषाओं में किसी न किसी रूप में मिलती है तथा इसके कतिपय लक्षणों में पर्याप्त साम्य भी मिलता है, जैसे--कर्मवाच्य में कर्ता का लोप। वाच्य का संबंध क्रिया के उस रूप से है जिससे यह ज्ञात हो कि क्रिया कर्ता, कर्म और भाव में किससे संबद्ध है अर्थात् वाच्य क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं जिससे यह बोध होता है कि वाक्य में कर्ता के विषय में विधान है या कर्म के अथवा केवल भाव के। संस्कृत में तीन वर्ग तथा अंग्रेजी में वाच्य का द्वैतात्मक विभाजन मिलता है। लैटिन में दो वर्ग तथा ग्रीक में तीन वर्ग हैं। कर्तृवाच्य क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं, जिससे वाक्य के उद्देश्य और क्रिया के कर्ता का संबंध स्पष्ट हो, यथा—लड़का नहाता है, हम खेलते हैं, लड़कियों ने पुस्तक पढ़ी। क्रिया के उस रूप को कर्मवाच्य कहते हैं जिससे, वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्म है यह निश्चित होता है, यथा- कपड़ा सिला जाता है। सरिता ने पत्र लिखा। भाव वाच्य इन दोनों से भिन्न स्थिति में होता है, यथा- धूप में चला नहीं जाता। यहाँ बैठा नहीं जाता।

4.13.7 पक्ष (aspect)

प्रायः पारंपरिक वैयाकरणों ने पक्ष तत्व को काल के ही एक उपांग के रूप में स्वीकार किया। एक पृथक् व्याकरणिक कोटि के रूप में पक्ष की संकल्पना का स्वतंत्र विकास और तात्त्विक विवेचन एक दो दशक पूर्व ही प्रारंभ हुआ, यद्यपि रूसी, जर्मनी आदि भाषाओं में इसकी सत्ता किसी अन्य नाम से पहले से ही मिलती है। जिस प्रकार काल क्रिया द्वारा अभिव्यक्त घटना के कालक्रम को समय के आधार पर निर्धारित करता है उसी प्रकार पक्ष कार्य की प्रकृति एवं अवस्था की सूचना देता है। कार्य की पूर्णता, अपूर्णता, निरंतरता आदि सूचना पक्ष द्वारा मिलती है। कार्य-व्यापार की पूर्णता-अपूर्णता के बोध के कारण हम कार्य-व्यापार को मानसिक रूप से भूत या वर्तमान के

साथ जोड़ देते हैं। हिंदी में सामान्यतः पक्ष का द्वि-अंगी विभाजन पूर्ण पक्ष (perfective) एवं अपूर्ण पक्ष (imperfective) मिलता है।

4.13.8 वृत्ति (mood)

जो कार्य-व्यापार लौकिक जगत में घटित न हुए हों और जो वक्ता के मस्तिष्क में ही निहित हों उनका संबंध वृत्ति से होता है। क्रिया द्वारा ईप्सित कार्य के घटित होने की सूचना वृत्ति द्वारा मिलती है। इस प्रकार आज्ञा, हेतु, निर्देश, संभावना, प्रश्न आदि की सूचना क्रिया रूपांतर वृत्ति के माध्यम से देते हैं। ग्रीक में चार वर्ग- imperative, indicative, subjective और optaive मिलते हैं। लैटिन में indicative, subjunctive और imperative ये तीन वर्ग हैं। संस्कृत में तीन वृत्तियाँ हैं तथा काल और वृत्ति के आधार पर दस लकारों की स्थापना की गई।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. विभिन्न विद्वानों ने रूपिम को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया। अमरीकी भाषाविद् सी.एफ. हॉकेट के मतानुसार, 'Morphemes are the smallest individually meaningful elements in the utterance of a language. हॉकेट रूपिम में सार्थकता का गुण अनिवार्य मानते हैं। किंतु सभी रूपिम सार्थक नहीं कहे जा सकते हैं, जैसे- लड़का + ओं में संयुक्त 'ओं' अथवा में, पर, से आदि व्याकरणिक दृष्टि से सार्थक हैं किंतु कोशीय दृष्टि से इन्हें सार्थक नहीं कहा जा सकता है। अतः रूपिम को लघुतम सार्थक इकाई मानकर चलना कठिन है। रॉबिन्स के विचारानुसार, 'The minimum grammatical units are called morphemes.' इस परिभाषा में सार्थकता पर कम आग्रह है। अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड द्वारा दी गई परिभाषा 'a linguistic form which bears no partial phonetic-semantic resembalance to any other form in a language is morpheme', ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ववर्ती होने पर भी सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ये रूपिम को भाषा के तमाम रूपिमों के संदर्भ में रखकर देखते हैं। प्रत्येक रूपिम का अपना स्वनिक व आर्थिक स्वरूप होता है जो संयुक्त रूप में किसी अन्य रूपिम से समानता नहीं रखता है। इन्होंने किसी भाषा विशेष के रूपिमों के पारस्परिक संबंधों को नकारात्मक ढंग से निरूपित कर रूपिम को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस परिभाषा में partial (आंशिक) शब्द का प्रयोग मात्रा की दृष्टि से नहीं वरन् अंश से संबंधित है। इस प्रकार जटिल होते हुए भी ब्लूमफील्ड की परिभाषा उपयुक्त कही जा सकती है।
2. A. Morphemes can never be directly observed but are represented in utterances by morphs. Allerton, D.J.
   B. Morphs are the minimal visible or audible exponents of grammar; if we attempt to split them we find only phonemes or sequences of phonemes with no grammatical significance.

Simpson, J.M.Y.

3. रूपस्वननिमिकी की चर्चा सर्वप्रथम कूर्तने एवं त्रुबेत्स्कॉय के कार्यों में मिलती है। अमरीकी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम इसका उल्लेख न्यूमैन, स्वादेश तथा सपीर ने किया किंतु रूपस्वनिमिकी के सिद्धांतों की स्थापना एवं रूपस्वनिम इकाई की परिभाषा का श्रेय अमरीकी भाषाविद् एल. ब्लूमफील्ड को जाता है।

4. प्राग संप्रदाय में रूपस्वनिमिकी को स्वनप्रक्रिया की शाखा के रूप में माना गया। सपीर के शिष्य बी.एल. व्होर्फ ने भी इसे स्वनिमिकी से भिन्न स्वनप्रक्रिया के एक भाग के रूप में स्वीकार किया। ब्लूमफील्ड आदि विद्वानों ने व्याकरण की एक शाखा के रूप में रूपस्वनिमिकी को प्रतिपादित किया। हॉकेट के मतानुसार, 'The branch of grammar, which deals with the phonemic shapes of morphemes, words and coustructions with regard to their meaning is morphophonemices.' अपनी पुस्तक में एक अन्य स्थान पर हॉकेट कहते हैं 'morphophonemics ... an abstract pseudo level intervening between phonology and grammar.'

5. विद्वानों के विचारानुसार एक शब्द पाँच प्रकार की सूचनाएँ संवहित करता है। (अ) स्वनप्रक्रियात्मक सूचना - किसी शब्द को जानने का तात्पर्य एक सीमा तक किसी निश्चित ध्वनि क्रम को ज्ञात करना भी है। (आ) रूपिमिक सूचना- हम अंतःप्रज्ञा से ही जानते हैं कि लड़का शब्द का सार्थक अंशों में खंडन नहीं किया जा सकता है। (इ) वाक्यीय सूचना- भाषा सीखने के साथ ही हम यह सीखते हैं कि शब्द किस प्रकार वाक्यों की समग्र संरचना में प्रयुक्त होते हैं, यथा- राम ने किताब गिरा दी; किताब पढ़ने योग्य है। (ई) आर्थी सूचना- अर्थ के अभाव में शब्द की सत्ता नहीं होती है। हम जितने शब्द जानते हैं सभी के अर्थ से भी परिचित होते हैं। (उ) संकेत वैज्ञानिक सूचना- हम न सिर्फ शब्द के अर्थ या अर्थों को जानते हैं वरन् यह भी जानते हैं कि वार्तालाप के संदर्भ में उसे कैसे प्रयोग किया जाए, यथा- 'बाबा' शब्द का प्रयोग पिता के पिता के लिए और साथ ही विस्मय सूचक अर्थ में भी होता है, अरे बाबा रे! कहने पर श्रोता स्वयं उसका अर्थ समझ लेता है।

वाक्य रचना

5.1 स्वरूप

शब्द को साथ-साथ रखने से बनी रचनाओं का अध्ययन **वाक्य रचना** (syntax) का क्षेत्र है। भाषाविशेष के वाक्य-निर्माण संबंधी नियमों, वाक्य की सीमा में घटित संबंधों, उसकी प्रकृति व प्रकार आदि का वर्णन वाक्यरचना में किया जाता है। कतिपय विद्वान रूप रचना व वाक्यरचना के इस द्वैतात्मक विभाजन के आधार पर कुछ भाषाओं को व्याकरण-विहीन मानते हैं किंतु वस्तुतः यह वर्गीकरण कृत्रिम है और सार्वभाषिक नहीं है। यह विभाजन उन्हीं भाषाओं तक सीमित है जिनमें शब्द की रचना-प्रक्रिया में शब्द के नीचे की व्याकरणिक इकाइयाँ-रूपिम, सहरूप का योगदान होता है। जिन भाषाओं में शब्द का स्वरूप स्थिर व दृढ़ होता है, परिवर्तन स्वीकार नहीं करता और सदैव स्वतंत्र रूप में मिलता है उन पर यह विभाजन आरोपित नहीं किया जा सकता है, यथा-चीनी परिवार की भाषाएँ। इस विभाजन को कृत्रिम व विश्लेषक की सुविधा के लिए निर्मित मानने का एक अन्य कारण यह है कि यह वर्गीकरण रूपिम को आधारिक, मूलभूत इकाई स्वीकार करता है जबकि वास्तव में वाक्य व्याकरण का मूल आधार है। वाक्य की परिसीमा में समस्त इकाइयों की सत्ता और महत्व निर्भर करता है। रूप, शब्द, पदबंध वाक्यान्तर्गत निश्चित प्रकार्य संपादित करते हैं और इनका विश्लेषण व वर्णन वाक्य के आधार पर ही किया जाता है। अतः निश्चित है कि वाक्य का महत्व वास्तविक है और रूपरचनात्मक तत्व वाक्य में विशेष व्याकरणिक कार्य सम्पादित करने के कारण महत्वपूर्ण हैं।

5.2 पदबंध (phrase)

शब्दों का ऐसा समूह जो वाक्य में प्रयुक्त किसी एक शब्द के समतुल्य व्याकरणिक प्रकार्य संपन्न करे और जिसका अपना उद्देश्य और विधेय नहीं होता, पदबंध कहलाता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक वाक्य में शब्दों के अपने-अपने प्रकार्य स्थान (slot) होते हैं। जो शब्द समूह इन प्रकार्य स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं या होने की क्षमता रखते हैं उन्हें पदबंध कहते हैं, यथा—कौन विद्यालय गया? वाक्य में कौन शब्द के स्थान पर 'मेरा भाई श्याम' शब्द श्रृंखला प्रयुक्त हो सकने के कारण पदबंध

कहलाएगी। इसके विपरीत वह शब्द शृंखला जिसका उद्देश्य और विधेय हो और जो किसी वाक्य का अंश हो उपवाक्य कहलाती है, यथा- रीना, जो मेरे पड़ोस में रहती है, कक्षा में प्रथम आई है। इस वाक्य में प्रयुक्त शब्द समूह जो मेरे पड़ोस में रहती हैं उपवाक्य की श्रेणी में आता है। संभावानार्थक, अनिश्चित संभाव्य, निश्चित संभाव्य, संकेतार्थ और भविष्यत् तथा दो सहायक वृत्तिक क्रियाएँ- सामर्थ्य सूचक व बाध्यता सूचक मिलती हैं।

5.3 उपवाक्य (clause)

शब्दों की ऐसी शृंखला जिसका उद्देश्य एवं विधेय हो तथा जो किसी वाक्य का अंग हो उपवाक्य कहलाती है। भाषाविद् लायन्स के शब्दों में "A group of words with its own subject and predicate, if it is included in a larger sentence is called a clause" आरंभ में जन्दवूर्त, जेस्पर्सन आदि विद्वानों ने उद्देश्य एवं युक्त भाषिक अभिव्यक्ति को उपवाक्य माना, यथा- "the form of a two nucleus group with a subject and a finite verb in it."(Zandvoort 1975:211)

इस परिभाषा के आधार पर सिर्फ रचनाएँ ही उपवाक्य के अंतर्गत परिगणित की जा सकती हैं किंतु वास्तविकता इससे भिन्न होती है क्योंकि अनेक उपवाक्यों में उद्देश्य नहीं होता है। विषय के विकास के साथ विद्वानों के विचारों में परिवर्तन हुआ तथा लीच, क्विर्क हुडलेसटन आदि विद्वानों ने माना कि उपवाक्य की आकृति संबंधी विचार में परिवर्तन की आवश्यकता है। उपवाक्य वाक्य से छोटी और पदबंध से बड़ी शब्दों कीं ऐसी शृंखला होती है जो स्वयं किसी वाक्य का हिस्सा होती है। वाक्य की संरचना पर ध्यान दें कि वाक्य एक उपवाक्य से निर्मित भी होता है और एकाधिक उपवाक्यों से भी। एक उपवाक्य वाला वाक्य सरल वाक्य कहलाता है और ऐसे उपवाक्य को मुख्य या स्वतंत्र उपवाक्य कहते हैं, जैसे- राम जाता है; उसने कहा; मोहन कूदता है आदि। एकाधिक उपवाक्यों वाले वाक्य मिश्र तथा संयुक्त कहलाते हैं। किसी वाक्य में एक मुख्य उपवाक्य हो और एक या अधिक अधीन/आश्रित उपवाक्य हों तो उन्हें मिश्र वाक्य कहते हैं, जैसे- बाहर एक लड़का खड़ा है और वो आपको ढूँढ़ रहा है। मिश्र वाक्य में कम से कम एक मुख्य तथा एक आश्रित उपवाक्य अवश्य होता है। मुख्य और आश्रित के मध्य आश्रय-आश्रित का संबंध दृष्टिगत होता है। मुख्य उपवाक्य स्वतंत्र प्रयोग की क्षमता रखता है जबकि आश्रित उपवाक्य प्रयोग के लिए मुख्य पर निर्भर करता है। संयुक्त उपवाक्य में भी एकाधिक उपवाक्य होते हैं लेकिन वे स्वतंत्र उपवाक्य होते हैं जो समानाधिकरण संबंध में बंधे होते हैं अर्थात् कोई किसी पर आश्रित नहीं होता है जैसे- आज विद्यालय खुला है और मैं गई थी। यहाँ दो स्वतंत्र उपवाक्य समुच्चयबोधक अव्यय 'और' से संयुक्त है लेकिन अर्थ की दृष्टि से ये परस्पर आश्रित

नहीं हैं। कभी कभी संयुक्त वाक्य के दो स्वतंत्र उपवाक्य एक दूसरे से मिल जाते हैं, जैसे- आप सुबह आएंगे या शाम को? इस वाक्य में दो स्वतंत्र उपवाक्य हैं- ''आप सुबह आएंगे या आप शाम को आएंगे'' जो परस्पर आंशिक रूप से एकीकृत हो गए हैं।

5.4 वाक्यीय रचना (syntactic construction)

दो या दो से अधिक शब्दों/मुक्तरूपों द्वारा निर्मित रचना वाक्यीय रचना कहलाती है। किसी रचना के निर्मायक घटकों के मध्य सीधा व सार्थक संबंध होता है। वाक्यीय रचनाओं को उनके निर्मायक घटकों के व्यवहार तथा उनकी व्याकरणिक प्रवृत्ति के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जाता है- अंतःकेंद्रिक एवं बहिर्केंद्रिक: कुछ रचनाओं का व्याकरणिक वितरण एवं प्रकार्य रचना के ही किसी निर्मायक घटक के अनुरूप होता है। इन रचनाओं को अंतःकेंद्रिक (endocentric) की संज्ञा देते हैं, उदाहरणार्थ- आज की पकी रोटियाँ, इस रचना में 'रोटियाँ' मुख्य या केंद्रीय घटक हैं तथा रचना के शेष घटक इस पर आश्रित हैं। इस संपूर्ण रचना का व्याकरणिक प्रकार्य एवं वितरण केंद्र की भाँति हैं। साथ ही संपूर्ण रचना के स्थान पर सिर्फ केंद्र का प्रयोग भी किया जा सकता है, यथा—आज की पकी रोटियाँ लाओ वाक्य में 'आज की पकी रोटियाँ' के स्थान पर 'रोटियाँ' का प्रयोग किया जा सकता है।

कतिपय रचनाओं का वाक्यीय वितरण एवं प्रकार्य उनके किसी घटक के समान नहीं होता है ऐसी रचनाएँ बहिर्केंद्रिक (exocentric) कहलाती हैं। ऐसी रचना के किसी घटक के प्रयोग द्वारा संपूर्ण रचना का अर्थ अभिव्यक्त नहीं होता है। इस रचना के दोनों घटक अनिवार्य होते हैं। बिना मूल वाक्य को भंग किए इनमें से किसी भी घटक को नहीं निकाला जा सकता, जैसे-कमरे में कौन है? वाक्य में 'कमरे में' बहिर्केंद्रिक रचना है क्योंकि 'कमरे' तथा 'में' से कोई भी घटक अकेले संपूर्ण रचना का कार्य नहीं कर सकता है। दोनों में से एक भी घटक को हटाने से मूल वाक्य नष्ट हो जाएगा (*कमरे कौन है?* में कौन है?)। कुछ परिस्थितियों में इनका अर्थ रचना में प्रयुक्त शब्दों के कोशगत अर्थ से भी भिन्न होता है, उदाहरणार्थ—नौ दो ग्यारह होना। इसी प्रकार 'लड़की सोई, बगीचे में' रचनाओं में कोई भी घटक संपूर्ण रचना के समतुल्य कार्य नहीं कर सकता है। अतः ये रचनाएँ द्वितीय वर्ग की हैं।

अंतःकेंद्रिक रचना के दो वर्ग मिलते हैं—

(अ) आश्रयात्मक (subordinative)- वे रचनाएँ जिनके निर्मायक घटक रचना के केंद्र पर आश्रित होते हैं आश्रयात्मक कहलाती है, यथा- ऊँचे पर्वत, हरी सब्जियाँ, मीठे फल इत्यादि। हिंदी तथा अंग्रेजी के विशेषण विशेष्य पदबंध इस वर्ग में आते हैं।

(ब) समपदस्थ (coordinative)- जिस अंतःकेंद्रिक रचना के सभी

निर्मायक घटक व्याकरणिक दृष्टि से समतुल्य हों वह समपदस्थ रचना कहलाती है। इन रचनाओं में एकाधिक घटक केंद्रीय/प्रमुख होते हैं अतः कोई भी शीर्ष अकेले संपूर्ण रचना का प्रकार्य संपन्न कर सकता है, उदाहरणार्थ- देश, जाति अथवा धर्म; मैं और तुम; स्पष्ट एवं सरल; माता और पिता इनमें से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे 'सभा में अलग-अलग देश, जाति व धर्म के लोग उपस्थित थे' वाक्य के स्थान पर कह सकते हैं- सभा में अलग-अलग देश के लोग उपस्थित थे। निर्मायक घटकों के मध्य प्रयुक्त तत्व के आधार पर समपदस्थ रचनाओं को पुनः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(ब.1) संकलनात्मक (additive)—जिस रचना के घटकों के मध्य संयोजक लगा रहता है, उसे संकलनात्मक कहते हैं, यथा- राम और श्याम; हरी तथा पीली।

(ब.2) एकांतरिक (alternative)—जिस रचना के घटक अव्यय द्वारा एक दूसरे से संबंधित रहते हैं व एकांतरिक रचना कहलाती है, यथा- न आज न कल; भाषाविज्ञान अथवा समाजशास्त्र।

(ब.3) समानाधिकृत (appositive)—ऐसी रचना जिसके घटकों के मध्य न संयोजक हो और न ही अव्यय प्रयुक्त हों वह समानाधिकृत रचना कहलाती है,जैसे- अखिल भारतीय गन्ना संस्थान; लखनऊ विश्वविद्यालय। ऐसी रचना का कोई भी एक शीर्ष संपूर्ण रचना का प्रकार्य सम्पन्न कर सकता है। दृष्टव्य है कि कई समपदस्थ एवं समानाधिकृत रचनाओं में आश्रयात्मक रचना का मिश्रण रहता है जैसे- गरम चाय और बिना चीनी का दूध।

बहिर्केंद्रिक रचनाओं के दो वर्ग होते हैं—

(अ) निर्देशात्मक (directive)—कुछ रचनाओं में एक घटक अक्ष या धुरी का कार्य करता है और दूसरा घटक निदेशक होता है। हिंदी में प्रायः इन रचनाओं में अक्ष संज्ञा होती है तथा निदेशक परसर्ग, यथा- डिब्बे में, घोड़े पर। अंग्रेजी में प्रायः निदेशक क्रिया और धुरी/अक्ष कर्म होता है, जैसे- saw John, ask me।

(ब) विधेयात्मक (predicative)—इन रचनाओं में प्रायः एक घटक विषय होता है और शेष घटक उसकी व्याख्या करते हैं, जैसे- लड़की विदुषी है, रमेश बड़ा है। अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड ने इसे 'topic and comment' की संज्ञा दी है।

5.5 वाक्य (sentence)

वाक्य भाषा की आधारभूत इकाई है। अन्य सभी भाषिक इकाइयाँ रूपिम, शब्द, पदबंध, उपवाक्य आदि की सत्ता वाक्य पर निर्भर करती है और इनका परिज्ञान वाक्य के विश्लेषण द्वारा होता है जबकि वाक्य स्वयंभू अखंड और स्वतंत्र इकाई है जो किसी अन्य रचना का अंश नहीं होता है और अपने में पूर्ण उक्ति होता है। वाक्य के आदि

व अंत में मौन अवस्थित होता है। जहाँ अन्य भाषिक इकाइयाँ स्थानापत्ति सक्षम होती है वहाँ यह विशेषता वाक्य पर लागू नहीं होती है। वाक्य के घटकों की व्याख्या वितरणात्मक संबंधों के आधार पर की जाती है किंतु वाक्य स्वयं किसी अन्य इकाई के साथ वितरणात्मक संबंध नहीं रखता है। वितरण का सिद्धांत संरचनात्मक मनोदृष्टि का आधारभूत तत्व है और स्थानापत्ति सक्षमता पर निर्भर करता है। यह सिद्धांत वाक्य की परिसीमा में घटित होता है वाक्य पर घटित नहीं होता।

अन्य व्याकरणिक इकाइयों व वाक्य के मध्य निर्माणात्मक संबंध कार्य करते हैं अर्थात् उच्चस्तरीय इकाइयाँ निम्नस्तरीय इकाइयों द्वारा निर्मित एवं वर्णेय होती हैं। संरचनात्मक सौपानिक अनुक्रम के शिखर पर वाक्य तथा निम्नतम स्तर पर रूपिम रहता है। विश्लेषण उच्च से निम्न की ओर-विश्लेषात्मक तथा निम्न से उच्च की ओर-संश्लेषात्मक दोनों दिशाओं में होता है। बद्ध रूपिम के अतिरिक्त इस सौपानिक अनुक्रम की शेष समस्त इकाइयाँ वाक्यवत् प्रयुक्त हो सकती हैं—

1. मेरा भाई राम बाजार गया। (वाक्य)
2. मेरा भाई राम (पदबंध)
3. राम (मुक्त रूपिम) (शब्द)

ये सभी समतुल्य क्षमता से युक्त हैं।

वाक्यों का विस्तार कतिपय केंद्रीय वाक्यीय घटकों द्वारा होता है। ये विस्तृत घटक स्थानापत्ति सक्षमता के आधार पर एक-दूसरे से संबंधित माने जा सकते हैं। इस प्रकार विभिन्न वाक्य आधारभूत वाक्य घटकों के विस्तार से निष्पन्न होते हैं और उनकी व्याख्या उनमें निहित आशयात्मक संबंधों के आधार पर की जाती है। यह व्याख्या एक ओर वाक्य के घटकों को उद्घाटित करती है और दूसरी ओर निहित सौपानिक क्रम को दर्शाती है—

लड़का
छोटा लड़का
चाचा का छोटा लड़का
मेरे चाचा का छोटा लड़का
गाँव में रहने वाले मेरे चाचा का छोटा लड़का

पारिभाषिक शब्दावली में इन्हें वाक्यबंध (syntagm) कहते हैं। ये वाक्यबंध वाक्यीय संबंधों व प्रकार्यों का द्योतन करते हैं।

5.6 वाक्य-भेद

वाक्यों का वर्गीकरण चार आधार पर किया जाता है-

1. आकृति
2. रचना

3. पक्ष
4. क्रिया का होना या न होना

5.6.1 आकृति के आधार पर

(क) अयोगात्मक (isolating)—वे वाक्य जिनके निर्मायक घटक अलग-अलग रहते हैं, अयोगात्मक वाक्य कहलाते हैं, यथा- चीनी परिवार की भाषाओं के वाक्य।

(ख) योगात्मक (agglutinaling)—कुछ भाषाओं में वाक्य के निर्मायक घटक परस्पर एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं किंतु उनके विग्रह की सम्भावना निरंतर बनी रहती है। साथ ही अन्वय द्वारा संयुक्त इकाइयों को भी अलग किया जा सकता है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में ऐसी ही वाक्य योजना मिलती है।

(ग) बहुसंश्लेषणात्मक (polysynthetic)—कुछ भाषाओं में वाक्यांतरगत निर्मायक घटक अंशतः खंडित होकर इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनके मूल रूप को पहचानना भी संभव नहीं होता है। चैरीकी, मैक्सिकन, बास्क आदि भाषाओं में इस प्रकार के वाक्य मिलते हैं। यूपिक एस्कीमों भाषा का एक उदाहरण देखें—

tuntussuqatarniksaitengqiggtuq

इस वाक्य में सात घटक हैं जिनके अर्थ निम्नवत हैं—

tuntu	-	रेडियर
ssur	-	शिकार करना
qatar	-	भविष्य
ni	-	कहना
ksaite	-	नकारात्मक
ngqiggte	-	पुनः/फिर से
uq	-	अन्य पुरुष; निर्देशात्मक

ध्यान रहे किसी भी भाषा में सभी वाक्य न तो बहुसंश्लेषणात्मक होते हैं और न योगात्मक। कुछ भाषाएँ कम योगात्मक होती हैं तो कुछ बहुत अधिक। 'कोरियन' भाषा कम बहुसंश्लेषणात्मक है जबकि 'इनुइत' बहुसंश्लेषणात्मक।

5.6.2 रचना के आधार पर

इस आधार पर वाक्य के साधारणतः तीन उपवर्ग किए जाते हैं- सरल, मिश्र, संयुक्त।

(क) सरल—इन वाक्यों में कर्ता तथा एक क्रिया होती है। ये अपने सीमित पूर्ण अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ होते हैं, यथा- मैं पत्र लिखता हूँ; वह जा रहा है; गीता नृत्य करती है।

(ख) मिश्रवाक्य—मिश्र वाक्य में एक प्रधान वाक्य और अन्य उसके आश्रित उपवाक्य होते हैं। ये वाक्य विशिष्ट अर्थ देने में समर्थ होते हैं। 'यह वह पुस्तक है, जो मैं कल से ढूँढ़ रहा था'; 'पिता जी ने कहा कि तुम मत जाओ।'

(ग) संयुक्त वाक्य—जिस वाक्य में एकाधिक सहयोगी उपवाक्य हों उसे संयुक्त वाक्य कहते हैं। प्रायः समुच्चयबोधक अव्यय संयुक्त वाक्य में आने वाले उपवाक्यों को संबद्ध करते हैं। संयुक्त वाक्य के ये सहयोगी एक दूसरे पर आश्रित नहीं होते हैं। 'मैं दुखी हूँ और तुम्हें हँसी आ रही है' इस उदाहरण में दो स्वतंत्र वाक्य संयोजक 'और' द्वारा संयुक्त किए गए हैं। दोनों स्वतंत्र वाक्यों का अर्थ संयुक्त वाक्य के अर्थ से भिन्न है।

5.6.3 अर्थ के आधार पर

पक्ष के आधार पर वाक्य के अनेक भेद संभव हैं, यथा- विधान, निषेध, प्रश्न आदि पक्षों के आधार पर वाक्य भेद पृथक्-पृथक् होते हैं, उदाहरणार्थ- क्या तुम जाओगे? (प्रश्न); तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। (निषेध)।

5.6.4 क्रिया प्रयोग के आधार पर

(क) क्रियायुक्त वाक्य—क्रिया वाक्य का महत्वपूर्ण घटक है। वाक्य में प्रायः क्रिया का होना अनिवार्य माना जाता है। विद्वानों का मत है कि क्रिया के अभाव में व्याकरणिक वाक्य की रचना संभव नहीं है। वाक्य का वह प्रकार जिसमें क्रियापद दृश्यमान होता है, क्रियायुक्त वाक्य कहलाता है।

(ख) क्रियाविहीन वाक्य—अनेक वाक्यों में क्रियापद गुप्त रहता है। कथोपकथन के मध्य प्रायः वक्ता के प्रश्न का उत्तर श्रोता क्रियाविहीन वाक्य के रूप में देता है, यथा- तुम कहाँ जा रहे हो? 'घर'। समाचार पत्र के शीर्षकों, लोकोक्तियों, विज्ञापनों में प्रायः इन वाक्यों का ही प्रयोग होता है जैसे 'रिन की चमकार बार-बार', नक्कालों से सावधान; ऊँची दुकान फीके पकवान।

5.7 वाक्यात्मक संबंध (syntactic relations)

कोई भी वाक्य शब्दों या पदों की शृंखला या पांक्तिक क्रम में संघात नहीं होता है अपितु वाक्य में प्रयुक्त पद, जिन्हें वाक्य के घटक कहते हैं, बहुविध शृंखलात्मक सम्बंधों में आबद्ध होते हैं। पदों की यह संबद्धता वाक्य के व्याकरणिक एवं संरचनात्मक स्वरूप की द्योतक होती है। ये लक्षण जो वाक्यांतरगत पदों के व्याकरणिक संबंधों को ज्ञापित करते हैं वाक्यीय संबद्धता के द्योतक लक्षण कहलाते हैं। वाक्यान्तरगत पदों की संबद्धता को दो शीर्षकों में निरूपित किया जा सकता है— विन्यासात्मक एवं विभक्तिपरक।

1. विन्यासात्मक (arrangement)—इन लक्षणों की अभिव्यक्ति वाक्य में प्रयुक्त शब्दों के विन्यास द्वारा होती है। व्याकरणिक विन्यास की लघुतम प्रभेदक इकाई को पदिम (taxeme) की संज्ञा दी जाती है, यथा- आदमी पेड़ काटता है; आदमी पेड़ को काटता है, द्वितीय वाक्य में 'को' का प्रयोग निश्चयात्मक और विशिष्टता की विवक्षा के लिए किया है। यहाँ यह प्रयोग वैकल्पिक है जबकि हिंदी के अन्य वाक्यों- माँ ने बच्चे को मारा; सिपाही ने चोर को पीटा, में 'को' का प्रयोग अनिवार्य है। कह सकते हैं कि हिंदी की द्विकर्मक क्रियाओं में कर्म के साथ 'को' का प्रयोग होना अनिवार्य है। यह इन वाक्यों का विन्यासात्मक लक्षण हैं। विन्यासात्मक लक्षण दो प्रकार के होते हैं—

(क) चयनपरक (selective)—वे लक्षण जो किसी वाक्यीय रचना के निर्मायक घटकों के पद वर्गों के पारस्परिक अन्योन्य संश्रय (अन्योन्याश्रय) पर निर्भर करते हैं, चयनपरक लक्षण कहलाते हैं। अन्योन्य संश्रय से तात्पर्य परस्पर एक दूसरे के साथ प्रयोग की संभाव्यता से है अर्थात् वाक्यीय रचना में प्रयुक्त घटकों के पद वर्गों की पारस्परिक चयनात्मकता के द्योतक होते हैं, यथा- 'काली बिल्ली' रचना में दोनों घटकों के पद वर्गों का (विशेषण + संज्ञा) परस्पर अन्योन्य संश्रय है। इसी प्रकार हिंदी में निजवाचीकरण हेतु वाक्य में निजवाचक सर्वनाम का वाक्य के संज्ञापद का समसंकेतक होना अपेक्षित है, यथा—मैंने मोहन को अपनी पेंसिल दे दी। इस वाक्य में 'मैंने' का समसंकेतक 'अपनी' है।

(ख) क्रमपरक (positional)—वे लक्षण जो किसी वाक्यीय रचना में प्रयुक्त पदों के पारस्परिक क्रम पर निर्भर करते हैं, क्रमपरक कहलाते हैं, यथा- हिंदी की विशेषण + संज्ञा द्वारा निर्मित वाक्यीय रचनाओं में पारस्परिक चयनात्मकता के साथ-साथ क्रमपरक लक्षण भी कार्यरत है। छोटा बच्चा, ऊँचा मकान आदि रचनाओं में प्रयुक्त घटकों का क्रम निश्चित है। अनेक भाषाओं में वाक्यीय रचनाओं में पदक्रम प्रभेदक व्याकरणिक लक्षण के रूप में कार्य करता है। पदक्रम-परिवर्तन से अर्थ में भिन्नता आती है, यथा- अंग्रेजी के अनेक वाक्य पदक्रम-परिवर्तन द्वारा प्रश्नवाचकता की अभिव्यक्ति करते हैं- He has gone to school.- Has he gone to school? इसी प्रकार हिंदी की संयुक्त क्रियाओं में क्रम द्वारा नियंत्रण मिलता है- खा लिया; चला गया; रोने लगा; मार डाला। यहाँ लिया खा; गया चला; यह क्रम नहीं हो सकता है। संयुक्त क्रियाओं में पदक्रम के साथ-साथ पारस्परिक चयनात्मकता भी लक्षित होती है।

2. विभक्तिपरक (inflectional)- वे लक्षण जिनकी अभिव्यक्ति रचना के घटकों में प्रयुक्त विभक्तियों द्वारा होती है, विभक्तिपरक कहलाते हैं। विभिन्न शब्द वर्गों द्वारा रूपायित ये विभक्तियाँ तीन प्रकार के लक्षणों द्वारा वाक्यीय संबद्धता को ज्ञापित करती हैं—

(क) अन्विति (agreement/concord)—जब किसी वाक्यीय रचना में प्रयुक्त एकाधिक पद किसी समान व्याकरणिक लक्षण की रूपात्मक अभिव्यक्ति करें तो इस सदृश अभिव्यक्ति को अन्विति की संज्ञा देते हैं, यथा- हिंदी में विशेषण + संज्ञा के मध्य प्रायः लिंग, वचन, कारक की अन्विति घटित होती है- बड़ा लड़का; बड़ी लड़की; बड़े लड़के। इसी प्रकार हिंदी में संज्ञा और क्रिया में लिंग, वचन तथा पुरुष की समानांतर अभिव्यक्ति मिलती है, यथा- लड़का जाता है; लड़की जाती है; लड़के जाते हैं; लड़कियाँ जाती हैं।

(ख) आकांक्षा (government)—जब वाक्यीय रचना में प्रयुक्त कोई पद बिना किसी बाह्य कारण के अपने साथ के दूसरे पद को कोई विशेष रूप ग्रहण करने के लिए विवश कर दे तो इस स्थिति को पदाकांक्षा की संज्ञा दी जाती है, यथा- हिंदी में ने, को, से आदि परसर्ग अपनी पूर्ववर्ती संज्ञा को तिर्यक् रूप में आने के लिए बाध्य करते हैं। 'लड़के ने गाना गाया'; लड़कों को घर जाना है; घोड़े से गिर गया। इस प्रकार वाक्यांतरगत एक पद का दूसरे पद द्वारा नियंत्रण पदाकांक्षा कहलाता है।

(ग) प्रति संदर्भ (cross reference)—जब वाक्य में प्रयुक्त कोई घटक किसी ऐसे व्याकरणिक लक्षण की अभिव्यक्ति करे जो अन्य घटकों द्वारा अभिव्यक्त हो चुका है, तो उस लक्षण के पुनः प्रयोग को प्रति संदर्भ कहते हैं, यथा- संस्कृत में 'त्वम् गच्छसि'। यद्यपि इस वाक्य में मध्यम पुरुष, एक वचन की अभिव्यक्ति सर्वनाम द्वारा हो रही है किंतु क्रिया में पुनः उन्हीं व्याकरणिक लक्षणों का प्रतिपादन है यही प्रतिसंदर्भ कहलाता है।

ध्यातव्य है कि भाषण संप्रवाह के कथनों में एक साथ कई लक्षण दृष्टिगत होते हैं, यथा—अच्छी लड़की जाती है वाक्य में चयनपरक, क्रमपरक लक्षणों के साथ साथ अन्विति भी मिलती है।

5.8 वाक्यीय विश्लेषण

5.8.1 आसन्न घटक विश्लेषण (immediate constituent analysis)

किसी भी भाषा के वाक्य मात्र शब्दों की स्वीकृत क्रम में शृंखला नहीं है अपितु विविध शब्दों द्वारा संरचित भाषिक इकाइयाँ हैं। वाक्य के निर्मायक इन शब्दों को घटक या अवयव कहते हैं। ये घटक एकाकी शब्द या शब्दों की शृंखला हो सकते हैं। किसी वाक्य के समस्त घटकों का पारस्परिक संबंध एक सा नहीं होता; कुछ घटक परस्पर अधिक निकटतापूर्वक संबद्ध होते हैं और ये घटक आपस में मिलकर संयुक्त रूप से किसी अन्य घटक या घटकों से अधिक निकटता का संबंध रखते हैं। संरचनात्मक दृष्टि से निकटता रखने वाले घटकों को आसन्न घटक कहते हैं। किसी

वाक्य के विभिन्न घटकों की संरचनात्मक सन्निकटता व दूरी की व्याख्या हेतु स्थापित पद्धति को आसन्न घटक कहते हैं। किसी वाक्य के विभिन्न घटकों की संरचनात्मक सन्निकटता व दूरी की व्याख्या हेतु स्थापित पद्धति को आसन्न घटक विश्लेषण पद्धति की संज्ञा दी जाती है। आसन्न घटक की अवधारणा वस्तुतः इस संरचनात्मक भाषिक प्रकृति पर निर्भर करती है कि भाषिक रचनाएँ प्रायः कतिपय केंद्रीय तत्वों के विस्तार से निर्मित होती हैं। इन केंद्रीय आधारभूत तत्वों के विस्तार एवं विन्यास के विविध सोपानों का विश्लेषण एवं वर्णन आसन्न घटक विश्लेषण के अंतर्गत किया जाता है। यह विश्लेषण रूपरचनात्मक स्तर पर भी होता है किंतु वाक्य रचना के स्तर पर इसका विशेष महत्व है[1], उदाहरणार्थ–

अनियमितताएँ

अनियमितता + एँ

अनियमित + ता

अ + नियमित

नियम + इत

नि + यम

रूपरचनात्मक स्तर की इस रचना के घटक सौपानिक संयोजन क्रम में संयुक्त हुए हैं। हिंदी भाषाभाषी इस तथ्य से परिचित हैं, कि इस रचना में 'नियमितताएँ' में 'अ' संयुक्त नहीं हुआ है और न ही 'अ' + 'नियम' विभाजन किया जा सकता है वरन् 'नियमित' में ही 'अ' संयोजित होगा। स्पष्ट है कि रचना में घटकों के संयोजन का निश्चित क्रम है जिसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार वाक्य रचना के स्तर पर भी विश्लेषण होता है, यथा–

'बूढ़ा आदमी सड़क के किनारे खड़ा है।'

यह एक वाक्यीय रचना है। रचना में आगत शब्द उसके घटक हैं। रचना देखने पर हम पाते हैं कि कुछ घटक अन्य की अपेक्षा निकटतः संबंधित हैं जैसे 'बूढ़ा आदमी' परस्पर घनिष्ठतः संबंधित प्रतीत होता है 'आदमी सड़क' की तुलना में। इस आधार पर उक्त रचना को निम्नवत् समूहबद्ध किया जा सकता है- बूढ़ा आदमी सड़क के किनारे खड़ा है।

संरचनात्मक समीपता के आधार पर किसी रचना के कई घटक किए जा सकते हैं किंतु आसन्न घटक विश्लेषण इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक रचना दो घटकों में ही विभाजित की जाए और वे घटक ही आसन्न घटक कहलायेंगे जो रचना विशेष के निर्माण के तुरन्त पूर्व के सोपान पर उसके घटक हों। उपर्युक्त वाक्य के दो आसन्न घटक निम्नलिखित हैं–

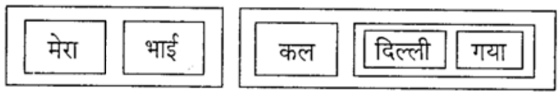
बूढ़ा आदमी / सड़क के किनारे खड़ा है।

'बूढ़ा आदमी' रचना के दो आसन्न घटक 'बूढ़ा/आदमी' हैं। इसी प्रकार 'सड़क

के किनारे खड़ा है' इस रचना के दो आसन्न घटक होंगे 'सड़क के किनारे' और 'खड़ा है'। तत्पश्चात् 'सड़क के' रचना का विभाजन होगा 'सड़क/के' तथा 'खड़ा है' के दो घटक होंगे खड़ा/है।

उपर्युक्त वाक्य के सात घटक हैं और इन घटकों का संयोजन संरचना के विभिन्न सोपानों पर हुआ है। प्रत्येक सोपान में दो आसन्न घटक हैं। स्पष्ट है कि आसन्न घटक वे घटक हैं जो किसी रचना विशेष के स्तर विशेष में रचना के निर्माण में प्रत्यक्षतः योगदान देते हैं और आसन्न घटक विश्लेषण द्वारा भाषिक रचनाओं के संरचनात्मक संयोजन क्रम के विविध सोपानों की सौपानकी (hierarchy) का उद्घाटन किया जाता है।

आसन्न घटक विश्लेषण के कई प्रारूप विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए। हॉकेट तथा ग्लीसन ने 'chinese box' आरेख प्रस्तुत किया–



आरेख-16

कोष्ठकों द्वारा भी आसन्न घटक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।

(((मेरे) (पड़ोस)) (में)) (((एक) ((प्रसिद्ध) (नेता))) ((रहता) (है)))

आरेख-17

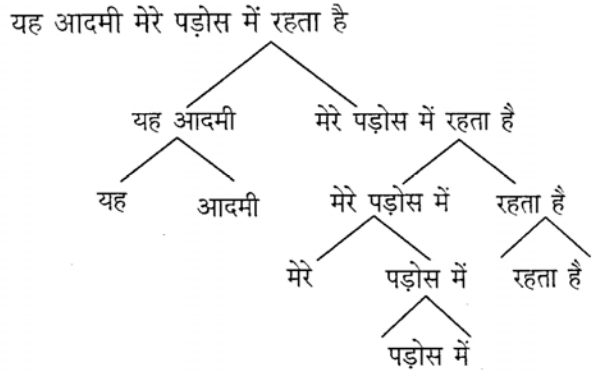
आसन्न घटक विश्लेषण खड़ी रेखा द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है–

राम ।।। का ।। भाई । घर ।। गया

आरेख-18

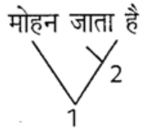
यहाँ एक खड़ी रेखा से पहला विभाजन, दो रेखाओं से दूसरा तथा तीन से तीसरा विभाजन संकेतित है। इन विभिन्न प्रारूपों के अतिरिक्त वृक्षचित्र या नामित वृक्ष चित्र (labeled tree diagram) भी प्रस्तुत किए गए, उदाहरणार्थ–(आरेख-19 देखें)

आसन्न घटक विश्लेषण वाक्य को विभिन्न स्तरों पर विखंडित करता है। यह विखंडन उस सीमा तक किया जाता है जब तक कि शब्द या रूपिम प्राप्त न हो। आगे विखंडित न होने वाले ये शब्द अथवा रूपिम चरम घटक (ultimate constituent) कहलाते हैं। प्रश्न यह उठता है कि किसी रचना के आसन्न घटक निर्धारित करने के लिए रचना का कहाँ से विभाजन किया जाए। इस समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांतों का अनुपालन आवश्यक है–



आरेख-19

1. **सान्निध्य** (proximity)- प्रतिवेशी शब्द सामान्यतः विविध संरचनात्मक सोपानों पर आसन्न घटकों का निर्माण करते हैं फलतः प्रायः आसन्न घटक प्रतिवेशी और सतत् होते हैं, यथा—



किंतु सदैव यह स्थिति नहीं होती और अप्रतिवेशी तथा विच्छिन्न घटक भी मिलते हैं।

2. **स्थानापत्ति** (substitution)—आसन्न घटक विश्लेषण स्थानापत्ति व विस्तार सिद्धांत पर आश्रित है। यदि दो रूपिम अनुक्रमों में अभिरचनागत समानता है तो कह सकते हैं कि दोनों समान संदर्भ में प्रयुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार की अभिरचनागत समानता को विस्तार की संज्ञा दी जाती है, यथा- 'मेरी छोटी बहन बाजार गई' रचना में 'मेरी छोटी बहन' की स्थानापत्ति बहन द्वारा हो सकती है तथा 'बाजार गई' का प्रतिस्थापन 'गई' द्वारा संभव है। किंतु 'बहन गई' रचना के स्थान पर एक शब्द नहीं प्रयुक्त हो सकता है। ऐसी रचनाएँ जिनकी स्थानापत्ति एक शब्द द्वारा हो सकती है किसी न किसी स्तर पर आसन्न घटक का निर्माण अवश्य करती हैं। भाषा में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ किसी भी एक शब्द में उत्तरोत्तर शब्दों के नियोजन द्वारा विस्तार होता है, यथा- साड़ी - काली साड़ी - बहन की काली साड़ी - छोटी बहन की काली साड़ी - मेरी छोटी बहन की काली साड़ी। इस अंतिम रचना की स्थानापत्ति भी 'साड़ी' शब्द द्वारा की जा सकती है।

3. **युगात्मकता** (binarity)—प्रारंभिक वर्णनात्मक भाषाविदों का मत था कि

2. रचनात्मक समरूपता- ऐसी रचना जिसके घटक संदिग्धार्थी होते हैं उनकी व्याख्या करने में आसन्न घटक विश्लेषण असमर्थ है, यथा- राम और श्याम का भाई चला गया। इस वाक्य में जाने का कार्य दो व्यक्तियों द्वारा हुआ है या एक यह कहना मुश्किल है। इसी प्रकार 'सीट पर बैठे हुए कुत्ते को बाँधिए' इस वाक्य में यह निश्चित नहीं है कि कुत्ता सीट पर बैठा है या कुत्ते को बाँधने वाला। ऐसे संदिग्ध वाक्यों का विश्लेषण आसन्न घटक पद्धति द्वारा दुष्कर होता है।

3. अतिव्यापी घटक (over lapping ICs)- रचना में आगत अतिव्यापी घटकों की व्याख्या और विश्लेषण समस्या उत्पन्न करता है, यथा- वह लिखना भी नहीं जानता और पढ़ना भी- इस वाक्य में पहले प्रयुक्त 'नहीं जानता' शब्द शृंखला पुनः प्रयुक्त हुई है श्रोता वाक्य के अंत में 'नहीं जानता' का प्रयोग करके ही उसका अर्थ ग्रहण करता है किंतु बाह्य संरचना में दृश्यमान न होने के कारण इस वाक्य का आसन्न घटक विश्लेषण कठिनाई उत्पन्न करेगा।

4. अदृश्य तत्व- किसी रचना में अदृश्य किंतु अर्थ के स्तर पर समझे जाने योग्य तत्वों की व्याख्या आसन्न घटक विश्लेषण पद्धति करने में समर्थ नहीं होती है, यथा—रुको मैं आ रहा हूँ वाक्य में 'तुम' न प्रयुक्त होते हुए भी विद्यमान है किंतु आसन्न घटक विश्लेषण में इस विशेषता को रूपायित नहीं किया जा सकता है।

5. रूपांतरण- भाषा के व्यवहृत रूप का विश्लेषण करने वाली यह पद्धति विविध प्रकार के वाक्यों के मध्य प्राप्त संबंधों को स्पष्ट नहीं कर पाती है। इस प्रकार सकारात्मक एवं नकारात्मक; कथन एवं प्रश्नवाचक; कर्तृवाच्य एवं कर्मवाच्य वाक्यों में निहित संबंध की व्याख्या इस पद्धति द्वारा संभव नहीं होती है। यह पद्धति हिंदी के निम्नलिखित दो वाक्यों को स्वतंत्र भिन्न वाक्य मान कर उनका विश्लेषण करती है—

(i) आज पानी बरसेगा।

(ii) आज पानी नहीं बरसेगा।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. आसन्न घटक विश्लेषण पद्धति का प्रयोग ब्लूमफील्ड ने सबसे पहले रूपरचना के क्षेत्र में योगात्मक भाषाओं के शब्द समूहों के वर्णन के लिए किया। रूलन वेल्स एवं हैरिस द्वारा इस पद्धति को वाक्य रचना के विश्लेषण पर लागू किया गया।

रूपांतरण एवं प्रजनक व्याकरण

6.1 व्याकरण-ऐतिहासिक दृष्टिकोण

प्राचीन एवं परंपरागत होने के कारण व्याकरण शब्द के स्वरूप व अवधारणा पर सम्यक् विचार अपेक्षित हैं। व्याकरण के विषय में भारतीय विद्वानों की मान्यता है- 'व्याक्रियन्तेऽसाधुशब्देभ्यः साधुशब्दाः पृथक्क्रियन्ते येन तद् व्याकरणम्' अर्थात् भाषा के विकृत होने पर भाषांतर के शब्दों को पृथक् कर देने वाला नियम-विशेष उस भाषा का व्याकरण है। तात्पर्य यह है कि जिन सूत्रात्मक नियमों द्वारा असाधु शब्दों से साधु शब्द पृथक् किए जाएँ उन नियमों के समुच्चय को व्याकरण कहते हैं। कतिपय अन्य विद्वानों के मतानुसार व्याकरण से तात्पर्य विखंडित या विग्रह करना है। निश्चित है कि विखंडन उसी का होना संभव है जो आकृतिवान एवं अखंड हो। अतः भारतीय मनीषियों का आशय यह है कि भाषा अजस्र व अखंड है और उसके परिज्ञान के लिए व्याकरण उसे विखंडित करता है। पाश्चात्य परंपरा में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द grammer ग्रीक एवं लैटिन में भी मिलता है और वहाँ इसका अर्थ है—'the art of writing'. ग्रीक वैयाकरणों ने इसी कारण भाषा के लिखित रूप को महत्व दिया और लिखित रूप में ही व्याकरण की सत्ता को स्वीकारा। उच्चरित भाषा में प्राप्त विभेदों के कारण इन वैयाकरणों ने उसे आंशिक रूप से व्याकरिणक माना। उस काल में व्याप्त इस दृष्टिकोण ने एक भ्रामक धारणा का प्रचार किया कि उच्चरित भाषारूप अशुद्ध एवं अव्याकरणिक होता है और इसकी तुलना में लिखित भाषा व्याकरण प्रधान होती है। इस प्रकार वहाँ व्याकरण से तात्पर्य शुद्ध प्रयोग की स्थापना करने वाले नियमों से लिया गया। वस्तुतः व्याकरण से तात्पर्य उन नियमों से है जिनका प्रयोग वक्ता भाषा बोलते समय करता है और जिनके कारण श्रोता बात समझने में समर्थ होता है।[1] भाषाविज्ञान में प्रायः 'व्याकरण' का प्रयोग पारिभाषिक शब्द के रूप में स्वनविज्ञान एवं अर्थविज्ञान से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। प्रजनक भाषाविद् व्याकरण का क्षेत्र व्यापक कर स्वनप्रक्रिया एवं अर्थ को इसमें समाविष्ट करते हैं।

6.1.1 पारंपरिक व्याकरण

उद्देश्य की पृथकता के आधार पर व्याकरण के स्वरूप में विविधता मिलती है।

भाषा के साधु एवं मानक रूप का नियमन तथा तत्संबंधी नियमों का उल्लेख निर्देशात्मक व्याकरण (prescriptive grammar) कहलाता है।[2] इसका उद्देश्य भाषा के शुद्ध तथा मानक रूप का परिज्ञान एवं स्थापना है। ये व्याकरण भाषा विशेष के संदर्भ में प्रयोग संबंधी निर्देश देते हैं और वक्ता को नियम-पालन के लिए बाध्य करते हैं। निर्देशात्मक व्याकरण विभिन्न भाषिक स्तरों के मध्य भिन्नता नहीं करते, यथा-हिंदी के पारंपरिक व्याकरण में यद्यपि संज्ञा को 'वस्तु, व्यक्ति, स्थान एवं भाव का नाम' कहकर परिभाषित किया जाता है तथापि रंगों के नाम संज्ञा नहीं कहलाते हैं। कुछ देशों में भाषा में व्याप्त अराजकता को देख शासकीय सम्मति से इस प्रकार के व्याकरण रचे जाते हैं। फ्रांस स्पेन आदि देशों में राष्ट्रीय अकादमियों ने निर्देशात्मक व्याकरण को प्रमाणित भी माना है किंतु प्रायः निर्देशात्मक व्याकरण वास्तविक प्रयोगों की अवहेलना कर ऊहापोहात्मक धारणाओं को स्वीकार करते है। इसे ही आगे चलकर पारंपरिक व्याकरण का नाम दिया गया।

पारंपरिक व्याकरण की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। इसके अंतर्गत अरस्तु की भाषा संबंधी विचारधारा से प्रभावित प्राचीन ग्रीक एवं रोमन विद्वानों के कार्यों के साथ-साथ मध्ययुगीन विद्वानों के कार्यों तथा 18वीं शताब्दी के व्याकरणशास्त्रियों द्वारा रचित निर्देशात्मक व्याकरण की गणना की जाती है। शब्द और अर्थ संबंधी अरस्तु एवं प्लेटो के विचार, पद-विभाजन संबंधी स्टोइक वर्ग के कार्य, अर्थ संबंधी मध्ययुगीन वाद-विवाद, मस्तिष्क एवं भाषा के मध्य प्राप्त संबंध पर की गई दार्शनिक चर्चा, भाषा शुद्धता एवं भाषा इतिहास पर किए गए चिंतन आदि पारंपरिक व्याकरण का अंग थे। तत्कालीन विद्वानों एवं अध्यापकों में इसका प्रचार एवं प्रसार था। इसकी सहायता से विद्वानों ने शताब्दियों तक भाषाओं का अध्ययन, अध्यापन एवं शिक्षण किया।

6.1.2 पारंपरिक व्याकरण की कमियाँ

भारोपीय परिवार की भाषाओं पर आश्रित होने के कारण यह व्याकरण अन्य भाषाओं के समग्र वर्णन के लिए उपयुक्त मॉडल नहीं प्रस्तुत करता है। यह व्याकरण भाषायी स्तरों- स्वनिक, रूपरचनात्मक, वाक्यीय एवं अर्थ के मध्य भेद नहीं करता है। यह विवरणात्मक न होकर निर्देशात्मक एवं नियमात्मक है और वक्ता को सदैव भाषा प्रयोग के नियम पालन के लिए बाध्य करता है। भाषिक अध्ययन के लिए समकालिक या समसामयिक उपागम के स्थान पर ऐतिहासिक या द्विकालिक उपागम का प्रयोग करता है। भाषा के लिखित रूप पर बल देने के कारण पारंपरिक व्याकरण भाषा के समसामयिक, प्रकार्यात्मक और सामाजिक रूप को अस्वीकार करता है। परिणामतः यह जीवित भाषा का अध्ययन मृत की भाँति करता है। भाषा को ईश्वर प्रदत्त, धार्मिक मान उसकी परिवर्तनशीलता पर ध्यान नहीं देता है। पारंपरिक व्याकरण की पद्धति अशुद्ध, अपूर्ण एवं अनिश्चित थी। इनका अध्ययन अनुपयुक्त था जो अंतःप्रज्ञा पर आश्रित था।

की दिशा में होता है। इन भाषाविदों ने स्तर-सम्मिश्रण को वैज्ञानिक नहीं माना। चूंकि प्रत्येक निम्न स्तर की इकाइयाँ उच्च स्तर के घटक होते हैं अतः इनके मतानुसार विश्लेषण सदैव नीचे से ऊपर की ओर बढ़ता है।

6.1.4 संरचनात्मक व्याकरण की कमियाँ

आधुनिक भाषाविद् चॉम्स्की ने कई बिंदुओं पर इस उपागम की आलोचना की। मौखिक एवं व्यवहृत भाषा पर बल होने के कारण यह व्याकरण सामग्री बद्ध होता है। इस व्याकरण ने भाषा के अर्थ पक्ष को समुचित महत्व न देकर उसकी अवहेलना की। यह व्याकरण सीमित संख्यक वाक्यों का 'खोज प्रक्रिया' के आधार पर विश्लेषण करता है। संरचनात्मक व्याकरण भाषिक संदिग्धता एवं संबंध की व्याख्या करने में असमर्थ है। यह व्याकरण भाषा के बोले जा चुके वाक्यों का वर्णन-विश्लेषण करता है, किंतु एक निश्चित समय में, किसी समाज में, भाषा का व्यवहृत रूप ही मात्र भाषा नहीं है वरन् भाषा की वाक्य राशि अनन्त है। कोई भी वक्ता जिसका प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर कर सकता है। कह सकते हैं कि यह व्याकरण भाषा की सृजनात्मक एवं प्रजनक क्षमता की चर्चा नहीं करता है। रूपात्मकता एवं वस्तुनिष्ठता पर दिया गया अतिशय बल इनके भाषिक वर्णन को भाषा के समाज-आर्थी पक्ष से दूर ले जाता है। ये विद्वान व्याकरण को भाषिक इकाइयों के वर्गीकरण एवं अंतर्सम्बन्ध के रूप में देखते हैं।

परिमित पाठ या सामग्री का वर्णन करने वाला वर्णनात्मक व्याकरण **पाठीय** (textual) कहलाता है। व्याकरण का वह रूप जो पाठ पर निर्भर नहीं करता तथा दृष्टान्तों के माध्यम से भाषा संरचना का वर्णन करता है **दृष्टान्त्यात्मक** (exemplificatory) कहलाता है। व्याकरण का वह प्रकार जो पाठाश्रित नहीं होता संरचनाविदों तथा भाषा-संरचना के वर्णन के लिए एक नियम-समुच्चय प्रस्तुत करता है जिसके द्वारा भाषा के समस्त सम्भावित वाक्यों का अवबोधन एवं प्रयोग संभव है **प्रजनक** (generative) कहलाता है।[4] व्याकरण के इस प्रारूप की विस्तृत चर्चा ही प्रस्तुत अध्याय की विषय वस्तु है।

6.2 रूपांतरण प्रजनक व्याकरण का स्वरूप

1957 में जैलिंग हैरिस के युवा शिष्य नोअम चॉम्स्की की "syntactic structure" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसने अमरीकी भाषाविज्ञान जगत में उथल-पुथल मचा दी और भाषाध्ययन की दिशा में निःसंदेह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। चिंतन की इस नवीन धारा को 'रूपांतरणशील प्रजनक व्याकरण' नाम दिया गया। इस नई चिंतन धारा की एक झलक चॉम्स्की के अध्यापक ज़ैलिंग हैरिस के कुछ लेखों तथा 1957 के पूर्व लिखे चॉम्स्की के ही कुछ लेखों में मिलती है किंतु syntactic structures में इसका सर्वप्रथम विस्तृत एवं सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण मिलता है।

चॉम्स्की, फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्ते, भाषाध्ययन के मध्ययुगीन संप्रदाय पोर्ट रॉयल एवं भाषाविद् विल्हेलम फॉन हम्बोल्ट के विचारों से बहुत प्रभावित थे। इन्होंने पारंपरिक यूरोपीय दार्शनिकों से सूत्र ग्रहण किया, जिनका उदे्श्य यह पता लगाना था कि मनुष्य भाषा अर्जन तथा प्रयोग कैसे करता है? तथा इन कार्यों में अंतर्निहित सार्वभौमिक सिद्धांत क्या है? इन दार्शनिकों ने '.ाषा अध्ययन की उद्दीपक-अनुक्रिया प्राक् कल्पना का खंडन कर भाषा प्रयोग में सृजनात्मकता के सिद्धांत को महत्व दिया। 1955 में लिखी गई एवं 1957 में प्रकाशित अपनी एक अन्य पुस्तक The logical struture of linguistics में चॉम्स्की ने यह प्रतिपादित किया कि 'मुझे भाषा आती है' इस कथन का प्रयोक्ता भाषा के विषय में क्या जानता है यह ज्ञात करना ही भाषिक सिद्धांत का उद्देश्य है न कि भाषाविद् द्वारा वर्गीकृत भाषा का पता लगाना।

उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ संरचनात्मक मनोदृष्टि के अंतर्गत भाषा की अवधारणा अंतराश्रित इकाइयों की संरचना के रूप में की गई और भाषाविद् का उद्देश्य इस संरचना के निर्मायक तत्वों का उद्घाटन इसके संबंधों एवं संयोजन क्रमों की सारणियों का वर्णन माना गया। भाषाध्ययन के रूपनिष्ठ आधार को पूर्णतः स्वीकार करने वाली यह मनोदृष्टि भाषा के दार्शनिक एवं मानसिक पक्षों को अपने अध्ययन में समाहित नहीं करती है। चॉम्स्की ने भाषा विश्लेषण को सर्वथा नवीन दिशा दी जिसके अंतर्गत भाषाचिंतन के एक समेकित सिद्धांत की स्थापना की।[5]

रूपांतरण का शाब्दिक अर्थ 'किसी रचना का दूसरी रचना में अंतरण या परिवर्तन हैं, उदाहरणार्थ—हिंदी के निम्नलिखित दो वाक्य लें—

(अ) भाषाविज्ञान रोचक विषय है।

(ब) भाषाविज्ञान रोचक विषय नहीं है।

इनमें प्रथम वाक्य सकारात्मक एवं द्वितीय वाक्य नकारात्मक है। एक मातृभाषाभाषी इनके मध्य के संबंध को अपनी अंतःप्रज्ञा के आधार पर समझता है। उसे यह स्वीकार करने में कठिनाई नहीं होती है कि प्रथम वाक्य के द्वारा ही द्वितीय निर्मित हुआ है। चॉम्स्की इस प्रकार के परिवर्तन को रूपांतरण की संज्ञा देते हैं। यहाँ प्रथम वाक्य मूल या बीज वाक्य (kernel sentence)[6] और द्वितीय उसका रूपांतरित वाक्य माना जाता है। इस प्रकार सरल शब्दों में मूल वाक्य से निषेधात्मक, प्रश्नवाचक, कर्मवाच्य आदि वाक्यों का निर्माण मूल वाक्य का नवीन वाक्य में अंतरण कहलाता है और इस प्रक्रिया को रूपांतरण कहते हैं। इस सिद्धांत में प्रयुक्त दूसरा शब्द 'प्रजनक' मूलतः गणित का है। किसी भाषा का वर्णन दो मार्गों द्वारा हो सकता है प्रथम-स्थिर अर्थात् जो वर्णन पारस्परिक संबंधों में व्यवस्थित भाषिक इकाइयों के विषय में अनुमान कर, रूपसारणियों का निर्माण करता है तथा निश्चित संदर्भ में परस्पर परिवर्तनीय इकाइयों की सूचना देता है। द्वितीय वर्णन गत्यात्मक होता है जिसके अंतर्गत क्रिया रूप का प्रातिपदिक से होने वाला संयोग प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। प्रजनक

व्याकरण भाषा वर्णन का गत्यात्मक मार्ग अपनाता है। जिस प्रकार निम्नलिखित शृंखला का प्रजनन एक निश्चित नियम द्वारा होता है—

24356879...

ठीक उसी प्रकार भाषा की वाक्य शृंखलाएँ प्रजनित करने के भी नियम होते हैं और व्याकरण का उद्देश्य इन नियमों का वर्णन है। चॉम्स्की वा = सप + क्रिप के स्थान पर वा ⟶ सप + क्रिप इस प्रक्रिया को स्वीकार करते हैं अर्थात् वाक्य सप और क्रिप देता है न कि वाक्य सप + क्रिप है। किसी भी प्रजनक प्रक्रिया की भाँति यहाँ भी **निवेश** (input) और निर्गम (output) समान नहीं होता है तथा सीमित निवेश असीम निर्गम को प्रजनित करता है। यही कारण है कि एक मातृभाषाभाषी सीमित संख्यक कथनों के श्रवण एवं अवबोधन के पश्चात् अनेकानेक वाक्यों को बोलने एवं समझने में समर्थ होता है। चॉम्स्की के विचारानुसार एक सफल एवं उत्कृष्ट व्याकरण निश्चित नियमों का ऐसा समुच्चय है जो भाषा के समस्त संभावित व्याकरणिक वाक्यों को प्रजनित कर उनका वर्णन करता है अर्थात् व्याकरण ऐसा होना चाहिए जिसके नियम एवं परंपरा का पालन करने वाला वक्ता भाषा के समस्त (संपूर्ण वाक्य सम्पदा), संभावित (भविष्य में जिनका प्रयोग हो सकता है) वाक्यों का उत्पादन कर सके। अतः प्रजनन से तात्पर्य इस पूर्वानुमान से है कि कौन से वाक्य किस भाषा के हैं अथवा इस स्पष्टीकरण से है कि कौन से वाक्य भाषा के हो सकते हैं।

इस प्रकार एक व्याकरण को किसी भाषा के व्याकरणिक/ग्राह्य वाक्यों का प्रजनन, पूर्वानुमान एवं स्पष्टीकरण करना चाहिए न कि अव्याकरणिक और अग्राह्य वाक्यों का। अतः प्रजनक व्याकरण किसी भाषा के घटित हो चुके या प्रयोग किए जा चुके वाक्य समुच्चय से नहीं वरन् सम्भावित वाक्य समुच्चय से संबंधित है। यह किसी समाज में भाषा के बोले जा रहे या बोले जा चुके वाक्यों का विश्लेषण नहीं है वरन् जो आगे कभी बोले जा सकते हैं उनका भी प्रजनन एवं विश्लेषण अनिवार्य मानता है तथा इन वाक्यों की ओर सुस्पष्ट, सुनिश्चित एवं व्यवस्थित संकेत करता है। यह अध्ययनकर्ता के भाषाज्ञान योग्यता या कल्पना पर कुछ नहीं छोड़ता और वाक्यों का एक चरण से दूसरे चरण में प्रजनन निश्चित नियमों द्वारा निर्देशित करता है। भाषाविद् का उद्देश्य इस निश्चित नियम व्यवस्था का अध्ययन है जिसका ज्ञान उक्ति को नवीन परिस्थिति में भाषा प्रयोग के लिए सक्षम बनाता है और पहले प्रयोग में न लाए गए वाक्यों को भी वह बोलने व समझने में समर्थ होता है।[7] किसी भाषा को सीखते समय हम उसकी असीम वाक्य संपदा को कंठस्थ नहीं करते हैं वरन् हमारा मस्तिष्क सीखे गए वाक्यों के अनुरूप नियमों का निर्धारण करता है और उनके आधार पर असंख्य वाक्यों के प्रजनन की क्षमता विकसित हो जाती है। इस प्रकार गणित की भाँति व्याकरण भी प्रजनक होता है। इस प्रक्रिया को निम्नांकित आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

की प्रथम और सामान्य आवश्यकता यह है कि वह व्याकरणिक एवं अव्याकरणिक वाक्यों के मध्य अंतर कर सके तथा स्वनप्रक्रियात्मक, रूपरचनात्मक, वाक्यीय एवं आर्थी दृष्टि से सुगठित वाक्यों को अव्याकरणिक वाक्यों से विलग करने में सक्षम हो। ऐसे व्याकरण को प्रेक्षणमूलक बिंदु पर उपयुक्त ठहराया जाता है।

(आ) वर्णनात्मक उपयुक्तता (descriptive adequacy)- जब व्याकरण मातृभाषाभाषी की भाषिक अंतःप्रज्ञा का सही लेखा-जोखा प्रस्तुत करे एवं भाषा की मूलाधार नियमितताओं को अभिव्यक्त करने वाले महत्वपूर्ण सामान्यीकरणों का प्रेक्षणीय आँकड़ों के संदर्भ में वर्णन करे तब उसे वर्णनात्मक दृष्टि से उपयुक्त माना जाता है। चॉम्स्की इसे प्रथम उपयुक्तता से उच्चस्तरीय स्वीकारते हैं।[8]

(इ) व्याख्यात्मक उपयुक्तता (explanatory adequacy)- यह उपयुक्तता उपर्युक्त दो उपयुक्तताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर है-

(इ.1) व्याकरण में किसी भी भाषिक सामग्री के परीक्षण तथा विश्लेषण की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए।

(इ.2) विश्लेषण के आधार पर प्राप्त सामग्री के सम्यक् विवरण की सामर्थ्य होनी चाहिए।

(इ.3) सामग्रीगत नियमों की पूर्ण एवं निर्भ्रम व्याख्या करने की पर्याप्त क्षमता होनी अनिवार्य है। इस प्रकार किसी व्याकरण में उपर्युक्त दोनों क्षमताओं के अतिरिक्त यह भी सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह भाषा विशेष के संरचनात्मक वर्णन को सर्वभाषा के नियमों के परिप्रेक्ष्य में तथा उसके अनुरूप प्रस्तुत कर सके।

6.2.3 भाषिक दक्षता एवं प्रयोग (linguistic competence and linguistic performance)

किसी विषय में व्यक्ति क्या जानता है और क्या करता है इसके मध्य के अंतर को स्पष्ट किया जा सकता है।[9] भाषाविद् इस भिन्नता को भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित करते हैं। फ्रांसीसी विद्वान सेस्यूर ने इसे 'लॉग' एवं 'परोल' की संज्ञा दी तथा चॉम्स्की इसका वर्णन भाषिक दक्षता एवं प्रयोग शीर्षक के अंतर्गत करते हैं। भाषिक दक्षता से तात्पर्य मातृभाषाभाषी के भाषा ज्ञान से है तथा उस भाषा ज्ञान के आधार पर व्यक्ति जो बोलता और सुनता है उसे भाषिक प्रयोग कहते हैं। ध्यान रहे कि मानव में भाषार्जन की प्रवृत्ति जन्मजात (innate) होती है। उसका मस्तिष्क भाषिक ज्ञान को आत्मसात करने के लिए जन्मतः तैयार रहता है। अन्य मानवीय क्षमताओं जैसे- देखना, सुनना, चलना आदि की भाँति बालक स्वाभाविक विकास क्रम के अनुसार भाषा की इस जन्मजात दक्षता को पूर्णता विकसित कर लेता है। व्याकरण भाषाभाषी की उन भाषिक योग्यताओं का व्यवस्थापरक वर्णन है जिनके कारण वह अपनी भाषा के अक्षुण्ण उत्पादन तथा अवबोधन में समर्थ होता है। इस भाषिक योग्यता को ही चॉम्स्की भाषिक

दक्षता की, और विभिन्न जागतिक परिस्थितियों में भाषा व्यवहार को भाषिक प्रयोग की संज्ञा देते हैं। इनके मतानुसार भाषिक दक्षता किसी भाषा के सभी भाषाभाषियों के लिए समरूपी होती है। चॉम्स्की भाषिक दक्षता के दो प्रकार बताते हैं।

अ. व्याकरणिक दक्षता (grammatical competence)

ब. संकेत प्रयोग दक्षता (pragmatic competence)

जहाँ प्रथम दक्षता भाषा संरचना के सिद्धांत से संबंधित है वहीं द्वितीय भाषिक व्यवहार के सिद्धांत से। किसी वाक्य द्वारा प्रेषित अभाषिक सूचनाएँ वक्ता को संकेत प्रयोग दक्षता द्वारा ही ज्ञात होती है, यथा- 'आज का दिन बहुत बुरा था' परिप्रेक्ष्य में घटित प्रकरणों के आधार पर, इस वक्तव्य के एकाधिक सूच्यार्थ हो सकते हैं जो श्रोता की संकेत प्रयोग दक्षता पर निर्भर करते हैं। हिंदी के एक अन्य वाक्य को लें- 'उसके जाते ही राम चला गया' यह निश्चित है कि इस कथन में 'उसके' तथा 'राम' एक ही व्यक्ति नहीं हो सकता। वक्ता को व्याकरणिक दक्षता द्वारा इस तथ्य का ज्ञान होता है। चॉम्स्की ने संकेत प्रयोग दक्षता की तुलना में व्याकरणिक दक्षता को अधिक महत्व दिया है।

6.2.4 सृजनात्मकता (creativity)

प्रजनक व्याकरण भाषा की रचनाशीलता एवं असीमितता को रेखांकित करता है। किसी भी भाषा का व्याकरण यद्यपि सीमित सामग्री के आधार पर निर्मित होता है तथापि उसके लिए अनिवार्य है कि वह न केवल भाषा में प्रयोग हो रहे वाक्यों का वर्णन करे वरन् समस्त सम्भावित वाक्यों को भी प्रजनित करे। भाषा सीमित साधनों का असीमित प्रयोग है।

6.3 भाषिक सार्वभौम तत्व (linguistic universals)

भाषिक सार्वभौम से तात्पर्य समस्त भाषाओं में प्राप्त होने वाले सामान्य अभिलक्षणों से है। निश्चय ही सभी भाषाओं में कतिपय सार्वभौम तत्व प्राप्त होते हैं, यथा- व्याकरण, अर्थ, निश्चित मानवीय ध्वनियाँ, संरचनात्मक द्वैतता इत्यादि। प्रजनक व्याकरण में इस संकल्पना का विशेष महत्व है। चॉम्स्की के मतानुसार एक भाषिक सिद्धांत वास्तव में भाषिक सार्वभौम तत्वों के बारे में परिकल्पना ही है। दूसरे शब्दों में भाषाविज्ञान का उद्देश्य मानवीय भाषा को परिभाषित करने वाली सार्वभौम विशेषताओं को निरूपित करना है। कुछ स्वनप्रक्रियात्मक, वाक्यीय एवं आर्थी इकाइयाँ सार्वभौमिक होती है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि ये इकाइयाँ समस्त भाषाओं में अनिवार्यतः प्राप्त हों वरन् तात्पर्य यह है कि इन्हें स्वतंत्र रूप में परिभाषित किया जा सकता है (बिना इस बात का ध्यान दिए कि किसी भाषा में ये कैसे व्यवहृत होती है) और इस परिभाषा के आधार पर किसी भाषा विशेष में घटित होने पर इन्हें पहचाना

जा सकता है।

चॉम्स्की ने इन तत्वों को दो वर्गों में विभाजित किया–

(i) संज्ञापरक सार्वभौम (substantive universals) एवं

(ii) रूपात्मक सार्वभौम (formal universals)

वे संकल्पनाएँ जिनसे किसी भाषिक वर्णन में विशिष्ट प्रकथन निर्मित होते हैं संज्ञापरक कहलाते हैं, यथा- वाक्यीय कोटियाँ, स्वनप्रक्रियात्मक प्रभेदक अभिलक्षण एवं शब्दार्थ चिह्नक। रूपात्मक सार्वभौम अधिक अमूर्त होते हैं। ये एक प्रकार के सामान्य सिद्धांत हैं जो व्याकरण में नियम के स्वरूप व प्रयोग निर्धारित करते हैं, उदाहरणार्थ- विभिन्न वाक्यों को संबंधित करने वाले रूपांतरण नियम।

चॉम्स्की ने प्रजनक व्याकरण के तीन घटक निरूपित किए-

1. वाक्यीय घटक (syntactic component)
2. आर्थी घटक (semantic component)
3. स्वनप्रक्रियात्मक घटक (phonological component)

ये तीनों घटक भाषिक योग्यता के तीन प्रमुख प्रकारों को प्रतिबिम्बित करते हैं। वाक्यीय घटक केंद्रीय होता है जिसमें वाक्यों को प्रजनित करने वाले पदबंध संरचना नियम तथा शब्द कोश की गणना होती है। पदबंध संरचना नियम द्वारा प्रजनित मूल वाक्यों पर रूपांतरण नियम लागू किए जाते हैं। वाक्यीय घटक द्वारा निष्पादित संरचना को ध्वन्यात्मक एवं औच्चारिक स्वरूप स्वनप्रक्रियात्मक घटक द्वारा प्रदान किया जाता है। इसके अंतर्गत रूपस्वनिमिक एवं सन्धि के नियम भी दिए जाते हैं। प्रजनित वाक्यों का आर्थी प्रतिरूपण आर्थी घटक द्वारा किया जाता है। आर्थी एवं स्वनप्रक्रियात्मक घटक व्याख्यापरक होते हैं।[10]

चॉम्स्की अपने प्रारूप में तीन प्रकार के नियमों की चर्चा करते हैं–

1. पदबंध संरचना नियम (phrase structure rules)
2. रूपांतरण नियम (transformational rules)
3. रूपस्वनिमिक नियम (morphophonemic rules)

6.4 पदबंध संरचना नियम

संरचनावादियों द्वारा निरूपित आसन्न घटक विश्लेषण मुख्यतः विश्लेषणात्मक था, जो भाषा के बोले जा चुके वाक्यों का विश्लेषण करता है। नामित आसन्न घटक विश्लेषण पारंपरिक व्याकरण में प्राप्त पद व्याख्या (parsing) की भाँति है। चॉम्स्की के अनुसार भाषा-विशेष का वक्ता असीमित आकार-प्रकार के वाक्यों का अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करता है जिन्हें वह सीमित संख्या के मूल वाक्यों को रूपांतरित कर निर्मित करता है। अतः मूल वाक्य से अनेकानेक वाक्यों के प्रजनन की क्षमता का वर्णन एवं वाक्य में आगत घटकों की व्यवस्था की चर्चा के लिए इन्होंने प्रचलित आसन्न घटक

पदबंध संरचना नियमों द्वारा वाक्य की मूलाधार संरचना प्रजनित होती है। इनमें नामपत्र (lable) अंतःस्थित रहते हैं। इन नियमों को इस प्रकार एक क्रम में संयोजित किया जाता है कि प्रारम्भिक चिह्न को छोड़कर प्रत्येक नियम पूर्व नियमों के निर्गम (output) की स्थानापत्ति, विस्तार या पुनर्लेख करता है।

उपर्युक्त नियमों से जहाँ व्याकरणसम्मत वाक्य प्रजनित होते हैं वहाँ *अच्छी कुत्ता है, *एक कुत्ता छोटी था जैसे अव्याकरणिक एवं अग्राह्य वाक्य भी प्रजनित होते हैं क्योंकि ये नियम प्रसंग सापेक्ष नहीं हैं। अतः इन नियमों पर प्रसंगगत बन्धन लगाना अनिवार्य है। व्याकरण का वह रूप जिसमें एक या अधिक प्रसंग सापेक्ष नियम होते हैं प्रसंग सापेक्ष पदबंध संरचना व्याकरण (context sensitive phrase structure grammar) कहलाता है। इस व्याकरण में भाषा के दो या अधिक पदवर्गों के मध्य प्राप्त सहगामिता प्रतिबंधों अथवा चयनपरक संबंधों तथा शब्द प्रयोग की स्थितियों का विवरण दिया जाता है। ये प्रतिबंधन अथवा आश्रयताएँ (dependencies) निम्नवत वर्गीकृत की जा सकती हैं–

(i) सरल आश्रयता संबंध

(ii) पारस्परिक आश्रयता संबंध

(iii) परस्पर व्यावर्तक आश्रयता संबंध

प्रथम संबंध में एक पदवर्ग का प्रयोग दूसरे वर्ग पर निर्भर करता है जबकि दूसरा प्रथम पर निर्भर नहीं करता, यथा–

वह तुरन्त चला गया।

इस वाक्य में क्रि वि 'तुरन्त' का प्रयोग क्रिया पर निर्भर करता है जबकि क्रिया उस पर आश्रित नहीं है। इस संबंध को निम्नलिखित नियम द्वारा प्रतिरूपित कर सकते हैं–

क → ख + (ग)

द्वितीय संबंध में दोनों पदवर्ग एक दूसरे पर निर्भर करते हैं, यथा- हिंदी वाक्य में कर्ता क्रिया पर तथा क्रिया कर्ता पर निर्भर करती है। इसका नियम होगा–

क → ख + ग

परस्पर व्यावर्तक आश्रयता उस संबंध को कहते हैं जब किसी वर्ग के कुछ सदस्य दूसरे वर्ग के कतिपय विशिष्ट सदस्य के साथ ही प्रयोग किए जा सकें, यथा- कुछ संज्ञाएँ कतिपय क्रियाओं के कर्ता रूप में ही प्रयोग की जा सकती हैं जैसे- कुत्ता मांस खाता है।

किंतु मेज मांस खाती है। यह प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

इस संबंध में निम्नलिखित नियम होगा–

क → {ख1/ख2 च-छ} यहाँ ख1 का परिवेश स्पष्टतः रेखांकित है।

जब किसी एक वर्ग के सदस्य स्पष्ट प्रसंग में साथ-साथ घटित न हों यथा हिंदी

सहायक क्रिया का प्रयोग अन्य सहायक क्रिया के साथ नहीं हो सकता है। इसका प्रतिरूपण निम्नलिखित नियम द्वारा किया जा सकता है—

$$\text{क} \begin{Bmatrix} \text{ख} \\ \text{ग} \end{Bmatrix}$$

संरचनात्मक व्याकरण प्रारूप में इनमें से कतिपय आश्रयताएँ अन्विति, आकांक्षा एवं प्रत्युल्लेख नाम से स्पष्ट की गई हैं। साथ ही कुछ आश्रयताएँ समीपस्थ (contiguous) और कुछ असमीपस्थ (non contiguous) होती हैं, यथा—

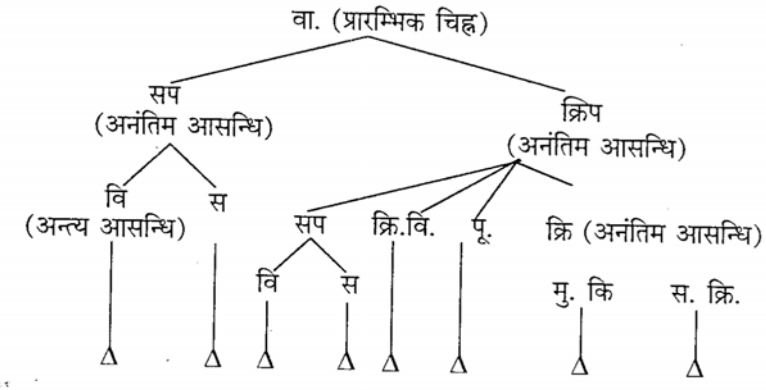
वह जा रहा है। (समीपस्थ)

He is going. (असमीपस्थ)

अंग्रेजी के इस वाक्य में

'is' का संबंध 'ing' से है

पदबंध संरचना नियमों को वृक्ष आरेख द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है।



आरेख-21

ऐसे नोड जिनके नीचे डेल्टा प्रतीक के अतिरिक्त कुछ नहीं होता उन्हें अन्त्य आसन्धि कहते हैं तथा ऐसे नोड जिनके पुनर्लेख नियम आगे भी लिखे जा सकते हैं उन्हें अनंतिम आसंधि (non terminal node) कहते हैं।

6.4.1 पदबंध संरचना नियम की सीमाएँ

वस्तुतः पदबंध संरचना नियम खंडीकरण एवं वर्गीकरण का व्याकरण है यह एक वर्गिकीय (taxonomic) प्रारूप है जिसके अंतर्गत भाषिक तत्वों एवं इकाइयों का एक समुच्चय होता है। पदबंध संरचना व्याकरण के विस्तार और विकास के प्रयास भाषा

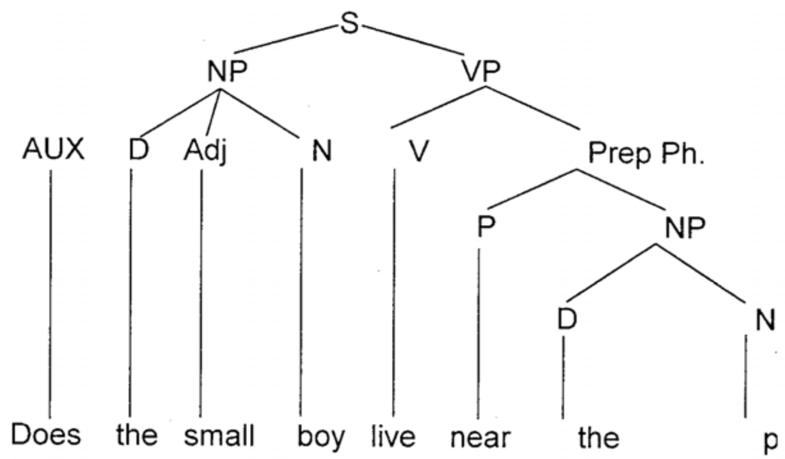
संरचना पर नवीन दृष्टि से प्रकाश ही डालते हैं। चॉम्स्की के मतानुसार ये नियम मातृभाषा की अंतःप्रज्ञा का विवरण देने में असमर्थ हैं। इस प्रारूप की सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) पदबंध संरचना नियम वाक्यान्तर्गत आगत घटकों के संबंधों की बहुविधता का विश्लेषण नहीं कर पाते हैं। साथ ही विविध वाक्य प्रकारों के पारस्परिक संबंध को भी उद्घाटित करने में असमर्थ हैं। इस प्रकार इनके द्वारा कर्मवाच्य एवं कर्तृवाच्य सकारात्मक तथा नकारात्मक, निदेशात्मक व प्रश्नवाचक वाक्यों के बीच के संबंध की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

(ii) ये नियम वाक्यीय घटकों को सतत् इकाई के रूप में मानते हैं जबकि भाषा में विच्छिन्न घटक भी मिलते हैं, उदाहरणार्थ- अंग्रेजी के प्रश्नवाचक वाक्यों में सहायक क्रिया कर्ता संज्ञापद पूर्व रखी जाती है जबकि वह क्रिया से घनिष्ठतः संबंधित होती है, यथा—

Does the small boy live near the park?

इस वाक्य का वृक्ष आरेख एवं नियम निम्नवत् होगा :—



आरेख-22

नियम है—

वा → सहायक + सप + क्रिप

इस प्रकार के विच्छिन्न संबंधों को शाखाओं के द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है और पदबंध संरचना नियम द्वारा यह संभव नहीं है।

(iii) भाषाओं में प्राप्त कुछ विशिष्ट संदिग्धार्थकता पदबंध संरचना नियम द्वारा

वर्णेय नहीं होती है। भाषा में मुख्यतः दो प्रकार की संदिग्धार्थकता मिलती है-कोशीय तथा संरचनात्मक।

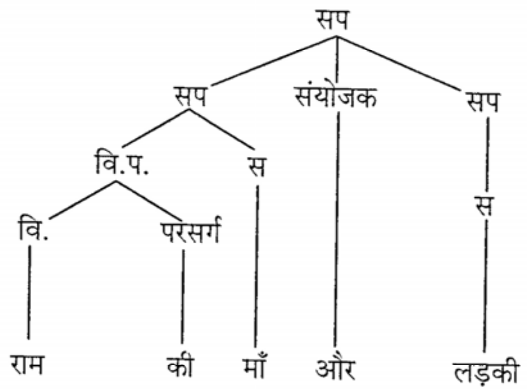
(अ) कोशीय संदिग्धार्थकता- यदि रचना में प्रयुक्त कोई शब्द एकाधिक अर्थ वाला है तो वहाँ कोशीय संदिग्धार्थकता मिलती है, यथा- हिंदी के माँग, आम, कनक, बेल इत्यादि शब्द। तुम्हारी माँग टेढ़ी है; यह आम नहीं है। ये वाक्य कोशीय स्तर पर संदिग्धार्थी है।

(ब) संरचनात्मक संदिग्धार्थकता- यदि किसी संरचना (वाक्य, उपवाक्य, पदबंध) के एक से अधिक अर्थ हों तो उसे संरचनात्मक संदिग्धार्थकता की संज्ञा देते हैं, यथा- राम की माँ और लड़की। इस पदबंध के दो अर्थ निकलते हैं–

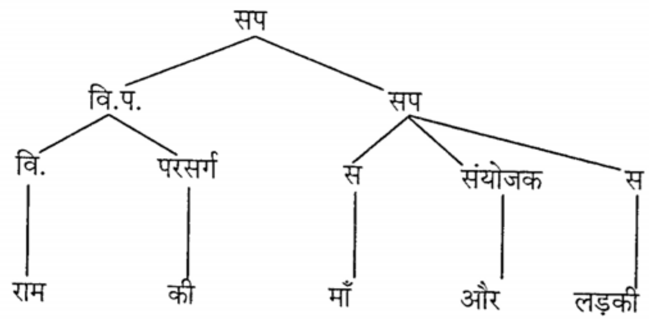
(क) माँ राम की है और लड़की भी राम की है।

(ख) माँ राम की है किंतु लड़की कोई अन्य है।

इनको दो आरेख द्वारा स्पष्ट करना आवश्यक है।



आरेख-23



आरेख-24

स्पष्ट है कि संरचनात्मक संदिग्धार्थकता की समस्या का समाधान किसी लघु प्रयत्न द्वारा संभव नहीं है इनका वर्णन व्याकरण को जटिल बनाता है।

(iv) भाषा में समस्त स्तरण द्विआधारी नहीं होता है। अंग्रेजी की प्रकट सहायक क्रियाओं के संदर्भ में यह कहना अधिक उचित है कि ये वाक्य सप + सक्रि + क्रिप द्वारा निर्मित हुआ है वरन् इसके कि सक्रि, क्रिप का एक घटक है।

(v) पुनरावर्ती प्रक्रिया (recursive process) भाषाओं में प्राप्त सर्वाधिक उत्पादक प्रक्रियाओं में से एक हैं। पदबंध संरचना व्याकरण इस प्रक्रिया का विवरण देने में असमर्थ होता है।

(vi) पदबंध संरचना नियम शैलीगत विकल्पनों की व्याख्या करने में सक्षम नहीं है। हिंदी के बहुत से क्रिया विशेषण, वाक्य में भिन्न-भिन्न स्थितियों में प्रयुक्त हो सकते हैं।

वह ज्यादातर यहाँ आती है।

ज्यादातर वह यहाँ आती है।

वह यहाँ ज्यादातर आती है।

(vii) भाषाओं में वाक्यान्तर्गत अनेक लिंग, वचन, काल, संबंधी आश्रयताएँ कार्यरत रहती हैं जिनकी चर्चा नियमों में करनी आवश्यक होती है, यथा—

अच्छा लड़का जाता है;	अच्छे लड़के जाते हैं,
अच्छी लड़की जाती है;	अच्छी लड़कियाँ जाती हैं।

किंतु इन समस्त आश्रयताओं का विवरण देने पर पदबंध संरचना नियम अत्यंत जटिल हो जायेंगे। अतः इन सीमाओं के रहते पदबंध संरचना व्याकरण विभिन्न प्रकार के जटिल वाक्यों के समस्त वाक्यीय संबंधों एवं प्रकार्यों को पूर्णत वर्णित करने में समर्थ नहीं हैं।

6.5 रूपांतरण नियम[11] (transformational rules)

वे नियम जो पदबंध संरचना नियम द्वारा व्युत्पादित मूल वाक्यों पर लागू होकर योजन, लोप, प्रतिस्थापन अथवा क्रम भेद आदि प्रक्रियाओं द्वारा अन्य प्रकार के वाक्यों का प्रजनन करते हैं, रूपांतरण नियम कहलाते हैं। इस प्रकार मूलवाक्य से प्रश्नवाचक, निषेधात्मक, कर्मवाच्य आदि के व्युत्पादन को विवेचित किया जाता है। पदबंध संरचना नियम द्वारा किया गया कार्य आसन्न घटक विश्लेषण के काफी निकट था किंतु रूपांतरण नियमों ने व्याकरणिक विश्लेषण को एक नया आयाम दिया तथा भाषा संरचना को अधिक सूक्ष्मता से समझने की नवीन दृष्टि दी। अपनी प्रथम पुस्तक में चॉम्स्की ने रूपांतरण नियम के दो वर्ग प्रतिपादित किए—

(i) जिस रूपांतरण द्वारा किसी एक मूलवाक्य से एक नवीन वाक्य निर्मित होता है वह **एकल रूपांतरण** (singularly) कहलाता है। सामान्य वाक्य से निषेधात्मक वाक्य की रचना इसके द्वारा होती है, यथा—

सप + क्रिप ⟹ सप + निषेधा + क्रिप

(ii) एकाधिक वाक्यों के रूपांतरण द्वारा जब एक वाक्य प्रजनित हो तो उसे **सामान्यीकृत रूपांतरण** (generalized transformation) कहते हैं। संयुक्त एवं मिश्रित वाक्यों का निर्माण इनके द्वारा होता है, यथा--

राम घर गया; श्याम घर गया ⟹ राम और श्याम घर गए।

सप$_1$ + क्रिप, सप$_2$ + क्रिप ⟹ सप$_1$ + और + सप$_2$ = क्रिप

रूपांतरण नियमों को वैकल्पिक (optional) एवं अनिवार्य (obligatory) दो वर्गों में पुनः विभाजित किया जाता है। एकल रूपांतरण प्रायः वैकल्पिक होते हैं। इनका प्रयोग एक प्रकार की वाक्य रचना को दूसरे प्रकार की वाक्य रचना में बदलने के लिए किया जाता है लेकिन इनका प्रयोग अनिवार्य नहीं होता है, जैसे- वाच्य संबंधी रूपांतरण इसी वर्ग में आते हैं—

राम खाना खाता है ⟹ खाना राम द्वारा खाया गया।

सप$_1$ + सप$_2$ + क्रिप ⟹ सप$_2$ + सप$_1$ + क्रिप (भूत)

कतिपय रूपांतरण अनिवार्य होते हैं जिनका प्रयोग वाक्य की सत्ता के लिए आवश्यक होता है, यथा—हिंदी वचन संबंधी रूपांतरण जो संज्ञा एवं क्रिया की अन्विति पर निर्भर करता है। 'लड़का बाजार जाता है' वाक्य में वचन रूपांतरण यह निश्चित करता है कि संज्ञा एक वचन 'लड़का' शब्द के साथ क्रिया 'जाता है' भी एक वचन में ही होगी। स्पष्ट है कि अनिवार्य रूपांतरण वे हैं जो आंतरिक रचना को वाक्य के रूप में लाने के लिए अनिवार्य होते हैं।

पदबंध संरचना नियम और रूपांतरण नियम की प्रकृति में भिन्नता होती है। पुनर्लेख प्रणाली वाले इन नियमों की पृथकता के स्पष्टीकरण के लिए इनका प्रतीकीकरण ⟹इस चिह्न द्वारा किया जाता है। इन नियमों के बीच प्राप्त तार्किक अंतर निम्नलिखित हैं—

(i) पदबंध संरचना नियम भाषा के मूल वाक्यों का प्रजनन करते हैं जबकि रूपांतरण नियम इन प्रजनित वाक्यों का रूपांतरण कर नवीन वाक्य बनाते हैं।

(ii) पदबंध संरचना नियमों को व्युत्पत्यात्मक इतिहास की आवश्यकता नहीं होती है। वे लगभग स्वतंत्र होते हैं जबकि रूपांतरण नियम को इसकी आवश्यकता होती है उनका प्रयोग पदबंध संरचना नियम के निर्गम पर किया जाता है अतः वे आश्रित एवं पूरक कहे जा सकते हैं।

(iii) पदबंध संरचना नियम एक अविस्तारित आसन्धि (node) पर एक-एक कर अनुप्रयुक्त हो आंतरिक संरचना प्रजनित करते हैं। रूपांतरण नियम संपूर्ण शृंखला पर (अंतस्तलीय संरचना) लागू हो बहिस्तलीय संरचना व्युत्पादित करते हैं।

(iv) पदबंध संरचना नियम एक वाक्य के निर्मायक घटकों के उपवर्गों के मध्य संबंधों की व्याख्या करते हैं। जबकि रूपांतरण नियम एक वाक्य तथा अन्य वाक्यों के मध्य के वाक्यीय संबंधों की व्याख्या करते हैं।

(v) किसी भाषा विशेष के पदबंध संरचना नियम कतिपय विकल्पों को छोड़कर सदैव एक ही रूप में पुनर्लिखित होते हैं जबकि रूपांतरण नियम आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न रूप में मिलते हैं।

(vi) ये नियम विस्तार नियम हैं तथा रूपांतरण नियम परिवर्तन या अंतरण नियम है और मूल वाक्य पर लागू होकर बाह्य संरचना प्रस्तुत करते हैं, यथा—

राम पेड़ देखता है $\Rightarrow$ पेड़ राम को दिखता है।

सप$_1$ + सप$_2$ + सकर्मक क्रि + सहायक क्रि $\Rightarrow$ स + सप$_1$ + को + अकर्मक क्रि + सहायक क्रि

6.7 रूपस्वनिमिक नियम (morphophonemic rules)

चॉम्स्की ने अपने आरम्भिक सैद्धांतिक प्रारूप में वाक्यविन्यास एवं स्वनप्रक्रिया के संबंधों के प्रस्तुतीकरण के लिए रूपस्वनिमिक प्रक्रिया का निरूपण किया। पदबंध संरचना से उपलब्ध वाक्य पर रूपांतरण नियम आरोपित करने के उपरांत प्राप्त वाक्य के रूपिमों को भाषाविशेष में स्वनिमिक रूप देने वाले नियम रूपस्वनिमिक नियम कहलाते हैं, यथा- अंग्रेजी में प्रत्यय रूपांतरण द्वारा स + बहुवचन को स +/s/ के रूप में लिखा जा सकता है परन्तु -s का उच्चारण cats में [s] होगा तथा dogs में [z] यह निर्धारण रूपस्वनिमिक नियम करते हैं।

6.7.1 अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना (deep and surface structure)

यह व्याकरण भाषा के वाक्यों की अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना की परिकल्पना करता है। किसी भाषा के मूल वाक्य अंतस्तलीय संरचना का निर्देश करते हैं।[12] यह भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था का आंतरिक स्तर है जो वाक्य को व्याख्यायित करने वाले समस्त तथ्यों का उल्लेख करता है। मूल वाक्य का रूपान्तरित रूप उसकी बहिस्तलीय संरचना है यह वाक्य के वाक्यीय प्रतिरूपण की अंतिम अवस्था होती है जो स्वनप्रक्रियात्मक घटक के लिए निवेश का कार्य करती है। इसका स्वरूप वक्ता द्वारा बोले या सुने गए वाक्य के लगभग अनुरूप होता है। रूपांतरणशील प्रजनक व्याकरण अंतस्तलीय संरचना के आधार पर रूपान्तरित बहिस्तलीय संरचना द्वारा भाषा में प्राप्त संदिग्धार्थकता को स्पष्ट करता है। चॉम्स्की का निम्नलिखित प्रसिद्ध उदाहरण इनके अंतर को स्पष्ट करने में पूर्णत समर्थ है—

Flying planes can be dangerous.

यह वाक्य बहिस्तलीय संरचना पर समान प्रतीत होते हुए भी अंतस्तलीय संरचना में भिन्न होने के कारण दो अलग-अलग अर्थ ज्ञापित करता है।

(अ) उड़ते हुए हवाई जहाज खतरनाक हो सकते हैं।

(आ) हवाई जहाज उड़ाना खतरनाक हो सकता है।

	अंतस्तलीय संरचना	बहिस्तलीय संरचना
प्रथम अर्थ में -	सप → उड़ते हुए हवाई जहाज ⇒	Flying planes
	NP → Planes that fly	
द्वितीय अर्थ में -	सप → हवाई जहाज उड़ाना	
	NP → Some one fly planes ⇒	Flying planes

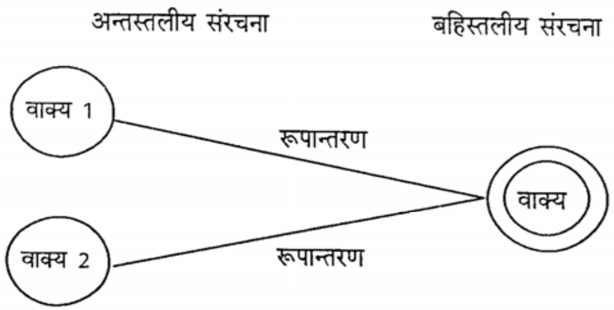
इसी प्रकार वाक्य की अंतस्तलीय संरचना में एकाधिक वाक्य होते हैं जो बहिस्तलीय संरचना में आकर एक प्रधान उपवाक्य तथा अन्य आश्रित उपवाक्य होते हैं। उदाहरणार्थ- पेड़ से गिरने वाला लड़का मर गया (बहिस्तलीय संरचना)। इस वाक्य में अंतस्तलीय संरचना में दो वाक्य हैं–

(i) लड़का मर गया। $\text{सप}_1 + \text{क्रिप}_1$

(ii) लड़का पेड़ से गिरा था। $\text{सप}_1 + \text{सप}_2 + \text{क्रिप}_2$

$\text{सप}_1 + \text{क्रिप}_1; + \text{सप}_1 + \text{सप}_2 + \text{क्रिप}_2 \Rightarrow \text{सप}_2 + \text{क्रिप}_2; + \text{सप}_1 + \text{क्रिप}_1$

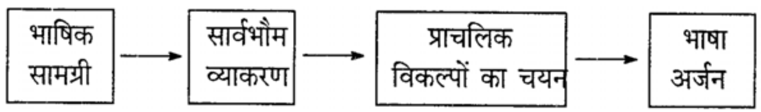
अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना का संबंध निम्न आरेख से स्पष्ट हो जाता है–



आरेख-23

6.8 परिनियम एवं प्राचल (principles and parameter)

वर्ष 1981 में चॉम्स्की की पुस्तक Lecturers on the theory of Government and binding का प्रकाशन हुआ जिसके अंतर्गत उन्होंने परिनियम एवं प्राचल सिद्धांत (principles and parameters theory) की स्थापना की। इस पुस्तक के नाम के कारण यही सिद्धांत आगे चलकर Government and binding नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रस्तुत पुस्तक में चॉम्स्की ने भाषा विशेष एवं रचना विशेष नियमों की तुलना में सामन्यीकृत नियमों को अधिक महत्व दिया। उनके मतानुसार सार्वभौम व्याकरण प्रत्येक मानव को आनुवांशिक विरासत के रूप में प्राप्त होता है यही विशेषता उसे मानवेतर प्राणियों से भिन्न बनाती है। प्रत्येक भाषा की संरचना दूसरी भाषा से अलग होती है, इस कथन में जितनी सत्यता है उतनी ही सत्यता इस तथ्य में भी है कि पारस्परिक भिन्नता होते हुए भी भाषाओं में कुछ आधारिक समानता भी प्राप्त होती है, जैसे—विश्व की सभी भाषाओं में शब्दों को संज्ञा, क्रिया इन दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। ध्यान रहे कि भाषार्जन एवं प्रयोग के लिए भाषा सार्वभौम का ज्ञान भर होना काफी नहीं होता अन्यथा संसार के सभी लोग समान भाषा रूप का प्रयोग करते। मानव शिशु प्राचलिक विकल्पों को तय करते हुए भाषा के जिस व्याकरण को अंतरीकृत करता है उसे मूर्त/ठोस व्याकरण कहते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा संबंधी जटिल बिंदु, प्रायः जो किसी भाषा में कम प्राप्त होते हैं और जिनका अंतरीकरण कुछ कठिन होता है उन्हें परिधीय व्याकरण (peripheral grammar) में रखा जाता है। यूं तो मानव की भाषिक क्षमता जीवन पर्यन्त सक्रिय रहती है तथापि वह मूर्त/ठोस व्याकरण का अंतरीकरण लगभग पाँच-छह वर्ष की अवस्था तक कर लेता है। इस प्रारूप में बताई गई भाषार्जन की प्रक्रिया को निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—



आरेख-26

किसी भाषा का ज्ञान मात्र शब्दों के क्रम पर नहीं वरन् वाक्य में घटित संरचनात्मक संबंधों पर निर्भर करता है। एक वाक्य पदबंधों द्वारा निर्मित होता है और एक पदबंध शब्दों का संरचनात्मक समूह होता है। इस प्रकार कोई भी वाक्य मात्र शब्दों की श्रृंखला नहीं होता बल्कि पदबंधों की विशिष्ट व्यवस्था या संरचना होता है जो संयुक्त हो समग्रता का निर्माण करता है। प्रायः भाषाएँ कर्मवाच्य या प्रश्नवाचक वाक्यों का निर्माण करने के लिए शब्दों का संचलन (movement) करती है; जैसे—अंग्रेजी में—

(i) Ram killed the snake.
(ii) The snake was killed by Ram.
अथवा
(i) He is going.
(ii) Is he going?

इन वाक्यों में किस शब्द का संचलन होगा इसका पता वाक्य की अंतःस्तलीय संरचना के ज्ञान से चलता है। वक्ता को यदि वाक्य संरचना का ज्ञान है तभी वह सही शब्द का संचलन करेगा। स्पष्ट है कि कर्मवाच्य या प्रश्नवाचक वाक्य निर्माण के नियम शब्दों के शृंखलात्मक क्रम पर नहीं वरन् संरचना आश्रित होते हैं। यही नहीं संरचना-आश्रयता अर्थ के स्पष्टीकरण एवं व्याख्या को भी प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ- राम ने कहा कि अध्यापक ने उसको कल बुलाया है। इस वाक्य को सुनने वाला हिंदी वक्ता यह समझता है कि यहाँ प्रयुक्त 'उसको' 'राम' के लिए बोला गया है किसी अन्य के लिए नहीं। 'उसको' का प्रयोग किसके लिए किया गया है यह सूचना वाक्य की संरचना से मिलती है। चॉम्स्की का मानना है कि किसी भाषा के व्याकरण की समस्त ज्ञात रूपात्मक संक्रियाएँ संरचना आश्रित होती हैं और ये भाषा वक्ता के भाषा ज्ञान का अभिन्न अंग होती है। सार्वभौम व्याकरण मानता है कि इन नियमों को सीखा नहीं जा सकता बल्कि ये मानव मस्तिष्क का हिस्सा होते हैं।

विश्व की सभी भाषाएँ यद्यपि संरचना-आश्रयता की दृष्टि से समान होती हैं फिर भी उनमें कई प्रकार के अंतर मिलते हैं। यदि भाषा ज्ञान में केवल अंतःस्तलीय नियम हो तो सभी मानवीय भाषाएँ एक सी हों किंतु वास्तविकता में ऐसा नहीं होता है। एक भाषा की तुलना में दूसरी भाषा/भाषाओं के अभिलक्षणों में बदलाव हो सकता है, जैसे- अंग्रेजी में क्रिया-कर्म का क्रम हिंदी में कर्म-क्रिया होता है। इस बदलाव को पैरामीटर कहते हैं। सभी पदबंधों में इस बात की समानता देखी गई है कि उनमें एक प्रधान (head) होता है और पदबंध के अन्य शब्द पूरक या निर्दिष्ट होते हैं। यह भी समानता मिलती है कि या तो प्रधान शब्द क्रम में आगे रहता है या पीछे रहता है, जैसे- अंग्रेजी में प्रधान आगे रहता है 'from the market' परसर्ग कर्म के आगे है। इसी प्रकार 'I ate fruit' वाक्य में क्रिया कर्म के पहले है जबकि हिंदी में 'मैंने फल खाए' क्रिया कर्म के बाद है। विश्व में दो प्रकार की भाषाएँ मिलती हैं जिनमें या तो पदबंध में 'प्रधान' पहले आता है या बाद में। इस प्रकार के बदलाव को पैरामीटर कहा गया है कि जिनके प्रभावस्वरूव भाषाएँ अलग-अलग प्रतीत होती हैं। वाक्य के वाक्यीय वर्णन को कोशीय इकाइयों के अभिलक्षण से जोड़ने के लिए प्रक्षेपण नियम (projection rules) का प्रयोग किया जाता है। भाषा के शब्दों का क्या अर्थ है? उनका कैसे उच्चारण किया जाए? वाक्य में उनका कहाँ प्रयोग किया जाए आदि जानकारी वक्ता को होती है। प्रक्षेपण नियम प्रत्येक कोशीय इकाई की विशेषता को

वाक्य रचना में समाहित करते हैं।

स्पष्ट है कि अंतस्तलीय संरचना वह अमूर्त रूप है जो वाक्य का अर्थ स्पष्ट करती है। यह वक्ता के मस्तिष्क में स्थित रहती है जबकि बहिस्तलीय संरचना अनेकानेक शब्दों, छोटे बड़े पदबंधों, भिन्न कोटियों एवं विशिष्ट विन्यासात्मक लक्षणों द्वारा प्रतिभासित वाक्य का भौतिक एवं वास्तविक रूप है। अस्पष्ट, श्लिष्ट और समानार्थक वाक्यों के स्पष्टीकरण के लिए अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना की संकल्पना अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है।

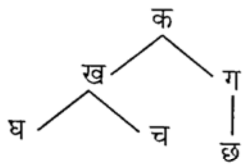
संक्षेप में, प्रजनक एवं रूपांतरणशील व्याकरण का उद्देश्य एवं प्रकार्य है- भाषिक दक्षता एवं भाषा प्रयोग को पृथक् करने की सामर्थ्य। किसी भाषा के मातृभाषाभाषी के वास्तविक प्रयोग में भाषाविद् की रुचि नहीं होती वरन् वह यह ज्ञात करना चाहता है कि वह क्या बोल सकता है, उनका भाषा ज्ञान एवं क्षमता क्या है? अतः भाषाविद् के अध्ययन का क्षेत्र किसी परिस्थिति में बोला गया भाषा रूप न होकर बोलने वाले की भाषायी दक्षता है। व्याकरण ऐसा हो जो सीमित साधन द्वारा असीमित वाक्यों को व्युत्पादित कर सके। वाक्यों का संरचनात्मक वर्णन देने में समर्थ होने के साथ-साथ मातृभाषा वक्ता की अंतःप्रज्ञा को समझने में समर्थ हो। यह व्याकरण न तो निर्देशात्मक नियमों का समुच्चय है और न ही सामग्री का संकलित, वर्गीकृत रूप वरन् भाषा का एक सामान्य वैज्ञानिक सिद्धांत है। यह मातृभाषा वक्ता की मातृभाषा प्रयोग एवं अवबोधन की क्षमता है जिसके द्वारा वह व्याकरणिक एवं अव्याकरणिक तथा व्याकरणिक एवं अल्प व्याकरणिक के मध्य भेद स्थापित करता है और भाषा की संदिग्धार्थकता को समझने में समर्थ होता है।

6.8.1 एक्स बार सिद्धांत ($x^1/\bar{X}$ Theory)

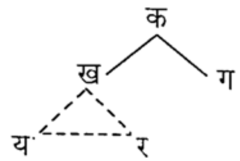
चॉम्स्की द्वारा प्रतिपादित एक्स बार ($\bar{X}$) सिद्धांत की चर्चा के पूर्व पदबंध संरचना के सामान्य अभिलक्षणों की चर्चा आवश्यक है। किसी वाक्य के निर्मायक घटकों के मध्य घटित संरचनात्मक संबंधों को दर्शाने का एक तरीका पदबंध संरचना है। पदबंध वाक्यान्तर्गत कार्यरत शब्द समूह होता है जो एक इकाईवत कार्य करता है तथा जिसका एक विशिष्ट अर्थ होता है, यथा- निम्नांकित क पदबंध ख और ग घटकों द्वारा निर्मित है—



ये निर्मायक घटक पुनः कई इकाइयों द्वारा बनते हैं, यथा- निम्नारेख में ख, घ च से निर्मित हुआ है और ग छ से—



स्पष्ट है कि प्रत्येक वाक्य की पदबंध संरचना में एक सौपानिक क्रम होता है और प्रत्येक घटक पुनः अन्य घटकों से निर्मित होता है। अंत में अविस्तारित इकाई प्राप्त होती है। कोई घटक किन इकाइयों से बना है इस संबंध को पुनर्लेख नियम द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है, जैसे- क → ख ग। वृक्षारेख में जो इकाई किसी के ऊपर आती है (किंतु भिन्न शाखा में नहीं होती) वह नीचे वाली इकाई को नियंत्रित/शासित करती है। उपर्युक्त द्वितीय वृक्षारेख में क सभी को नियंत्रित करता है जबकि ख घ च को तथा ग सिर्फ छ को नियंत्रित कर रहा है। यहाँ घ और च भगिनी कहलाती हैं। जब किसी पदबंध की आंतरिक संरचना को व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है तो वृक्ष के उस भाग को त्रिकोण द्वारा दर्शाया जाता है, यथा—



यहाँ वृक्षारेख क के वर्णन के लिए बनाया गया जिसके लिए ख की आंतरिक संरचना महत्वपूर्ण नहीं है अतः उसे त्रिकोण से दर्शाया गया है।

किसी वाक्य में संज्ञा (नामिक), क्रिया, विशेषण एवं परसर्ग पदबंध हो सकते हैं। एक्स बार सिद्धांत इस तथ्य पर बल देता है कि सभी पदबंध अंतःकेंद्रिक होते हैं और प्रत्येक पदबंध में एक शीर्ष/प्रधान (head) और अन्य घटक होते हैं, पदबंध का नामकरण शीर्ष के आधार पर किया जाता है यह पूरे पदबंध का अर्थ या गुण निश्चित करता है, जैसे- 'कल का दूध' संज्ञा पदबंध में 'दूध' शीर्ष है और 'फट गया' क्रिया पदबंध में 'फट' शीर्ष है। एक्स बार सिद्धांत की एक अपरिहार्य अनिवार्यता है कि पदबंध का शीर्ष उस ही विशिष्ट कोटि का होता है जिस वर्ग का पदबंध है। जैसे ऊपर दिए गए उदाहरण में संज्ञा पदबंध का शीर्ष संज्ञा और क्रिया पदबंध का शीर्ष क्रिया है—

सप → ... स ...

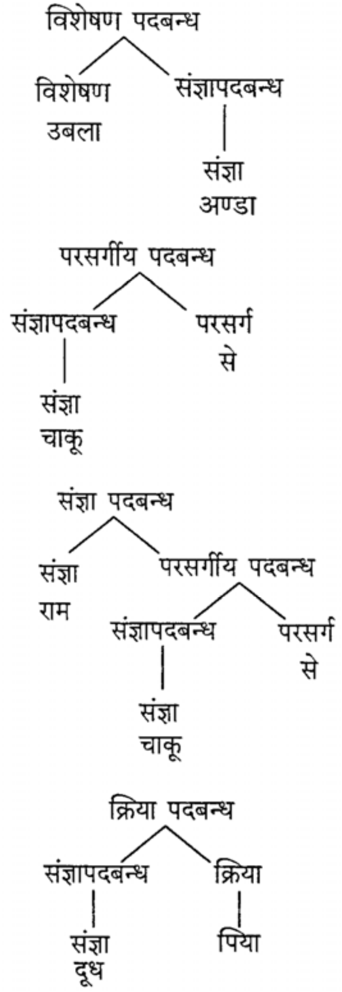
क्रिप → ... क्रि ...

ऐसा कभी नहीं होता कि संज्ञा पदबंध का शीर्ष क्रिया हो अथवा क्रिया पदबंध

का शीर्ष संज्ञा हो। यह एकरूपता सभी पदबंधों में मिलती है। अतः सभी के लिए एक सामान्य नियम दिया जा सकता है—

$x P \rightarrow \ldots x \ldots$

यहाँ x दोनों ही स्थानों पर समान कोटि का होता है। इस प्रकार चारों प्रकार के कोशीय पदबंधों- विप और पप, सप, क्रिप के शीर्ष तदनुरूप ही होते हैं, यथा—

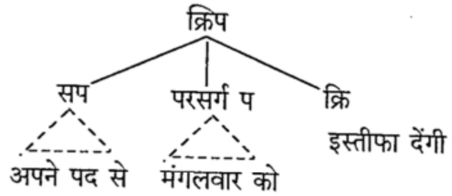


आरेख-27

स्पष्ट है कि प्रत्येक पदबंध का नाम शीर्ष के आधार पर दिया जाता है साथ ही प्रत्येक पदबंध अपने शीर्ष के अभिलक्षणों या गुणों का ही विस्तार होता है।

इस सिद्धांत की यह धारणा है कि मात्र एक्स (x) पदबंध और x कोटि पदबंध संरचना की समस्त बारीकियों को व्याख्यायित करने में समर्थ नहीं होती है अतः इन दोनों के बीच के एक इंटरमीडियेट स्तर की आवश्यकता है। इस बिंदु के स्पष्टीकरण के लिए एक वाक्य लें—

शिक्षामंत्री अपने पद से मंगलवार को इस्तीफा देंगी। इस वाक्य के क्रिया का वृक्षारेख निम्नवत् होगा—



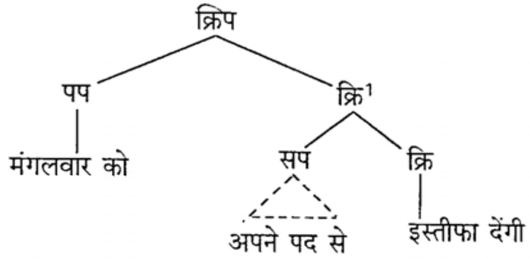
आरेख-28

यद्यपि पारंपरिक दृष्टि से दो शाखाओं में विभाजन होना चाहिए किंतु यहाँ तीन शाखाएँ हैं। ये क्रिया और सप (अपने पद से) तथा क्रिया और पप (मंगलवार को) के मध्य के संबंध में भेद नहीं कर पाती हैं। यहाँ कर्म सप (अपने पद से) 'इस्तीफा' की कोशीय प्रविष्टि से संबंधित है जो सकर्मक क्रिया है और सकर्मक होने के कारण जिसके साथ कर्म का होना जरूरी है। दूसरी तरफ 'इस्तीफा' के प्रक्षेपण के लिए पप (मंगलवार को) एक वैकल्पिक इकाई है अनिवार्य नहीं। इसलिए यदि क्रिप की संरचना पदबंध में आने वाले अनिवार्य और वैकल्पिक घटकों के मध्य अंतर कर अनिवार्य घटकों को एक अलग स्तर पर रखे तो विश्लेषण में सरलता होगी।

निम्न उदाहरण इंटरमीडियेट स्तर की आवश्यकता को और अधिक स्पष्ट करता है-

शिक्षामन्त्री मंगलवार को अपने पद से इस्तीफा देंगी और प्रधानमंत्री भी।

प्रश्न उठता है कि यहाँ 'भी' का प्रतिस्थापन किस इकाई द्वारा किया जाए। इसे क्रिया नहीं कहा जा सकता और न ही इसे संपूर्ण क्रियापदबंध कह सकते हैं। एक्स बार सिद्धांत की मान्यतानुसार यह क्रिप और क्रि के मध्य का घटक प्रतीत होता है। अतः क्रि और क्रिप से भिन्नता स्थापित करने के लिए इसे क्रि ($\bar{V}$)/क्रि^{1} (V^{1}) द्वारा दर्शाया जाता है। इस प्रकार क्रिप में क्रि तथा क्रि^{1} संरचना स्तर मिलते हैं और क्रिप क्रि^{1} से होता हुआ क्रि तक जाता है। अब प्रथम उदाहरण में प्रयुक्त पप को क्रिया से अलग किया जा सकता है। साथ ही कर्म सप का क्रि^{1} से घनिष्ठ संबंध, भगिनी होने के कारण, सरलता से अभिव्यक्त होता है।



आरेख-29

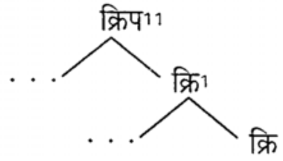
एक्स बार सिद्धांत द्वारा विश्लेषण का यह मार्ग सिर्फ क्रिप के लिए नहीं वरन् सभी प्रकार के पदबंधों के लिए सुझाया गया क्योंकि सभी में इण्टरमीडियेट स्तर होता है। परंपरा से सर्वोच्च स्तर की कोटि पर दो बार चिह्न लगते हैं, जैसे—क्रिप को क्रि^{11} और सप को स^{11} द्वारा दर्शाया जाता है। प्रत्येक दोहरे बार वाले पदबंध में एकल बार शीर्ष कोटि अवश्य होती है, जैसे- क्रिप^{11} में क्रिप^{1} या पप^{11} में पप^{1}। इस प्रकार सामान्य सिद्धांत होगा—

$x^{11} \rightarrow \ldots x^{1} \ldots$

एक दोहरे बार वाला पदबंध उच्चतम पदबंध होता है। एकल बार पदबंध में शून्य बार शीर्ष कोटि होती है इस प्रकार क्रिप^{1} में क्रि और सप^{1} में स होगा और सामान्य सिद्धांत होगा-

$x^{11} \rightarrow \ldots x \ldots$

यहाँ शून्य बार (x°) के स्थान पर x ही लिखा जाता है। प्रत्येक स्तर पर कई स्थान छोड़े जाते हैं जिन्हें संरचना के तत्वों से भरा जाता है, इस प्रकार—



आरेख-30

इस प्रकार वाक्य रचना और शब्द कोश के मध्य का सूत्र बार नोटेशन द्वारा निरंतर बना रहता है और क्रि क्रिप^{1} को निर्मित करता है और वहाँ से क्रिप^{11} निर्मित होता है। इसी प्रकार स सप^{1} को बनाता है और उससे सप^{11}।

इसके पश्चात् पूरक (complement) तथा निर्दिष्ट (specifies) की अवधारणा के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। हिंदी वाक्य 'लड़की ने बाँसुरी बजाई'

में प्रयुक्त 'बजाई' क्रिया क्रिप के कर्म 'बाँसुरी' से संबंधित है। जो यह बता रहा है कि क्या बजाया जा रहा है? चॉम्स्की के मतानुसार प्रत्येक पदबंध में एक शीर्ष तथा शीर्ष के आर्थी अभिलक्षणों से निर्धारित पूरकों का समूह होता है।[13] ये पूरक सदैव अपने में पूर्ण पदबंध होते हैं, जैसे- 'बाँसुरी बजाई' क्रिप में प्रयुक्त बाँसुरी सप, एक पूरक है। एक्स बार संरचना पदबंध में एक शून्य कोटि शीर्ष तथा उसके पूरक के मध्य घटित घनिष्ठ संबंध को दर्शाया जाता है। इस प्रकार पूरक, कोशीय शीर्ष की भगिनी स्थिति में रहते हैं और शीर्ष द्वारा निर्धारित होते हैं। अतः एक सामान्य नियम बनाया जा सकता है—

$x^1 \rightarrow x$ पूरक/अनेक पूरक

अथवा

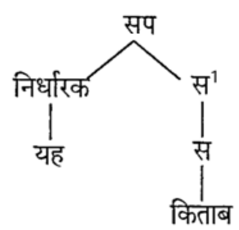
$x^1 \rightarrow$ पूरक/अनेक पूरक x

इस नियम का स्वरूप किसी भाषा में प्राप्त शीर्ष एवं पूरक की सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करता है। जहाँ हिंदी में क्रिप में

(i) 'पूरक क्रि शीर्ष' यह क्रम होता है वहाँ अंग्रेजी में

(ii) 'क्रि शीर्ष पूरक' यह क्रम मिलता है।

शीर्ष एवं पूरक के साथ-साथ पदबंध संरचना में तीसरा तत्व निर्दिष्ट (specifies) कहलाता है। जहाँ पूरक पदबंध में एक्स x के साथ-साथ आते हैं अर्थात् भगिनी स्थिति में मिलते हैं वहाँ निर्दिष्ट x^1 के साथ आते हैं, उदाहरणार्थ- यह किताब सप में आगत 'यह' निर्दिष्ट (SPEC) का उदाहरण है और इसकी संरचना निम्नवत् होगी-



आरेख-31

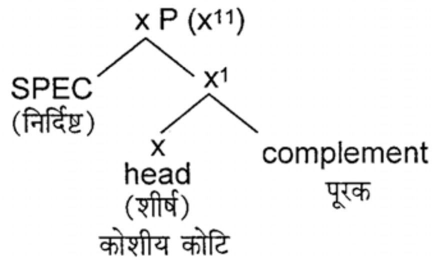
स्पष्ट है कि दो बार वाले पदबंध में शीर्ष x^1 और सम्भावित निर्दिष्ट हो सकते हैं और एक सामान्य नियम होगा-

$x^{11} \rightarrow x^1$ SPEC

अथवा

$x^{11} \rightarrow$ SPEC x^1

पूर्ववत् यहाँ भी भाषा के अनुरूप क्रम भिन्न हो सकता है। सभी एक्स बार नियमों को एक साथ निम्नवत् प्रस्तुत कर सकते हैं—



आरेख-32

स्पष्ट है कि सभी प्रकार पदबंधों की एक सरल cell की भाँति दो स्तरों वाली संरचना होती है- पहली (x^{11}) जिसमें शीर्ष (x^1) तथा संभावित निर्दिष्ट होते हैं। दूसरी (x^1) जिसमें शीर्ष (x) और संभावित पूरक होते हैं। निर्दिष्ट व पूरक स्वयं वाक्यीय कोटियाँ नहीं होते वरन् उस स्थान के प्रकार्यात्मक लेबल हैं जिन्हें सप, क्रिप आदि वाक्यीय कोटियों से भरा जा सकता है।

6.8.2 अधिकार एवं अनुबन्धन (government and binding)

चॉम्स्की के सिद्धांत का उद्देश्य मानवीय मस्तिष्क की अन्यतम उपलब्धि के रूप में भाषा का वर्णन करना तथा मानव किस प्रकार इसको अर्जित करता है, इस तथ्य की व्याख्या करना है। इनके मतानुसार सार्वभौम व्याकरण- 'सिद्धांतों, स्थितियों एवं नियमों की ऐसी व्यवस्था है जो समस्त मानवीय भाषाओं का अभिलक्षण होता है और जिसे मानवीय भाषा का सार कहा जा सकता है। भाषायी ज्ञान के कुछ अंश सभी भाषाओं में एक से होते हैं अर्थात् सार्वभौम व्याकरण सभी भाषाओं के वक्ता में समान रूप से मिलता है। अस्सी व नब्बे के दशक में विविध लेखों के माध्यम से चॉम्स्की ने विभिन्न बिंदुओं पर अपने विचार प्रस्तुत किए। 'एक्स्टैण्डेड स्टैण्डर्ड थ्योरी' के बाद इसे अधिकार एवं अनुबंधन नाम दिया गया। पिछले कुछ वर्षों से यह, परिनियम और पैरामीटर नाम से अधिक प्रचलित है।

अधिकारिक (governor) एवं उसके द्वारा नियंत्रित तत्व के मध्य प्राप्त वाक्यीय संबंध अधिकार कहलाते हैं। प्रायः भाषाओं में संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि पदबंधों के प्रधान/शीर्ष, अधिकारक की भूमिका अदा करते हैं। अनुबन्धन सिद्धांत की चर्चा का विषय वाक्य में आगत अन्वादेशक और सर्वनाम का उनके पूर्वपद से संबंध होता है। चॉम्स्की ने तीन अनुबन्धन नियमों का उल्लेख किया है—

(i) कोई भी अन्वादेशक (anaphors) अपने स्थानीय व्यवहार क्षेत्र से बँधा होता है। तात्पर्य यह है कि अन्वादेशक का पूर्वपद उसी वाक्य/उपवाक्य में आता है।

(ii) कोई भी सर्वनाम अपने स्थानीय व्यवहार क्षेत्र में स्वतंत्र होताा है। संबंधवाचक सर्वनाम के अतिरिक्त सभी सर्वनामों के पूर्वपद वाक्य/उपवाक्य के बाहर हो भी सकते हैं और नहीं भी।

(iii) समुद्दिष्ट अभिव्यक्तियों (जैसे-संज्ञाएँ) स्वतंत्र होती हैं।

निम्नांकित वाक्यों की सहायता से इन नियमों का स्पष्टीकरण किया जा रहा है-

(अ) 'राम बता रहा था कि श्याम ने अपने कपड़े खो दिए'। हिंदी के सभी वक्ता जानते हैं कि यहाँ 'अपने' अन्वादेशक 'श्याम' के लिए ही आया है और अन्वादेशक 'अपने' का पूर्वपद 'श्याम' उसी उपवाक्य में है।

(आ) 'राम ने बताया कि श्याम ने से मारा'। इस वाक्य में आगत 'उसे' सर्वनाम श्याम के लिए भी हो सकता है और किसी अन्य व्यक्ति के लिए भी। स्पष्ट है कि सर्वनाम 'उसे' अपने स्थानीय व्यवहार क्षेत्र से बंधा नहीं, स्वतंत्र है। साथ ही नियम तीन के अनुसार इन वाक्यों में आगत समुद्दिष्ट अभिव्यक्ति 'राम' स्वतंत्र है। यद्यपि विश्व भाषाएँ अन्वादेशक और सर्वनाम रूप में प्रयुक्त व्यवहृत कोशीय मदों में भिन्न हो सकती है किंतु सभी भाषाएँ अनुबन्धन स्वीकार करती हैं। इन तीन अनुबन्धन नियमों के आधार पर विश्व भाषाओं का वर्गीकरण संभव है। 1981 में प्रतिपादित इस सिद्धांत को चॉम्स्की ने विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया। अधिकार एवं अनुबन्धन सिद्धांत में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्दों को निम्नवत परिभाषित किया जा सकता है-

(i) प्रधान (head) किसी पदबंध का केंद्र या मुख्य शब्द जो समस्त अर्थ/गुण को धारण करता है, जैसे- निम्न पदबंधों के रेखांकित भाग : 'नीली फ्राक वाली लड़की'; 'राष्ट्रपतिभवन'।

(ii) विभक्तिपरक (INFL) 1970 के बाद प्रतिपादित की गई व्याकरणिक कोटि जिसमें सहायक अवयव काल, विभक्ति, रूपिम पदबंध के प्रधान की तरह होता है। इससे बने पदबंध विप (विभक्तिपरक पदबंध) कहलाते हैं।

(iii) संचलन (movement) एक प्रकार का रूपांतरण नियम जिसमें एक पदबंध या पद अपने नियत स्थान से स्थानान्तरित हो दूसरे स्थान में जाता है। यह स्थानान्तरण गहन संरचना में किया जाता है। जिस स्थान से स्थानान्तरण होता है वह स्थान ट्रेस (trace) कहलाता है, जैसे- हिंदी के वाक्य—'जल्दी ट्रेन छूट गई' की गहन संरचना ''ट्रेन जल्दी छूट गई'' में संचलन लागू करने पर

''जल्दी ट्रेन[ट्रेस] छूट गई।'

संचलन

(iv) डी-संरचना (D-structure) - चॉम्स्की द्वारा प्रतिपादित अधिकार एवं अनुबंधन सिद्धांत में जिस 'गहन संरचना/अंतःस्तलीय संरचना' की चर्चा की गई है वह उनके द्वारा 1957 एवं 1965 में प्रतिपादित अवधारणा से भिन्न है। इस भिन्नता को ध्यान में रखकर गहन संरचना को 1981 के सिद्धांत में डी-संरचना कहा गया है। यह काल्पनिक संरचना है जो वृक्षरेख में दर्शायी जाती है। इसमें वाक्य के शब्द पदबंध के शब्दों की भूमिका के आधार पर रखे जाते हैं।

(v) एस-संरचना (S-structure) - डी-संरचना पर संचलन रूपांतरण नियम लागू करने के बाद वाक्य की जो संरचना प्राप्त होती है उसे एस-संरचना कहते हैं। इसमें ट्रेस का स्थान उन सूचनाओं से भरा रहता है जो वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक हैं।

6.8.3 थीटा सिद्धांत (Q Theory)

यह सिद्धांत वाक्यीय घटकों को कथ्यगत भूमिकाएँ नियत करता है। थीमैटिक (Thematic) शब्द के संक्षिप्त रूप ग्रीक वर्ण थीटा के आधार पर चॉमूस्की ने इसे थीटा सिद्धांत नाम दिया है। शुरू के अध्ययनों में जिन्हें आर्थी भूमिकाएँ- अभिकर्ता, कथ्य, हितग्राही कहा गया, परवर्ती काल में चॉम्स्की ने इन्हें ही कथ्यगत भूमिका कहते हैं। यह माना जाता है कि ये आर्थी भूमिकाएँ कोशीय इकाइयों के पूरकों (complements) के गुण के रूप में नियत की जाती हैं; उदाहरणार्थ- हिंदी शब्द 'रखना' के सप पूरक को कथ्य (theme) की भूमिका दी जाएगी जबकि परसर्गीय पदबंध के पूरक को स्थान की भूमिका। इस प्रकार 'रखना' क्रिया वाले वाक्य के कर्ता सप को अभिकर्ता की भूमिका दी जाएगी। चॉम्स्की का मानना है कि जहाँ ज्यादातर क्रियाएँ वाक्य के कर्ता स्थान (subject position) को थीटा चिह्नित करती हैं वहीं कुछ ऐसी भी क्रियाएँ हैं जो चिह्नित नहीं करती हैं। इस सिद्धांत का प्रमुख नियम थीटा निकष (theta criterion) कहलाता है। किसी युक्ति (argument) को संकेतित करने वाले घटक को एक ही कथ्य भूमिका दी जाती है तथा एक कथ्य भूमिका किसी एक युक्ति को संकेतित करने वाले घटक के लिए ही निश्चित होती है। स्पष्ट है कि किसी भी वाक्य में दो (समानाधिकृत रचना के अतिरिक्त) अभिकर्ता या कथ्य नहीं हो सकते और दो अभिकर्ता या कथ्य वाले वाक्य अव्याकरणिक होते हैं। किसी वाक्य में क्रिया ही हमें यह सूचना देती है कि कौन-कौन संघटक होने चाहिए, जैसे- मारना क्रिया के लिए दो संघटकों का होना अनिवार्य है- मारने वाला और मरने वाला। ध्यान दें इन दोनों का क्रिया से भिन्न-भिन्न संबंध है। इन संबंधों को क्रिया के व्यापार को सम्पन्न कराने में योग देने वाली भूमिकाएँ कहा जा सकता है। क्रिया के साथ संबंधित संज्ञापदबंध की कारकीय भूमिकाएँ ही थीटा भूमिका या कारक कहलाती हैं।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. 'Grammar'... describes what people do when they speak their language; it is not something that has to be found in books, written down or learnt by heart.- Palmer, F.
2. A prescriptive grammar aims to codify, in the form of rules, the usage of speakers of the standard variety of the language. - Allerton, D.J.
3. Descriptive linguistics, ...is concerned with the description and analysis of the ways in which a language operates and is used by a given set of speakers at a given period. - Robins, R.H.
4. वर्णनात्मक व्याकरण के तीन वर्गों की चर्चा एम.ए. के हैलिडे के लेख 'Categories of the Theory of Grammar' में की गई है।
5. चॉम्स्की के सिद्धांत की प्रशंसा करते हुए आर.बी. लीस लिखते हैं-
   ... one of the first serious attempts on the part of a linguist to construct with in the tradition of scientific theory-construction of a comprehensive theory of language... Review of Chomsky (1957a), Language, vol.33, pp. 375-408
6. Syntactic Structures में प्रतिपादित प्रारूप में 'Kernel sentence' का प्रयोग किया गया किंतु 1960 के लगभग कई कारणों से इसे त्याग दिया गया। कुछ विद्वान बीज वाक्य को ही मूलाधार अन्त्य माला समझने की भूल करते हैं।
7. हरमन पैरटे के प्रश्न का उत्तर देते हुए चॉम्स्की कहते हैं-
   A generative grammar is nothing but a system of rules that specifies in a perfectly explicit way a set of linguistic objects, in general, infinite. Discussing Language, P. 27.
8. A grammar is descriptively adequate if it strongly generates the correct set of structural descriptions. N. Chomsky, Aspects of the Theory of Syntax, P. 60.
9. (i) a distinction must be made between what a speaker implicitly knows about his language (his competence) and what he actually does when speaking. (his performance).
   Botha, R.P. The Function of the Lexion in Transformational Generative Grammar, P. 19.
   (ii) भाषिक योग्यता एवं भाषिक प्रयोग संबंधित स्पष्ट विवरण सेस्यूर, एडवर्ड सपीर (1921), स्टेनली न्यूमैन (1941) के अध्ययनों में मिलता है।
10. 1962 से पूर्व चॉम्स्की ने Universal शब्द का प्रयोग नहीं किया। अपनी प्रथम पुस्तक में वे 'Condition of generality' का उल्लेख करते हैं।
11. Both Phonological and semantic components are therefore purely interpretative, each utilises information provided by the syntactic component... N. Chomsky, Aspects of the Theory of Syntax, P.16.
12. PS rules are not powerful enough to provide an adequate description of syntax... and that the deficiencies notes can be over

come by introducing rules of a new kind called transfomations ... Huddleston, R. An Introduction to English Transformational Syntax, P. 47.

13. उन्नीसवीं शताब्दी में हुम्बोल्ट नामक विद्वान ने innere form शब्द का प्रयोग लगभग (deep structure) अंतस्तलीय संरचना से मिलते हुए अर्थ में किया।

14. चॉम्स्की के मतानुसार, 'phrases typically consist of a head..., and an array of complements determined by the lexical properties of the head.' Knowkdge of language (1986) P. 81.

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

7.1 भाषा परिवर्तन

भाषा एक पारंपरिक उपादान है जिसका अर्जन समाज में निवसित मानव अनुकरण द्‌वारा करता है तथा जो समाज में मानव की समस्त अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। निश्चित है कि प्रत्येक भाषा एक विशिष्ट समाज से आबद्‌ध रहती है और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होने के कारण उसका स्वरूप सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप होता है और समाज में होने वाले परिवर्तन भाषा को प्रभावित करते हैं। कोई भी समाज एकांत में विकसित नहीं होता उस पर चतुर्दिक व्याप्त अनेक तत्वों-राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक, आर्थिक का प्रभाव पड़ता है। ये सभी तत्व भाषा को प्रभावित कर उसके स्वरूप को परिवर्तित करते हैं। किसी भाषिक समुदाय का किसी अन्य संस्कृति से सम्पर्क होने पर समाज में बोली जा रही भाषा पर प्रभाव पड़ता है और वह तदनुरूप परिवर्तित होती है। सभ्यता के प्रसार के साथ भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है और अनेकानेक कारणों से भाषा कई रूपों में विखण्डित हो जाती है। कभी-कभी बोलने वालों की संख्या कम होने पर क्षेत्र संकुचन से भाषा संकुचित होते-होते मृत हो जाती है अर्थात् किसी भाषिक समुदाय में मातृ भाषा के रूप में उसका प्रयोग नहीं होता है या फिर किसी अन्य भाषा में विलीन हो अपना प्राचीन रूप खो बैठती है। ये सभी कारक भाषा को बाहर से प्रभावित कर परिवर्तन के कारण बनते हैं। किंतु ऐसा नहीं है कि बाह्‌य प्रभाव के अभाव में भाषा स्थिर हो जाए उसके स्वरूप में कोई परिवर्तन न हो और उसमें इतिहास न प्राप्त हो। वास्तव में भाषाएँ अपनी आंतरिक शक्ति के कारण भी समय के साथ धीरे-धीरे स्वतः परिवर्तित होती हैं। कोई भी व्यक्ति सुनकर अनुकरण द्‌वारा भाषा अर्जित करता है और इस प्रक्रिया में कहीं कोई त्रुटि या सूक्ष्म परिवर्तन भाषा के स्वरूप को परिवर्तित करने के लिए काफी होता है। इस प्रकार अपूर्ण श्रवण, अपूर्ण अनुकरण, वागेन्द्रियों में दोष, वक्ता अथवा श्रोता की लापरवाही आदि भाषा को प्रभावित करते हैं। ध्यान रहे कि इस प्रकार के नवप्रवर्तन क्षणिक होते हैं तथा भाषा-संरचना पर इनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है किंतु कभी-कभी इस प्रकार के परिवर्तनों के अनुगमनकर्ताओं की संख्या बढ़ती जाती है और उनका प्रसार हो जाता है। भाषा चाहे बाह्‌य कारणों से परिवर्तित हो या आंतरिक कारणों से यह निश्चित है कि

भाषा में घटित इस परिवर्तन को शीघ्र ज्ञात नहीं किया जा सकता है। परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत मन्द गति से चलती है अतः भाषा-प्रयोग के समय वक्ता उसका अनुभव नहीं करता है और परिवर्तन का ज्ञान पूंजीभूत होने पर ही होता है अगर ऐसा न हो तो दस, पन्द्रह वर्ष उपरांत विदेश से लौटने पर वक्ता अपने स्वजनों से बातचीत करने में असमर्थ हो। समय के साथ भाषा में घटित इन परिवर्तनों का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है।[1] भाषा में घटित परिवर्तन दो स्तरों पर दृष्टिगत होते हैं- समय के साथ हुए परिवर्तन तथा भाषा में प्राप्त स्थानगत वैविध्य, यथा- बोली, उपबोली आदि। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का संबंध प्रथम प्रकार के परिवर्तन से है।

उन्नीसवीं शताब्दी में भाषाविदों ने भाषाओं के ऐतिहासिक विकासक्रम संबंधी सूक्ष्मताओं के अन्वेषण तथा भाषा परिवर्तन की प्रक्रिया को उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया, इन अध्ययनों के बीज पूर्ववर्ती कार्यों में प्राप्त होते हैं। 1786 में, कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर आसीन, **सर विलियम जोन्स** ने, दीर्घकाल तक संस्कृत भाषा के पठन-पाठन के उपरांत, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के स्थापना दिवस के अवसर पर एक महत्वपूर्ण उद्घोषणा द्वारा यह प्रतिपादित किया कि संस्कृत, ग्रीक, अवेस्ता, लैटिन आदि भाषाओं में प्राप्त धातु व प्रत्यय संबंधी समानता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि ये भाषाएँ किसी समान मूल स्रोत से उत्पन्न हुई हैं, जो आज लुप्त हो चुका है।[2] सर जोन्स की यह उद्घोषणा उस समय की एक महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी खोज थी। एक विस्तृत भूभाग में प्रचलित भाषाओं के संदर्भ में समान मूल स्रोत की चर्चा उस काल में अकल्पनीय थी चूँकि उपलब्ध भाषिक सामग्री के आधार पर इस मूल रूप का वर्णन संभव नहीं था अतः उसकी वंशज भाषाओं में प्राप्त सदृश अभिलक्षणों के आधार पर उसकी परिकल्पना की गई। इस प्रकार संस्कृत के परिचय ने भाषा वैज्ञानिक अध्ययनों को नवीन मोड़ दिया तथा अनेक भाषाविद् भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में प्रवृत्त हुए। भाषाओं के मध्य प्राप्त ध्वन्यात्मक एवं आर्थी अनुरूपता के आधार पर प्राचीन रूप को पुनर्निर्मित करने का भी प्रयास किया गया। विद्वानों ने तुलनात्मक पद्धति के आधार पर भाषाओं का ऐतिहासिक विकासक्रम प्रस्तुत किया जिससे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ा कि भाषा परिवर्तन सार्वभौमिक, निरंतर तथा किसी सीमा तक नियमित होता है। पारंपरिक व्याकरण की निर्देशात्मक मनोदृष्टि वाले विद्वानों के लिए साहित्यिक भाषाओं का विशेष महत्व था अतः भाषा-परिवर्तन संबंधी यह सार्वभौमिकता एवं निरंतरता उनके लिए दुरुह तथा दुर्बोध थी जबकि निश्चय ही समस्त जीवित भाषाएँ, सभी कालों में, इस प्रक्रिया से अवश्य गुजरती हैं।

परिवर्तन की इस धारा से भाषा का कोई भी स्तर अछूता नहीं रहता। अतः भाषा-परिवर्तन के सम्यक् ज्ञान के लिए इसे स्तरों में विभाजित कर निम्नलिखित वर्गों के आधार पर अध्ययन अधिक उचित होगा—

1. ध्वनि परिवर्तन
2. व्याकरणिक एवं कोशीय परिवर्तन
3. अर्थ परिवर्तन

7.1.1 ध्वनि परिवर्तन

प्रत्येक भाषा में शब्दांतर्गत स्वनिम एवं स्वनिम समूह का एक निश्चित परिवेश होता है। समय के साथ अनेक आंतरिक एवं बाह्य कारणों से इनके परिवेश में परिवर्तन आता है, इसे ध्वनि-परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। प्रायः एक ध्वनि के साधारण से परिवर्तन में भी एकाधिक कारण कार्य करते हैं। ध्वनि-परिवर्तन तीन प्रकार के होते हैं—

(i)	आश्रित ध्वनि परिवर्तन	(conditioned)
(ii)	अनाश्रित ध्वनि परिवर्तन	(unconditioned)
(iii)	कदाचनिक ध्वनि परिवर्तन	(sporadic)

वह ध्वनि-परिवर्तन जो निश्चित परिस्थिति में ही घटित होते हैं आश्रित/स्थानाश्रित कहलाते हैं, यथा—महाराष्ट्री प्राकृत में संस्कृत अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन स्वर मध्यगत स्थिति में लुप्त हो जाते हैं—

संस्कृत	महाराष्ट्री प्राकृत
मुकुलम्	मउलो
विपुलम्	विउल
जीवतु	जिअउ

ऐसे ध्वनि-परिवर्तन जो किसी ध्वनि के समस्त प्रयोग परिवेश को प्रभावित करते हैं अनाश्रित कहलाते हैं। संस्कृत 'न' व्यंजन महाराष्ट्री प्राकृत में सदैव 'ण' में परिवर्तित होता है, यथा—

संस्कृत	महाराष्ट्री प्राकृत
नगर	णअर
रत्न	रअण
स्नान	सिणाण

आश्रित परिवर्तन स्वनप्रक्रियात्मक परिवेश पर निर्भर नहीं करता वरन् किसी एक स्वनिम के समस्त सहस्वनों को प्रभावित करता है। इसका सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरण दो स्वनिमों का एक में **विलयन** (merger) कहा जा सकता है। बोलचाल की ग्राम्य लैटिन में शब्द के आरंभ में आने वाला /k/ फ्रेंच में /s/ अथवा / / में परिवर्तित होता है। /k/ की परवर्ती ध्वनि की प्रकृति इस तथ्य को निश्चित करती है कि कब वह किसमें परिवर्तित होगा अथवा नहीं परिवर्तित होगा, उदाहरणार्थ—

लैटिन	फ्रेंच	
[1]/kosta/	/kot/	(to sing)

[1]/ka : rus/	/ʃετ/	(dear)
[1]/ke : ra/	/sir/	(wax)

पश्चस्वर तथा व्यंजन का पूर्ववर्ती /k/ फ्रेंच में [k] रूप में ही रहता है तथा /a/ से पहले होने पर [ ] तथा अन्य अग्र स्वर के पूर्ववर्ती होने पर /k/ का विकास [ ] में होता है। स्वनप्रक्रियात्मक दृष्टि से इस प्रकार के परिवर्तन को स्वनिमिक **विखंडन** (split) अर्थात् स्वनिम से सहस्वन का विखंडीकरण, की संज्ञा देते हैं। आश्रित एवं कदाचनिक परिवर्तन के मध्य विभाजक रेखा सरलता से नहीं खींची जा सकती है क्योंकि दोनों एक दूसरे में समाहित रहते हैं। प्रमुख **कदाचनिक परिवर्तन** निम्नलिखित हैं—

(अ) लोप (elision)—जब वक्ता निर्देश का पूर्ण पालन नहीं करता है तो समय के तालमेल में कमी के कारण स्वन-लोप की स्थिति होती है। लोप स्वर एवं व्यंजन किसी भी ध्वनि का हो सकता है तथा स्थान के आधार पर शब्द के आदि, मध्य या अंत कहीं भी घटित होता है, यथा- हिंदी अनाज > नाज; अगर > गर (आदि स्वर लोप) कपटी > कप्टी (मध्य स्वर लोप)। हिंदी में प्रायः सभी शब्दों में अंतिम ह्रस्व 'अ' का लोप हो जाता है। स्फूर्ति > फुरती; स्नेह > नेह (आदि व्यंजन लोप); दुग्ध > दूध (मध्य व्यंजन लोप); संस्कृत पश्चात् अपभ्रंश पश्च; यावत् > जाव (अन्त्य व्यंजन लोप)।

कभी-कभी दो शब्दों के मध्य समान स्वर अथवा व्यंजन का प्रयोग होने पर एक का लोप हो जाता है। इसे **समध्वनि लोप** (haplology) की संज्ञा देते हैं, यथा- प्राचीन अंग्रेजी में Engla Land प्रचलित था आधुनिक समय में England नाम प्रचलित है। हिंदी में खरीददार > खरीदार प्रयोग होता है।

(आ) समीकरण (assimilation)—जब किसी ध्वनि-उच्चारण का निर्देश, उसके निष्पादन या कार्यान्वन का समय उचित नहीं होने के कारण ध्वनि समय के पहले या बाद में उच्चरित हो तो ऐसी स्थिति में एक स्वनिम के गुण दूसरे में समाहित हो जाते हैं इसे समीकरण की संज्ञा दी जाती है। समीकरण अग्रगामी या पश्चगामी दो प्रकार का होता है। जब पूर्ववर्ती ध्वनि पश्चवर्ती ध्वनि से प्रभावित हो तो **अग्रगामी** (progressive) समीकरण की संज्ञा दी जाती है, यथा- चक्र > चक्का; पत्र > पत्ता। जब परवर्ती ध्वनि, पूर्ववर्ती ध्वनि के समान हो जाए तो **पश्चगामी समीकरण** (regressive) की संज्ञा दी जाती है, यथा- अंगुलि > उंगली; अग्नि > आग। दो स्वरों के मध्य आगत अघोष व्यंजन का घोषवत उच्चारण समीकरण का एक बहुउपलब्ध रूप है चूँकि स्वर घोष होते हैं अतः वक्ता स्वर के बाद आने वाले व्यंजन का उच्चारण भी घोषवत करता है, यथा- अमरीकी अंग्रेजी में latter, better, atom शब्दों में /t/ का उच्चारण घोषवत होता है। कभी-कभी पारस्परिक समीकरण के भी उदाहरण मिलते हैं—

सत्य > सच; विद्युत > बिजली; seven > sebm; eleven > elebm

(इ) विषमीकरण (dissimilation)- दो समान निकटस्थ ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई अनुभव करने पर वक्ता किसी एक का परिवर्तन कर देता है। यदि पूर्ववर्ती ध्वनि पृथक होती है तो **अग्रगामी विषमीकरण** की संज्ञा देते हैं और यदि परवर्ती ध्वनि में परिवर्तन आता है तो **पश्चगामी विषमीकरण** कहते हैं, उदाहरणार्थ- कंकण > कंगन; काक > काग; दरिद्र > दलिद्दर; खूबसूरत > खबसूरत।

(ई) विपर्यय (metathesis)- कभी-कभी उच्चारण में वर्णों का क्रम आगे-पीछे हो जाता है अर्थात् स्वनिमों में परस्पर स्थान-परिवर्तन हो जाता है। यदि अंग्रेजी वाक्य 'I saw Sloane' के स्थान पर वक्ता कहे कि 'I slaw Sloane' तो यह समीकरण की स्थिति होगी किंतु यदि 'I slaw Soan' यह प्रयोग किया जाए तो विपर्यय कहलाएगा। अंग्रेजी में /ks/ और /sk/ व्यंजन-गुच्छ प्रायः विपर्यय की स्थिति में मिलते हैं- ask > aks; asterisk > asteriks; desk > deks। स्वर व्यंजन ध्वनि भेद के आधार पर इसके दो प्रकार मिलते हैं, यथा- कुछ > कछु; शकुन > शुगन स्वर विपर्यय के उदाहरण हैं जबकि लखनऊ > नखलऊ; डूबना > बूड़ना व्यंजन विपर्यय के।

उच्चारण में अतिशय शीघ्रता के कारण जब दो निकटवर्ती शब्दों के आद्यांशों का स्थानान्तरण हो जाता है तो इसे **आद्य अक्षर विपर्यय** (Spoonerism) की संज्ञा देते हैं। इसका नामकरण Prof. William. A. Spooner के नाम पर किया गया किंतु इस परिवर्तन का भाषा पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है, यथा-

'Is the dean busy'? वाक्य को वक्ता कह सकता है- Is the bean dizzy?

अथवा

'Let me show you to your seat'. के स्थान पर कहता है- Let me sew you to your sheet.

(उ) आगम (addition)- जब वक्ता उच्चारण की सुविधा के लिए शब्द में नवीन ध्वनि का प्रयोग करता है। आगम स्वर एवं व्यंजन दो प्रकार का होता है जो शब्द के आदि, मध्य व अंत कहीं भी हो सकता है, यथा- स्त्री > इस्त्री; स्तुति > अस्तुति (आदि स्वरागम); दर्द > दरद; कर्ज > करजा (मध्य स्वरागम); स्कम्भ > खम्भा; दवा > दवाई (अन्त्य स्वरागम)। इसी प्रकार- ओष्ठ > होंठ (आदि व्यंजनागम); शाप > श्राप (मध्यव्यंजागम); चील > चील्ह (अन्त्यव्यंजनागम)।

7.1.2 व्याकरणिक परिवर्तन

भाषा के व्याकरण तथा शब्दावली में घटित परिवर्तन उसकी व्यवस्था के अनुरूप होते हैं अर्थात् भाषा में प्रचलित प्रयोग के आधार पर ही वक्ता नवीन व्याकरणिक रूप

या शब्द की रचना करता है चूँकि ये परिवर्तन भाषा व्यवस्था के अनुरूप होते हैं अतः इन्हें सादृश्यमूलक परिवर्तन कहते हैं और इस प्रक्रिया को **सादृश्य (analogy)** की संज्ञा देते हैं। भाषा के ऐतिहासिक विकास में सादृश्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शब्द तथा रूप के अनेक परिवर्तन सादृश्य के कारण ही सामान्य नियमों से विवेचित नहीं हो पाते हैं, यथा- संस्कृत चतुर्थी के एकवचन मध्यम पुरुष सर्वनाम से हिंदी 'तुझ' का विकास हुआ—

तुभ्यम् > तुज्झ > तुझ

किंतु हिंदी 'मुझ' का विकास 'मह्यम्' से नहीं दिखाया जा सकता है। यहाँ तुझ के सादृश्य पर मुझ की रचना मानी जाती है। अंग्रेजी में तुलनात्मक elder का परिवर्तन older रूप में old के सादृश्य पर हुआ है। सादृश्य कई प्रकार के होते हैं-

(अ) व्याकरणिक सादृश्य- अंग्रेजी में will > would; shall>should के सादृश्य पर भूतकाल में can > could रूप प्रचलित है।

(आ) आर्थी सादृश्य- हिंदी में 'अ' पूर्वप्रत्यय निषेधात्मक अर्थ में प्रयुक्त होता है और रूप निष्पन्न होते हैं कलात्मक > अकलात्मक; कारण > अकारण।

निषेधात्मक प्रत्यय 'अ' संयुक्त इन शब्दों के सादृश्य पर प्रायः 'अभिज्ञ' शब्द का अर्थ भी 'न जानने वाला' समझा जाता है जबकि वास्तव में इसका अर्थ 'ज्ञाता/ जानने वाला' होता है। यह उत्पन्न अर्थ भ्रांति का कारण सादृश्य है।

(इ) ध्वन्यात्मक सादृश्य- संस्कृत 'पंच' के अनुस्वार ने हिंदी पैंतीस को अनुनासिकता प्रदान की और इसके सादृश्य पर 'सैंतीस' में अनुनासिकता का विकास हुआ जबकि ध्यान दीजिए कि संस्कृत 'सप्त' में अनुनासिकता नहीं होती है।

7.1.3 अर्थ परिवर्तन

शब्दों के अर्थ स्वतः उत्पन्न नहीं हुए हैं प्रयोगकर्ताओं ने उन्हें ये अर्थ दिए हैं अर्थात् शब्द और अर्थ का संयोग स्वयं नहीं हो गया बल्कि लोक के द्वारा यह संयोग सम्पन्न हुआ है। भाषा के विभिन्न शब्दों के साथ जो भी अर्थ प्रयोगकर्ताओं के कारण जुड़ गए हैं वे निश्चित या दो टूक नहीं हैं तथा उनके द्वारा सदैव एक वस्तु या भाव संकेतित नहीं होता वरन् अनेक वस्तुएँ संकेतित हो सकती हैं। अतः जब कभी कोई शब्द किसी नए अर्थ से अथवा नया अर्थ/भाव किसी शब्द से जुड़ता है तो अर्थ-परिवर्तन घटित होता है। अर्थ-परिवर्तन अनेकानेक कारणों से घटित हो सकता है। यहाँ अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारणों की चर्चा की गई है—

(अ) आलंकारिक प्रयोग- भाषा का कार्य संप्रेषणात्मकता के साथ-साथ भावों को प्रभावोत्पादक, सुन्दर एवं स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करना भी है इसीलिए भाषा में आलंकारिक प्रयोगों का महत्व है। अर्थ-परिवर्तन का मुख्य कारण रूपक अलंकार का बाहुल्य है, यथा—अन्धा कुआँ; शेर दिल; बैल (बुद्धिहीन)। प्रायः वक्ता

निर्जीव वस्तु पर सजीवता आरोपित करते हैं, यथा- सुई की आँख, सुराही की गर्दन, घड़े का मुँह अथवा अंग्रेजी में- a weighty argument, a hazy notion

(आ) परिवेश- प्रायः सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिवेश में परिवर्तन शब्द के अर्थ में भी परिवर्तन लाता है, यथा—

पत्र < पत्ता / जिस पर लिखा जाता है

प्राचीन काल में पत्ते का उपयोग लेखन के लिए किया जाता था। धीरे-धीरे मूल भाव के साथ एक अन्य भाव आ जुड़ा 'जिस पर लिखा जाय'। तत्पश्चात् गौण भाव प्रमुख हो गया और परिवेश में परिवर्तन के कारण 'पत्र' का अर्थ 'चिट्ठी' हो गया। इंग्लैण्ड में corn शब्द भुट्टे के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि जाति विशेष का भोजन होने के कारण अमरीका में 'maize' का प्रचलन है। इसी प्रकार उत्तर भारत में कच्चे व पक्के दोनों को चावल कहते हैं जबकि बंगाल में कच्चे को चावल व पक्के को 'भात' कहते हैं। इसी प्रकार ठाकुर शब्द के एकाधिक अर्थ भिन्न-भिन्न परिवेश में मिलते हैं—

	क्षत्रिय	(उत्तरभारत)
ठाकुर	नाई	(बिहार)
	रसोइया	(बंगाल)
	भगवान	(उत्तर भारत तथा बंगाल)

(इ) मनोवैज्ञानिक कारण- संभाषण में नम्रता प्रदर्शित करने अथवा अति शिष्टतावश वक्ता कभी-कभी शब्द के वास्तविक अर्थ में परिवर्तन करता है, यथा- करुणानिधान, विराजिए, गरीबखाना, दौलतखाना। साथ ही प्रायः वक्ता अमंगलसूचक शब्द का प्रयोग न कर उनके स्थान पर दूसरे शब्दों का प्रयोग करता है, यथा- सूरदास शब्द का प्रयोग अंधे व्यक्ति के लिए किया जाता है। कभी-कभी व्यंग के कारण भी भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयोग किए जाते है, यथा- अन्यायी > धर्मराज; कंजूस > दानवीर कर्ण; कुरूप व्यक्ति > कामदेव। कभी-कभी वक्ता अपनी बात पर जोर देने के लिए शब्द का भिन्न प्रकार से प्रयोग करता है, यथा- बंगाली में कथन पर बल डालने के लिए भीषण, भयंकर, प्रचंड, दारुण जैसे विशेषण प्रयोग में लाए जाते हैं। कतिपय परिस्थितियों में शब्दार्थ की अंतर्निहित अनिश्चितता के कारण भी अर्थ में परिवर्तन होता है, उदाहरणार्थ-जब वर्ग विशेष के लिए प्रयुक्त शब्द समूह का बोध करता है, जैसे—

स्याही	स्याही रंग वाली, प्रत्येक रंग की
सब्जी	हरी तरकारी, सभी तरकारियों के लिए
सर्फ	विशेष ब्रान्ड का साबुन, सभी के लिए
विम	विशेष कंपनी का, सभी के लिए

7.1.4 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

किसी शब्द का अर्थ कई प्रकार से बदल सकता है। कभी-कभी अर्थ में विस्तार तो कभी संकोच या कभी अर्थादेश (transference of meaning) की स्थिति मिलती है।

(अ) विस्तार (expansion)- जब प्रचलित प्राचीन अर्थ की तुलना में नवीन विस्तृत अर्थ का प्रयोग हो तो यह प्रक्रिया अर्थ-विस्तार कहलाती है। ऐसा प्रायः उस स्थिति में होता है जब विशेष का बोध कराने वाला शब्द सामान्य का बोध कराने लगता है, यथा—आरंभ में प्रवीण का अर्थ वीणा वादन में निपुण था किंतु आज किसी भी कार्य में निपुण व्यक्ति को प्रवीण कहा जाता है। इसी प्रकार तटस्थ शब्द का अर्थ था 'जो किनारे पर स्थित हो' लेकिन इसका अर्थ विस्तृत हो ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगा जो विवाद या झगड़े में न पड़े अर्थात् गुटनिरपेक्ष हो। शब्द के अर्थ विस्तार की प्रवृत्ति अत्यंत स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसके मूल में प्राचीन के आधार पर नवीन को, विशेष के आधार पर सामान्य को समझने की सहज मनोवृत्ति है, जैसे- अंग्रेजी client शब्द का लैटिन में अर्थ था 'आज्ञाकारी दास, सेवक' किंतु आज बड़े से बड़ा व्यक्ति भी अपने डॉक्टर, वकील या बैंक ऑफीसर का क्लाइंट होता है यह भी अर्थ विस्तार का एक रोचक उदाहरण है।

(आ) अर्थ संकोच (contraction)—जब कोई अर्थ सामान्य से हटकर विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हो तो उस दिशा को अर्थ संकोच कहते हैं। प्राचीन अर्थ में मृग शब्द पशु मात्र का वाचक था और इसीलिए शेर को मृगराज कहते हैं किंतु आज हिरन के अर्थ में इसका प्रयोग होता है। संस्कृत धान्य शब्द का मूल अर्थ अनाज है। हिंदी में 'धनधान्य' में यही अर्थ विद्यमान है किंतु संस्कृत में ही कालांतर में धान्य शब्द चावल संबंधी अर्थ में सीमित हो गया। प्राचीन अंग्रेजी में mete शब्द का अर्थ food था। आज भी अंग्रेजी पदबंध sweet meat तथा meat and drink में meat शब्द अपने पूर्व अर्थ में ही प्रयुक्त मिलता है जबकि शेष स्थलों पर इसका प्रयोग खाने योग्य माँस (edible flesh) के अर्थ में किया जाता है।

(इ) अर्थादेश (transference)- जब शब्द का मूल अर्थ लुप्त हो जाए और नवीन अर्थ उसका स्थान ले तो उसे अर्थादेश की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः जब शब्द के मौलिक अर्थ से संबंध न रखने वाला कोई बाह्य भाव अनजाने में उस अर्थ में जुड़ जाता है और धीरे-धीरे वही उस शब्द का मुख्यार्थ बन जाता है तो उसे अर्थादेश कहते हैं। यह शब्द पर नवीन अर्थ आरोपित करता है। हिंदी असुर शब्द राक्षस अर्थ में प्रयोग किया जाता है संस्कृत में इसका अर्थ देवता था। गँवार का अर्थ प्रारंभ में गाँव में रहने वाला था आज बेवकूफ अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्राचीन अंग्रेजी में fee शब्द का अर्थ गाय, भैंस, भेड़ आदि जानवर था (लैटिन शब्द) क्योंकि उस

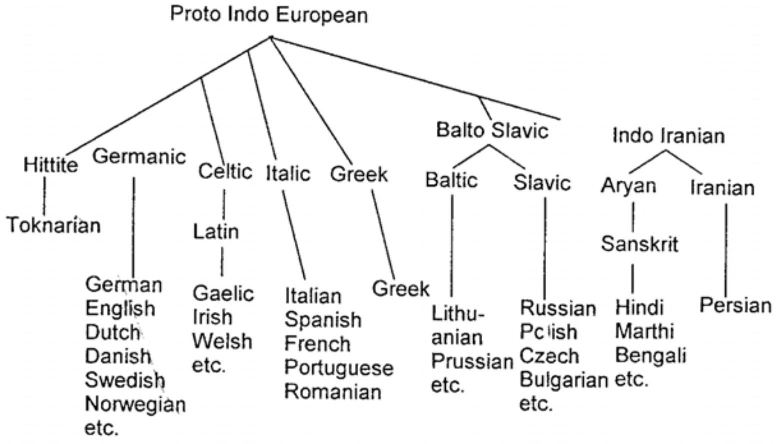
काल में मुद्रा का कार्य इन्हीं जानवरों द्वारा होता था। आज fee का भिन्न अर्थ है।

यदि शब्द अच्छे अर्थ से बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगे तो उसे **अर्थापकर्ष** (degeneration) की संज्ञा देते हैं। 'देवदासी' शब्द प्राचीन काल में मंदिर की दासी को कहते थे आज इसका प्रयोग 'वेश्या' के अर्थ में किया जाता है। 'महाजन' से तात्पर्य महान व्यक्ति था किंतु आज 'ऋण देने वाला' कहा जाता है। जब कोई शब्द बुरे अर्थ से अच्छे अर्थ में प्रयोग किया जाए तो उसे **अर्थोत्कर्ष** (elevation) की संज्ञा देते हैं यथा- 'कर्पट' शब्द का प्राचीन अर्थ 'चीथड़ा' था और नवीन अर्थ 'कपड़ा' है। संस्कृत में 'साहस' शब्द का प्रयोग अधिकांशतः लूट, हत्या, व्यभिचार के अर्थ में हुआ जबकि हिंदी में यह 'हिम्मत' का वाचक हो गया है।

7.2 भाषा परिवार

प्रत्येक भाषा किसी न किसी भाषिक समुदाय का निर्धारण करती है। भाषिक समुदाय से तात्पर्य उन व्यक्तियों के समूह से है जो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः एक भाषा के माध्यम से परस्पर संप्रेषण करते हैं। प्रत्येक भाषा में अत्यंत क्षीण गति से परिवर्तन का चक्र चलता रहता है। यह परिवर्तन उच्चारण, व्याकरण, शब्दावली-सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है जो दीर्घकाल के उपरांत पूंजीभूत रूप में होने पर लक्षित होता है। यही कारण है कि आधुनिक हिंदी और उसके प्राचीनतम रूप में अत्यधिक भिन्नता दृष्टिगत होती है। जो भाषिक समुदाय घनिष्ठता सम्पृक्त होते हैं उसमें घटित परिवर्तन समस्त वक्ताओं को प्रभावित करता है किंतु यदि भाषिक समुदाय प्रावर्जन या बाह्य आक्रमण आदि के कारण विखण्डित हो जाता है तो परिवर्तन की सीमा का क्षेत्र एक उपभाषिक समुदाय तक सीमित रहता है। परिणामस्वरूप एक भाषिक समुदाय के उपसमुदायों की भाषिक प्रवृत्तियाँ अपसृत हो जाती हैं। अपसरण अत्यधिक होने पर विभिन्न उपसमुदायों के सदस्य एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते हैं। इस स्थिति में ये उपसमुदाय एक निश्चित भाषा वाले स्वतंत्र भाषिक समुदाय का रूप ग्रहण करते हैं। जब भी दो या अधिक भाषाएँ इस प्रकार से विकसित होती हैं तो एक ही पूर्वरूप से विकसित होने के कारण उन्हें संबंधित भाषाएँ कहते हैं और संबंधित भाषाओं का समूह एक भाषा परिवार का निर्माण करता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में बॉप, रास्क, ग्रिम आदि विद्वानों ने तुलनात्मक पद्धति द्वारा अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित भाषाओं के पारस्परिक संबंधों को ज्ञात करने का प्रयास किया और प्राप्त ऐतिहासिक निष्कर्षों के आधार पर भाषा परिवार की कल्पना की। प्रसिद्ध भाषाविद् श्लाइखर ने यह प्रतिपादित किया[3] कि किसी वृक्ष की शाखा, उपशाखा की भाँति भाषा के उपभागों का संबंध मूल भाषा से होता है अतः समानता रखने वाली भाषाओं का एक वंशवृक्ष (family tree)[4] बनाया जा सकता है। मूल रूप को पितृ एवं उपभागों को पुत्री तथा पुत्रियों को परस्पर भगिनी भाषाएँ नाम दिया गया।



आरेख-34

श्लाइखर द्वारा प्रस्तुत इस **वंशवृक्ष प्रारूप**[5] की कटु आलोचना **श्मिडिट** (Schmidt) ने की। इनके मतानुसार एक स्रोत से उत्पन्न भाषाएँ दीर्घकाल तक मूलरूप तथा समानान्तर रूपों से समानता रखती हैं। एक भाषा से व्युत्पन्न रूपों में वृक्ष की शाखाओं की भाँति स्पष्ट विभाजन नहीं मिलता है बल्कि बहुत समय तक अनेक अभिलक्षण पुत्री भाषाओं में प्राप्त होते हैं। साथ ही एक भाषा में घटित परिवर्तन प्रायः समस्त भगिनी भाषाओं को प्रभावित करता है।

अतः भाषाओं में प्राप्त अंतःसंबंध को वंशवृक्ष की तुलना में **'लहर सिद्धांत'** (Theory of waves) अधिक स्पष्ट करता है[6]। नव्यवैयाकरणों ने दोनों प्रारूपों को स्वीकार किया किंतु आधुनिक काल में इन प्रारूपों को महत्व नहीं दिया जाता है। विद्वानों का मत है कि सामाजिक उपादान एवं जटिल संरचना होने के कारण भाषा को इन वंशानुक्रमिक अथवा ज्यामितीय प्रारूपों द्वारा व्याख्यायित करना उचित नहीं है। वास्तविकता यह है कि किसी एक भाषा रूप से दूसरे की उत्पत्ति अकस्मात् नहीं वरन् क्रमिक होती है और प्रायः भाषा की विभिन्न अवस्थाओं को दिए गए नाम यादृच्छिक एवं पारंपरिक होते हैं, यथा- हिंदी का तीन कालों-आदि मध्य एवं आधुनिक-में विभाजन यादृच्छिक होने के साथ-साथ भाषिक एवं अभाषिक दोनों आधारों पर आधृत है।

भाषा के गत्यात्मक स्वरूप का ऐतिहासिक अध्ययन तभी संभव है जबकि उसके प्रत्येक कालखंड का स्थित्यात्मक विश्लेषण किया जा चुका हो। ऐतिहासिक अध्ययनकर्ता को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन प्राचीन लिखित सामग्री को अपने विश्लेषण का आधार बनाता है। इसमें अध्येय भाषा में उपलब्ध प्राचीन लिखित सामग्री का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है तथा इसके अभाव

में विश्लेषण के आधार पर ज्ञात रूपों की सत्यता प्रमाणित नहीं की जा सकती है। अतः जिन भाषाओं में प्राचीन साहित्य कम मात्रा में मिलता है उनका ऐतिहासिक अध्ययन अधिक कठिन हो जाता है। साथ ही लिपि का आश्रय लेकर ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिकता बनाए रखना दुष्कर होता है। लिपि भाषायी ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। एक अच्छी लिपि के लिए ध्वनि एवं वर्ण में सामंजस्य होना अनिवार्य है। इनके संबंध में भ्रमपूर्ण स्थिति नहीं होनी चाहिए। ऐतिहासिक अध्ययन में प्रायः यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है कि संकलित सामग्री में आगत वर्ण किन ध्वनियों से संबंधित है, यथा हिंदी में- रि तथा ऋ का समान उच्चारण - रि है। इसी प्रकार श तथा ष का उच्चारण भी समान रूप में होता है। कभी-कभी दो भाषाओं में सम्पर्क होने पर किसी एक भाषा में ध्वनि का प्रयोग तो होने लगता है किंतु लिपि में उसके लिए चिह्न नहीं होते हैं अर्थात् आगत ध्वनि उच्चारण तक सीमित है। लिखित भाषा में उसके लिए वर्ण विशेष का प्रचलन नहीं आरंभ होता है, यथा- अंग्रेजी के हॉस्पिटल, ऑफिस, बॉल आदि शब्दों में आने वाली ऑ ध्वनि बहुत पहले हिंदी के उच्चरित रूप में आ गई थी किंतु लेखन में चिह्न विशेष का निर्धारण कुछ वर्ष पहले हुआ है और आज भी वर्णमाला में इस लिपि चिह्न की गणना नहीं होती है। ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिकता के लिए अनिवार्य है कि जिस स्थान विशेष की आधुनिक भाषिक सामग्री हो ठीक उसी स्थान की प्राचीन लिखित सामग्री भी होनी चाहिए। किंतु प्रायः ऐसा संभव नहीं होता है और भाषिक सामग्री संबंधी यह स्थानिक भिन्नता अध्ययन में समस्या उत्पन्न करती है। किसी भी भाषा का स्वरूप व्यक्ति के अनुरूप भी परिवर्तित होता है। व्यक्तिगत विशिष्टता वाली यह भाषा **व्यक्ति बोली** (idiolect) कहलाती है। एक व्यक्ति की भाषा का सूक्ष्म अन्वेषण अनेकानेक वैयक्तिक भेदों को उद्घाटित करता है- शब्द चयन संबंधी, वाक्य संरचना संबंधी, उच्चारण, शब्दों की अन्विति संबंधी और गति, बल, सुर आदि विशेषताएँ जो मौखिक भाषा को जीवन्त बनाती हैं। ये तथ्य अति प्राचीन रूप में भी विद्यमान थे। किंतु आज उनका कोई लेखा-जोखा न होने के कारण उनका विश्लेषण व अन्य तत्वों पर प्रभाव ज्ञात नहीं किया जा सकता है। अनेक सामाजिक व मानसिक कारक ऐतिहासिक अध्ययन में कठिनाई उपस्थित करते हैं। भाषा एक निश्चित भाषिक समुदाय की विभिन्न सामाजिक आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। समय के साथ आवश्यकता में होने वाला परिवर्तन भाषा में भी परिवर्तन लाता है। आधुनिक काल में, परिस्थितिगत ये भिन्नताएँ जब भाषा में इतना वैविध्य लाती हैं तब प्राचीन काल की इन भिन्नताओं को ज्ञात करना असंभव सा प्रतीत होता है। अतः ऐतिहासिक अध्ययन में इन तथ्यों का सावधानीपूर्वक निराकरण करने का प्रयास करना चाहिए।

7.3 तुलनात्मक पद्धति (comparative method)

भाषाओं में प्राप्त कतिपय समानताएँ, निश्चित रूप से सार्वभौमिक तथ्यों का परिणाम होती हैं, जैसे- स्वनिम, रूपिम शब्द, रचनाएँ आदि भाषिक विशेषताएँ प्रत्येक मानवीय भाषा में अंतर्निहित रहती हैं। इस दृष्टि से विश्व की समस्त भाषाएँ समान हैं। भाषा के कतिपय अन्य अभिलक्षण, जैसे- संज्ञा, सर्वनाम, शब्द वर्ग, व्याकरणिक कोटियाँ आदि सार्वभौमिक न होते हुए भी अनेक भाषाओं में प्राप्त होते हैं और इस आधार पर भी भाषाओं में साम्य मिलता है। कभी-कभी भाषाओं में आकस्मिक समानताएँ प्राप्त होती हैं जिनका भाषा विश्लेषण की दृष्टि से कोई महत्व नहीं होता है। ये सांयोगिक अनुरूपताएँ अध्ययन में समस्या उत्पन्न करती हैं। प्रायः दो या अधिक भाषिक समुदायों के मध्य राजनैतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक आदि कारणों से होने वाला सम्पर्क आदान का कारण बनता है परिणामतः भाषाओं में समरूपताएँ मिलती हैं। इन स्थितियों के अतिरिक्त भाषाओं के मध्य प्राप्त साम्य जब पारस्परिक संबंध के कारण हो तो कह सकते हैं कि समानता रखने वाली भाषाएँ किसी एक पूर्ववर्ती भाषा का परवर्ती रूप है। आज भारतीय आर्य भाषाओं की पूवर्ज भाषा संस्कृत में प्रचुर मात्रा में लिखित साहित्य उपलब्ध है। प्राचीन काल में भारतवर्ष के एक विस्तृत क्षेत्र में इसका प्रसार था। इस विस्तृत क्षेत्र के अलग-अलग भागों में बोली जा रही संस्कृत भाषा में भिन्न-भिन्न भाषिक परिवर्तन घटित हुए, जो भाषिक वैविध्य आज भी दृष्टिगत होता है। आधुनिक समय में ये पृथक भाषा रूप मराठी, गुजराती, बंगाली, हिंदी, पंजाबी आदि नामों से अभिहित किए जाते हैं। इनमें से किसी भी भाषा के प्राचीन इतिहास का अवलोकन यह सूचना नहीं देता है कि कब, कहाँ, कैसे, किस काल या वर्ष में संस्कृत ने इसको जन्म दिया। किंतु यह अवश्य है कि इन भाषाओं में प्राप्त अनेक विशेषताएँ संस्कृत में विद्यमान हैं और संस्कृत तथा इनके मध्य प्राप्त विषमताओं की व्याख्या भाषिक परिवर्तन के आधार पर की जा सकती है। भाषाओं में प्राप्त इस प्रकार के आनुवांशिक संबंध तुलनात्मक पद्धति द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं।[7]

1820 से 1870 के मध्य का काल तुलनात्मक अध्ययन के प्रादुर्भाव एवं विकास का युग था। सर विलियम जोन्स की संस्कृत खोज एवं तत्संबंधी उद्घोषणा ने यूरोपीय विद्वानों के भाषिक अध्ययनों को नवीन दिशा दी। सभी भाषाओं को हिब्रू से जनित मानने वाले विद्वान एक भिन्न धारणा से परिचित हुए और पिछले दशकों में संकलित सामग्री के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रारंभ हुए। **फ्राँज बॉप**, **रास्मुस रास्क** एवं **ग्रिम** नामक तीन विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। बॉप ने ग्रीक, संस्कृत, लैटिन, जर्मेनिक आदि भाषाओं की तुलना कर प्रथम 'तुलनात्मक व्याकरण' की रचना की। धातुओं की विवेचना के आधार पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लगभग सभी प्रत्यय प्रारंभ में स्वतंत्र शब्द थे जिन्होंने समय के साथ क्षीण हो प्रत्यय का रूप ले लिया। इनका अध्ययन भाषा की सामान्य प्रकृति एवं

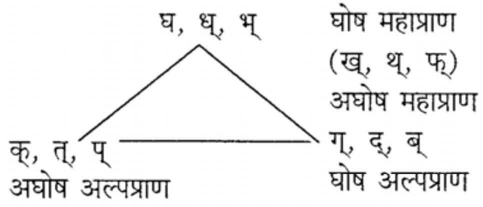
व्याकरण तक सीमित था। प्रत्यय-संरचना में समानता न होने पर भी बॉप ने अस्ट्रोनेशियन भाषा को भारोपीय परिवार से संबंधित मानने की बड़ी भूल की। इस शृंखला के द्वितीय विद्वान रास्क ने आइसलैंडिक की प्राचीनतम भाषा नार्स की उत्पत्ति व विकास संबंधी अध्ययन किए। इनकी अन्वेषक दृष्टि इस तथ्य से परिचित थी कि व्याकरण के अतिरिक्त ध्वनियों के तुलनात्मक परीक्षण भी भाषाओं के संबंध पर प्रकाश डालते हैं अतः ध्वन्यात्मक विश्लेषण द्वारा भाषाओं में प्राप्त समानता एवं विषमता का सही आकलन किया जा सकता है। इन्होंने जर्मेनिक भाषाओं में घटित स्वन-परिवर्तन पर शोध किया और जर्मेनिक शब्द ध्वनियों एवं भारोपीय भाषा के संबंध को स्पष्ट किया, यथा- जर्मेनिक f लैटिन p के समतुल्य है। रास्क ही वह प्रथम निरीक्षणकर्ता थे जिन्होंने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया और ध्वनियों के नियम के महत्व को स्वीकारा। अवेस्ता भाषा को आर्य परिवार में स्थान दिलाने का श्रेय इनको ही जाता है। साथ ही इन्होंने संस्कृत एवं द्रविड़ भाषाओं के अंतर को स्पष्ट किया किंतु अल्पायु में मृत्यु होने तथा यूरोप के एक छोटे देश डेनमार्क की भाषा डेनिश में लिखी गई कृतियों के कारण इनको अपने जीवन-काल में प्रसिद्धि नहीं मिली और न ही इनके कार्यों का सही मूल्यांकन हो सका।

इस काल तक आते-आते भाषा-अध्ययन की दिशा तुलनात्मक के साथ-साथ ऐतिहासिक भी हो गई। भाषा के शब्दों, ध्वनियों तथा विभक्ति प्रणाली में प्राप्त साम्य के आधार पर श्लेगल बंधुओं ने कई शोध कार्य किए। 1819 में ग्रिम द्वारा रचित जर्मन व्याकरण प्रकाशित हुआ जो ऐतिहासिक भूमिका में लिखा प्रथम तुलनात्मक व्याकरण था। इनके अनुसार व्याकरण तर्कसम्मत वस्तु नहीं वरन् निरीक्षण पर निर्भर करता है तथा सार्वभौमिक तर्क खोजने पर अध्ययनकर्ता का ध्यान निरीक्षण से विमुख होता जाता है जो भाषाविज्ञान की आत्मा है। रास्क की प्रेरणा से इन्होंने स्वन प्रक्रिया के महत्व को समझा तथा जर्मेनिक स्वनों एवं भारोपीय स्वनों के मध्य के संबंध को और अधिक स्पष्ट किया।

7.4 ध्वनि नियम (phonetic law)

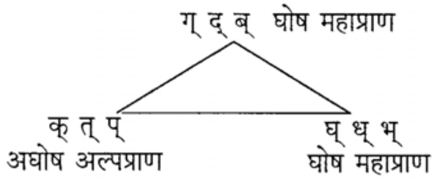
ग्रिम ने प्रतिपादित किया कि कुछ मूल भारोपीय स्वन जर्मेनिक में परिवर्तित हो गए हैं और यह परिवर्तन दो चरणों में हुआ। प्रथम परिवर्तन प्रागैतिहासिक काल में घटित हुआ और मूल भारोपीय अघोष अल्पप्राण - क्, त्, प् जर्मेनिक में घोष महाप्राण- घ्, ध्, भ् में क्रमशः परिवर्तित हुए तथा घोष अल्पप्राण का परिवर्तन अघोष अल्पप्राण में हो गया। इन परिवर्तनों को निम्न आरेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

मूल भारोपीय की ध्वनियाँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में सुरक्षित हैं। संस्कृत को प्रतिनिधि भाषा मानने पर ख्, थ्, फ् (अघोष महाप्राण) स्वनों की भी गणना होगी।



आरेख-35

परिवर्तन का द्वितीय चरण हजारों वर्षों बाद सातवीं शताब्दी में घटित हुआ जिसके कारण जर्मेनिक भाषाएँ दो वर्ग-उच्च जर्मन एवं निम्न जर्मन में विभाजित हो गईं। इसके अंतर्गत अघोष अल्पप्राण क्, त्, प् परिवर्तित हुए घोष अल्पप्राण ग्, द्, ब् में तथा घोष महाप्राण घ्, ध्, भ परिवर्तित हुए अल्पप्राण क्, त्, प् में और घोष अल्पप्राण ग्, द्, ब् का परिवर्तन घोष महाप्राण ध्, ध्, भ् में हुआ। इनका स्पष्टीकरण निम्न आरेख द्वारा होता है—



आरेख-36

प्रसिद्ध भाषाविद् मैक्समूलर ने इन स्वन परिवर्तनों को ध्वनिनियम की संज्ञा दी।

लगभग इसी काल में कुछ विद्वानों ने भाषाविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान की श्रेणी में लाने का प्रयास किया। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत से प्रभावित होकर ऑगस्ट श्लाइखर ने भाषा को एक जीवित संघटना के रूप में स्वीकार किया। इन्होंने इस सिद्धांत को भाषा की उत्पत्ति पर बहुत तार्किक एवं स्पष्ट रूप में प्रयुक्त किया। तुलनात्मक व्याकरण में यद्यपि इन्होंने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा संकलित सामग्री का ही उपयोग किया तथापि इनकी कार्यप्रणाली, तथ्यों के प्रस्तुतीकरण एवं विचारगत स्पष्टता ने इनके ग्रंथ Compendium को अद्वितीय बना दिया।

7.5 नव्य वैयाकरण (neo grammarians)

तुलनात्मक भाषाविज्ञान के स्रष्टा फ्रॉज बॉप थे जिन्होंने 1816 में अपनी पुस्तक Uben das conjugation system der sanskrit sprache प्रकाशित की।

बॉप द्वारा निरूपित इस प्रकार के तुलनात्मक अन्वेषण को श्लाइखर ने पूर्णता प्रदान की और Compendium (1816) नामक अपनी पुस्तक में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र की तत्कालीन समस्त उपलब्धियों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया। विकास के अगले चरण में भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन का स्थान ऐतिहासिक विश्लेषण ने लिया। तुलना से इतिहास का यह संक्रमण मुख्यतः जर्मेनिक एवं रोमन्स भाषा-क्षेत्रों में हुआ। जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय से संबद्ध कुछ युवा वैयाकरणों ने रास्क एवं ग्रिम के ध्वनि नियमों का पुनर्मूल्यांकन कर प्रतिपादित किया कि ध्वनिनियम अपवाद रहित होते हैं। **ऑगुस्ट लेस्किन** नामक स्लावी विशेषज्ञ ने 1876 में घोषित किया कि ध्वनि नियम से संबंधित इन तथाकथित अपवादों को प्राचीन विद्वान नहीं समझ पाए। वस्तुतः ये अपवाद नहीं बल्कि इन नियमों की प्रायोगिकता के भिन्न पहलू हैं और इनकी व्याख्या सादृश्य के आधार पर नवीन शब्द के प्रयोग का मनोवैज्ञानिक उपक्रम एक सहज मानवीय प्रवृत्ति है जो अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक वक्ता को प्रभावित करती है और प्रायः ध्वनि परिवर्तन का प्रमुख कारण बनती है। लेस्किन के अतिरिक्त इन युवा उत्साही विद्वानों में **कॉर्ल वर्नर, कॉर्ल ब्रुगमैन, कॉलित्ज, अस्कोली, हरमन ऑस्टहॉफ, हरमन पॉल** आदि प्रमुख थे।

कार्ल ब्रुगमैन ने डेलब्रुक नामक एक विद्वान के साथ मिलकर तुलनात्मक व्याकरण विषय पर अद्वितीय ग्रन्थ लिखा।[8] पाँच खंडों वाले इस ग्रन्थ में पूर्व में उपेक्षित वाक्य विन्यास का भी विवेचन किया गया। इन्होंने श्लाइखर द्वारा पुनर्निर्मित भारोपीय भाषा की अनुनासिकता एवं स्वर-व्यवस्था की व्याख्या करते हुए सघोष नासिक्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार नासिक्य व्यंजन अनुनादी रूप में भी प्रयुक्त हो सकते हैं। इस नियम से ग्रिम नियम के कई अपवादों का निराकरण हो गया। 1875 में डेनिश विद्वान **कॉर्ल वर्नर** ने अपने एक लेख[9] में नवीन खोज की। इन्होंने देखा कि भारोपीय स्पर्श व्यंजन क्, त्, प् का जर्मेनिक में विकास सदैव ग्रिम नियम के अनुरूप न होने के कारण कुछ भ्रामक प्रतीत होता है। कतिपय शब्दों में नियमानुसार परिवर्तन मिलता है, यथा- संस्कृत 'भ्रातर' गाथिक 'ब्रोथर'। किंतु कभी-कभी परिवर्तन सघोष स्पर्श के रूप में होता है, यथा- संस्कृत 'पित 'र' गॉथिक 'फ़ादर'। वर्नर ने संस्कृत अध्ययन करते समय पाया कि क् त् प् से पूर्ववर्ती स्वर उदात्त होने पर परिवर्तन ग्रिम नियम के अनुरूप होता है अन्यथा उनका स्थान सघोष ध्वनियाँ (ग् द् ब्) लेती हैं, यथा- संस्कृत 'सप्त 'म्' गॉथिक 'सिबम'। स्पष्ट है कि वर्नर ने ग्रिम नियम में प्राप्त अपवादों का तर्कसंगत निराकरण किया। इस समुदाय के एक अन्य विद्वान **ग्रैसमैन** ने ग्रिम नियम के एक अन्य अपवाद का स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। संस्कृत का एक शब्द 'बोधति' (bodhati) का गॉथिक समानांतर रूप biudan मिलता है। संस्कृत तथा गॉथिक दोनों शब्दों की प्रारंभिक ध्वनि 'b' है जबकि नियमानुसार यहाँ संस्कृत में 'bh' व्यंजन होना चाहिए। इसी प्रकार संस्कृत शब्द 'दभ्' dabh का गॉथिक

समानांतर 'daubs' है यहाँ भी संस्कृत में 'd' के स्थान पर 'dh' ध्वनि होनी चाहिए। संस्कृत एवं ग्रीक की आंतरिक संरचना से पूर्ण परिचित ग्रैसमैन इस प्रक्रिया को जानते थे कि इन भाषाओं में क्रमिक रूप में प्राप्त दो महाप्राण ध्वनियों में से एक का परिवर्तन हो जाता है, किस ध्वनि का परिवर्तन होगा यह स्वराघात पर निर्भर करता है। अतः ग्रैसमैन ने निष्कर्ष निकाला कि संस्कृत ग्रीक में जहाँ एक महाप्राण ध्वनि है वहाँ मूल भारोपीय में दो महाप्राण ध्वनियाँ थीं अतः उपरोक्त शब्दों की व्युत्पत्ति प्रक्रिया निम्नवत् है—

मूलभारोपीय	संस्कृत	ग्रीक	गॉथिक
*bheudh	bodhati	peūthetai	biudan
*dhobh	dabh	tuphlos	daubs

इस प्रकार *bh, dh जर्मेनिक परिवार में 'b' में ही परिवर्तित हुआ है तथा संस्कृत और ग्रीक में प्राप्त समान 'b', 'd' ध्वनियाँ इनकी आंतरिक संरचना का परिणाम है।

1870-75 के मध्य अस्कोली ने अध्ययन के उपरांत यह प्रतिपादित किया कि मूलभारोपीय तालव्य 'क' विकास के साथ कुछ भाषाओं में 'स', 'श' में परिवर्तित हुआ है और कुछ अन्य में 'क' रूप में। इस आधार पर इन्होंने भारोपीय परिवार की भाषाओं के 'शतम्' और 'केन्तुम्' (संख्या वाचक सौ) दो वर्ग बनाए। उदाहरणार्थ—

लैटिन -	केन्तुम्	अवेस्ता -	सतम्
तोखारी -	कन्त	संस्कृत -	शतम्
फ्रेंच -	केन्त	हिंदी -	सौ
इतावली -	केन्तो	रूसी -	स्तो

हरमन पॉल की गणना नव्य वैयाकरण वर्ग के प्रमुख विद्वानों में होती है। अपनी पुस्तक 'Prizepen' में इन्होंने भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन पर विशेष बल दिया और यह प्रतिपादित किया कि वैज्ञानिक अध्ययन का संबंध विभिन्न तथ्यों की कारणात्मक व्याख्या से है तथा भाषा के संबंध में ऐतिहासिक अध्ययन के अतिरिक्त किसी अन्य कारण भाव की कल्पना नहीं की जा सकती है। पॉल ने सर्वप्रथम भाषा के ऐतिहासिक और वर्णनात्मक अध्ययन के अंतर को स्पष्ट किया तथा ऐतिहासिक अर्थात् भाषा के विकासशील पक्ष को अधिक उपयोगी माना। इन्होंने समाज में बोले जा रहे भाषा-रूप तथा व्यक्ति विशेष की भाषा में भी अंतर किया, साथ ही भाषा, संस्कृति एवं समाज के अंतःसंबंध पर विशेष बल दिया।

नव्य वैयाकरणों के अध्ययन में अनेक विशेषताएँ मिलती हैं। इन विद्वानों के मतानुसार मृत, लिपिबद्ध और साहित्यिक भाषाओं की तुलना में जीवित और मौखिक भाषाओं का अध्ययन अधिक उपयोगी होता है क्योंकि किसी भाषिक समुदाय में व्यवहृत भाषा-रूप उसकी संरचना के अनेक सूक्ष्म बिंदुओं को उद्घाटित करता है। इनके अनुसार चूँकि वर्तमान अवस्था में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर

भाषा-उत्पत्ति की समस्या का समाधान संभव नहीं है अतः इसमें भाषाविदों को अपना समय एवं शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। नव्य वैयाकरणों ने प्रतिपादित किया कि साहित्यिक भाषाओं का जन्म किसी न किसी बोली से ही होता है, अतः बोलियाँ इनका विकृत या भ्रष्ट रूप नहीं वरन् व्यवस्थित रूप हैं, जिनका उच्चारण, व्याकरणिक संरचना और शब्दावली नियमित तथा निश्चित होती है। साथ ही साहित्यिक भाषा की ही भाँति इनमें परिवर्तन एवं अनियमितताएँ भी प्राप्त होती हैं। इन विद्वानों ने इस तथ्य पर बल दिया कि भाषा का अस्तित्व भौतिक तथा मानसिक दोनों तत्वों पर आश्रित है। जहाँ भौतिक तत्व रूपनिष्ठ एवं देशकाल आबद्ध होने के कारण सुनिश्चित और विश्लेष्य है वहीं मानसिक पक्ष अनिश्चित और अनियमित है। भाषा का यही पक्ष उसमें अपवाद तथा अनियमितताएँ उत्पन्न करता है। नव्य वैयाकरणों ने **सादृश्य** (analogy) को भाषा-परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक माना। इन विद्वानों द्वारा ध्वनि नियमों की अनियमितता एवं अपवादहीनता पर बल दिया गया। वास्तव में सादृश्य भाषिक संरचना में इकाइयों के व्यवस्थापरक व्यवहार का सूचक है। स्पष्ट है कि नव्य वैयाकरणों ने भाषा में प्राप्त संरचनात्मक संबंधों के प्रति विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। ऐतिहासिकता पर बल देने के साथ-साथ इन विद्वानों ने भाषा के बोले गए रूप के वर्णन विश्लेषण में रुचि दिखाई अतः इनके कार्यों में ऐतिहासिकता एवं वर्णनात्मकता का सम्मिलन दृष्टिगत होता है। पद्धतिगत सुनिश्चितता पर बल एवं सिर्फ भाषा के भौतिक पक्ष को अध्ययन योग्य समझने के कारण इनका ध्यान भाषायी रूप पर भी केन्द्रित रहा तथा इन विद्वानों ने भाषा के वर्णन-विश्लेषण के लिए सूक्ष्म एवं निश्चित व्यवस्था का विकास किया। इन विशेषताओं के साथ-साथ इनके अध्ययन में कुछ त्रुटियाँ भी मिलती हैं। इन विद्वानों ने कार्य प्रणाली एवं पद्धति को सिद्धांत और आधारभूत नियम समझने की भूल की जिस कारण इनकी आलोचना की गई। इन्होंने भाषा को मानवीय गुणों से संचित माना तथा उस पर मानव-मेधा के सृजनात्मक नियंत्रण को स्वीकार नहीं किया। इनके अध्ययनों में रेखांकित सामग्रीगत साक्ष्यों पर अत्यधिक निर्भरता भाषा के स्वतंत्र अस्तित्व की ओर संकेत करती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा मानवीय नियंत्रण से बाह्य किसी यान्त्रिक शक्ति द्वारा संचालित होती है। भाषिक रूपों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन करने के उत्साह में नव्य वैयाकरणों ने भाषा को छोटे-छोटे अंशों में विभाजित कर कणीकृत (atomize) करने का प्रयास किया। इस कारण इनका ध्यान भाषिक संरचना की समग्रता से विलग हो अनेक महत्त्वहीन तत्वों की ओर चला गया और वे भूल गए कि भाषिक संरचना का प्रत्येक अंश अन्य अंशों से संबद्ध होने के कारण ही महत्वपूर्ण है तथा भाषिक इकाई का अस्तित्व एवं महत्व समग्रता के संदर्भ में ही देखना चाहिए।

7.6 पुनर्निर्माण (reconstruction)

तुलनात्मक पद्धति द्वारा स्थापित भाषाओं की पारस्परिक संबद्धता उस समय तक अधिक स्पष्ट नहीं होती है जब तक कि इन संबंधित भाषाओं की पूर्वज भाषा के स्वनिम, रूपिम आदि से इनके स्वनिमों, रूपिमों आदि का विकास न स्पष्ट किया जाए। इस प्रकार पूर्ववर्ती/पूर्वज भाषा में प्राप्त लिखित सामग्री के आधार पर संबंधित भाषाओं का ऐतिहासिक विकासक्रम अधिक सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है, यथा- तुलनात्मक अध्ययन द्वारा हिंदी, गुजराती, बंगाली, मराठी आदि भाषाओं में संबद्धता निश्चित हो जाने पर इन भाषाओं का ऐतिहासिक विकासक्रम स्रोत भाषा संस्कृत में उपलब्ध लिखित सामग्री द्वारा सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। किंतु कभी-कभी स्थिति भिन्न होती है और समानता रखने वाली भाषाओं की पूर्वज भाषा में कोई लिखित सामग्री नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में ज्ञात संबद्ध भाषाओं का आश्रय लेकर पूर्वज भाषा की कल्पना की जाती है और समान संरचना वाली भाषाओं के रूपों में तुलना के आधार पर पूर्वज भाषा के रूप अनुमानित किए जाते हैं। जैसे यदि कोई अध्ययनकर्ता अफ्रीकी भाषाओं का इतिहास जानना चाहता है तो अफ्रीकी भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के उपरांत वह पूर्वज भाषा की संपूर्ण संरचना कल्पित करेगा क्योंकि इन भाषाओं में प्राचीन प्रलेख लगभग नहीं के बराबर मिलते हैं। पुनर्निर्माण-स्वनप्रक्रिया, रूपरचना, वाक्य रचना एवं कोशीय-समस्त स्तरों पर किया जाता है। इनमें स्वनप्रक्रिया का विशेष महत्व है क्योंकि सभी स्तरों पर आधार रूप वही होती हैं, जैसे सिद्धांततः रूपरचनात्मक स्तर पर शब्दों के खंडीकरण से प्राप्त विभक्तत्यात्मक रूपसारिणियों एवं व्युत्पादक समुच्चयों के स्वनप्रक्रियात्मक रूपों द्वारा ही व्याकरणिक रचना पुनर्निर्मित होती है। पुनर्निर्मित या कल्पित रूपों को तारक (*) अंकित कर लिपिबद्ध किया जाता है और इस प्रकार की कल्पित या अनुमानित भाषा **प्राक् भाषा** (Proto language) कहलाती है।

पुनर्निर्माण दो प्रकार से किया जाता है—

(अ) बाह्य पुनर्निर्माण external reconstruction

(ब) आंतरिक पुनर्निर्माण internal reconstruction

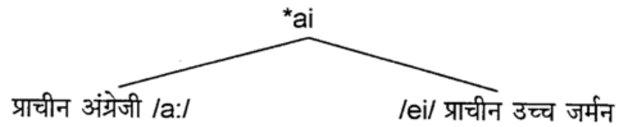
एक परिवार की भाषाओं के रूपों की तुलना द्वारा किया गया पुनर्निर्माण बाह्य कहलाता है, यथा—संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, जर्मेनिक आदि का आश्रय ले मूल भारोपीय (Proto Indo European) की कल्पना की गई है। जर्मेनिक भाषा-क्षेत्र से लिया गया निम्नलिखित उदाहरण स्वनप्रक्रियात्मक पुनर्निर्माण को स्पष्ट करता है। कपितय अपवादों को छोड़कर प्राचीन अंग्रेजी /a:/ के स्थान पर आधुनिक अंग्रेजी में /ou/ मिलता है—

प्राचीन अंग्रेजी	आधुनिक अंग्रेजी
štan	stōne
āc	oak
hlāf	loaf

प्राचीन अंग्रेजी की समकालीन संबद्ध भाषा प्राचीन जर्मन में /a:/ के समानान्तर /ei/ मिलता है—

प्राचीन अंग्रेजी	प्राचीन जर्मन
štān	stein
āc	eih
hlāf	leib

इन भाषाओं के समकालीन होने के कारण, किसी समान पूर्वज की कल्पना किए बिना इस ध्वनि-परिवर्तन की व्याख्या नहीं की जा सकती है। हम अनुमान करते हैं कि इन दोनों के पूर्वज रूप में एक स्वनप्रक्रियात्मक खंड था जो नियमित ध्वनि-परिवर्तन



द्वारा एक तरफ प्राचीन अंग्रेजी में /a:/ तथा दूसरी तरफ प्राचीन जर्मन में /ei/ रूप में विकसित हुआ। स्वनिक तर्कसंगतता एवं वर्णनात्मक लघुता के कारण, परंपरा से यह ध्वनि खंड /ai/ द्वारा अभिव्यक्त किया जाता रहा है अतः इन ध्वनियों का विकासक्रम निम्नवत् होगा—

रूपरचनात्मक एवं वाक्यीय पुनर्निर्माण की भाँति कोशीय पुनर्निर्माण में भी स्वनप्रक्रियात्मक रूपों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और ध्वनि-परिवर्तन संबंधी नियमितता यहाँ भी एक व्यवस्थित मानक के रूप में कार्यरत रहती है। यदि संबद्ध भाषाओं के दो शब्दों में नियमित ध्वन्यात्मक समरूपता मिलती है जिनकी अर्थ संबंधी भिन्नताएँ अनुमानित तर्कसंगत अर्थ परिवर्तन नियम द्वारा व्याख्येय हैं तो उन दोनों शब्दों के मध्य व्युत्पत्यात्मक संबंध की कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार किसी शब्द की व्युत्पत्ति समय की गोद में छुपा उसका रूपात्मक एवं आर्थी इतिहास है जिसकी खोज प्रारम्भिक व्याकरण या आगत शब्द होने पर दाता भाषा (जिससे शब्द आया है) के व्याकरण तक पहुँच कर की जा सकती है, उदाहरणार्थ- अंग्रेजी शब्द murder तथा जर्मन शब्द mord की खोज मूल भारोपीय *mrtro और *marto में की जा सकती है। ये दोनों संज्ञावाची शब्द धातु *mr- 'मरना' से व्युत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार murder और mord शब्दों के प्राचीन अर्थ मूलतः 'मृत्यु' अर्थ से संबंधित थे किंतु जर्मेनिक के आर्थी विकासक्रम ने इसे नवीन विशिष्ट अर्थ 'हत्या' - the

premeditated and unlawful killing of a fellow human being दिया। ध्यातव्य है कि 'मरना' से 'हत्या' तक का सफर तय करने में इस शब्द के अर्थ में अनेक आर्थी अभिलक्षण (+ विपदाग्रस्त व्यक्ति, + अन्यायपूर्ण, + साभिप्राय, + अविचारशील आदि) जुड़ गए। स्पष्ट है कि कोशीय पुनर्निर्माण का कार्य अत्यंत कठिन होता है क्योंकि कोशीय इकाइयाँ भाषा के साथ-साथ समाज एवं संस्कृति से भी घनिष्ठतः संपृक्त होती हैं।

जब किसी अन्य भाषा को ध्यान में रखे बिना किसी एक भाषा के संकालिक स्वरूप का आश्रय लेकर उसके पूर्व रूप की कल्पना की जाए तो उसे आंतरिक पुनर्निर्माण की संज्ञा देते हैं।[10] आंतरिक पुनर्निर्माण इस मान्यता पर आधृत है कि प्रायः भाषाओं में प्राप्त सभी परिवर्तन उसकी संकालिक प्रक्रिया में कुछ समय तक अवश्य विद्यमान रहते हैं अर्थात् प्राचीन रूप के कतिपय चिह्न वर्तमान में भी सुरक्षित मिलते हैं, यथा- हिंदी में मध्य पुरुष एक वचन सर्वनाम 'तुम' तथा संबंध वाचक रूप 'तुम्हारा' ये दो रूप मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि 'तुम' प्राचीन रूप है या 'तुम्हारा' में संयुक्त 'तुम्ह' प्राचीन माना जाए। हमारे समक्ष दो परिकल्पनाएँ हैं—



हिंदी की आंतरिक संरचना के आधार पर द्वितीय परिकल्पना अधिक उचित प्रतीत होती है क्योंकि हिंदी में 'ह' या महाप्राण ध्वनि लोप के अनेक उदाहरण मिलते हैं जबकि 'ह' आगम की प्रवृत्ति नहीं मिलती है अतः 'तुम्ह' से तुम व्युत्पन्न हुआ माना जा सकता है। हिंदी की पूर्वज भाषा पालि एवं प्राकृत में 'तुंह' रूप मिलता है जो आंतरिक पुनर्निर्माण की सत्यता को प्रमाणित करता है।

पुनर्निर्माण के कार्य में कतिपय सिद्धांत सहायता देते हैं—

1. बहुमत सिद्धांत—यदि पारस्परिक संबद्धता वाली भाषाओं में प्राप्त **सजात** शब्दों (cognates) में कोई ध्वनि सभी भाषाओं में प्राप्त हो तो यह कल्पना की जाती है कि वह ध्वनि विशेष पूर्वज भाषा में उसी रूप में अवश्य थी, यथा—

संस्कृत-	asti
ग्रीक-	esti
लैटिन-	est
गॉथिक -	ist

इन सजात शब्दों में आगत st ध्वनि की कल्पना पूर्वज भाषा मूलभारोपीय में

अवश्य की जाएगी।

2. सर्वाधिक स्वाभाविक विकास सिद्धांत—भाषाओं में घटित होने वाले कतिपय ध्वनि-परिवर्तन सार्वभाषिक कहे जा सकते हैं इन्हें ध्वनि-विकास का स्वाभाविक सिद्धांत कहा जाता है, यथा—(क) प्रायः अंतिम स्वर लुप्त हो जाता है।

(ख) प्रायः ऐतिहासिक विकासक्रम में दो स्वरों के मध्य आगत अघोष ध्वनि सघोष हो जाती है।

(ग) कुछ निश्चित परिस्थितियों में स्पर्श ध्वनि संघर्षी में परिवर्तित हो जाती है।

(घ) शब्दान्त के व्यंजन अघोष हो जाते हैं।

निम्नलिखित सजात शब्दों के आधार पर पूर्व रूप की कल्पना उपर्युक्त सिद्धांतों की सहायता से की जा सकती है—

भाषाएँ

1	2	3	पूर्व रूप	अर्थ
mube	mupe	mup	*mupe	झरना
abadi	apati	apat	*apati	
चट्टान				
agana	akana	akan	*agana	चाकू
enugu	enuku	enuk	*enuku	हीरा
hip	hiba	nipa	*hipa	मार्ग
lik	ligu	liku	*liku	कीट

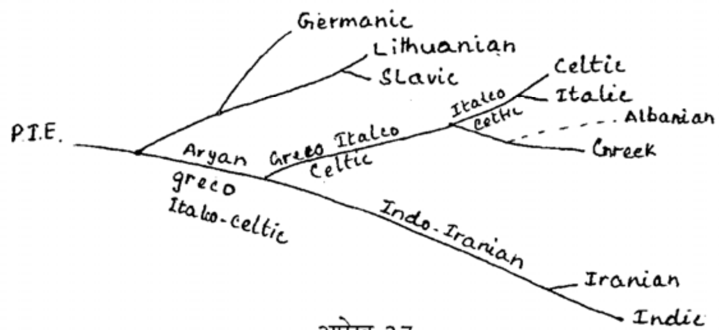
पुनर्निर्माण का कार्य उतना सरल नहीं है जितना इस संक्षिप्त उदाहरण में प्रतीत होता है। ध्वनि-अर्थ की समानता रखने वाले लगभग दो-ढाई सौ सजात शब्दों के चयन के उपरांत उनका सूक्ष्म विश्लेषण किया जाता है। पर्याप्त एवं उचित सामग्री के अभाव में भ्रामक निष्कर्षों तक पहुँचने की संभावना ही अधिक रहती है।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. अमरीकी भाषाविद् सी.एफ. हॉकेट ऐतिहासिक अध्ययन के दो वर्ग बताते हैं- भाषाविषयक व्यक्तिवृत्त linguistic ontogeny (किसी एक व्यक्ति की भाषा में जन्म से लेकर मृत्यु तक घटित परिवर्तन प्रक्रिया) का इतिहास, भाषाविषयक जाति वृत्त linguistic phylogeny (विभिन्न काल अवस्थाओं में भाषाओं की समग्रता में घटित परिवर्तनों का इतिहास)।
2. The Sanskrit language whatever be its antiquity is of a wonderful structure; more perfect that the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refine than either, yet bearing to both of them a stronger affinity, both in the roots of verbs and in the forms of grammar, than could possibly have been produced by accident.
3. Compendium (1861-62) जर्मन में रचित इस पुस्तक श्लाइखर ने 'वंशवृक्ष'

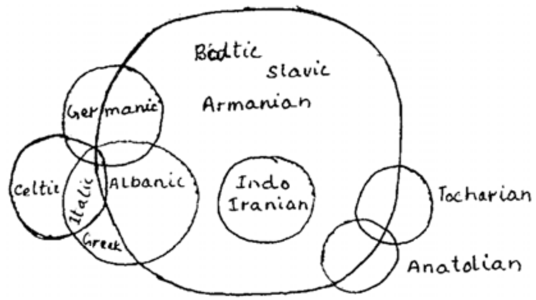
का उल्लेख किया।

4. इसे Stammbaum (वंशवृक्ष) या Pedigree theory भी कहा जाता है।



आरेख-37

5. Schleicher's Indo European family tree as presented in Compendium.
6. Schimidt द्वारा प्रस्तुत भारोपीय परिवार का आरेख—



आरेख-38

7. प्रसिद्ध भाषाशास्त्री होइनिंग्सवाल्ड के मतानुसार- "The procedure where by morphs of two or more sister languages are matched in order to reconstruct the ancestor language is known as the comparative method. P.119, Language Change and Linguistic Reconstruction'
8. इनके इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का नाम An Outline of Comparative Grammar of Indo European Languages है।
9. 'An exception to the first consonant shift'
10. The reconstruction of diachronic phonological rules on the sole evidence of synchronic morphological alternation is known as internal reconstruction. Bynon, T. Historical Linguistics, P. 90.

अर्थविज्ञान

8.1 प्रकृति

भाषाविज्ञान का विवेच्य भाषा है और भाषा की आत्मा उसका अर्थ है अतः अर्थ अध्ययन के अभाव में भाषिक विवेचन पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। यह अर्थ ही भाषा को औचित्य प्रदान करता है और इसके अभाव में भाषा कोलाहल मात्र रह जाती है। शब्द अर्थ अभिव्यक्ति का माध्यम है। दूसरे शब्दों में शब्द साधन हैं और अर्थ साध्य। किंतु जहाँ अर्थ के धारक शब्द मूर्त हैं वहाँ अर्थ अमूर्त व मानसिक है। भाषाविज्ञान का वह क्षेत्र जो शब्द अर्थ के संबंध, अर्थ की सत्ता, अर्थ ज्ञान संबंधी महत्वपूर्ण तथ्यों आदि संकालिक समस्याओं के समाधान के अतिरिक्त द्विकालिक स्तर पर अर्थ-परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं आदि प्रश्नों का अध्ययन-विश्लेषण करता है, अर्थविज्ञान नाम से अभिहित किया जाता है।[1]

प्रश्न उठता है कि अर्थ है क्या? अत्यंत प्राचीन काल से दार्शनिक इस संबंध में विचार-विमर्श करते रहे हैं कि नाम और वस्तु में सत्य क्या है? नाम का जागतिक वास्तविकता से क्या संबंध है? आदि। किंतु सम्प्रति कोई संतोषजनक उत्तर नहीं प्राप्त हुआ। अर्थविज्ञान के सर्वाधिक स्वीकार्य सिद्धांत के अनुसार अर्थ विचार एवं संकल्पनाएँ हैं जो एक भाषा के रूपों के माध्यम से वक्ता के मस्तिष्क से श्रोता के मस्तिष्क में स्थानांतरित होता है। किंतु सभी शब्दों से जुड़ी संकल्पनाएँ समान नहीं होती हैं। कतिपय संकल्पनाओं का संबंध किसी दृश्यमान छवि से होता है (विद्यालय, मेज, कुत्ता, पेड़ आदि) जबकि अन्य (अच्छा, विकास, से, आदि) के विषय में यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनकी कोई दृश्यमान निश्चित छवि नहीं होती है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति इनका साहचर्य पृथक्-पृथक् मानसिक छवियों से स्थापित कर अर्थ-ग्रहण करते हैं। स्पष्ट है कि 'अर्थ' की समस्या बहुत जटिल है और संभवतः इसीलिए कुछ भाषाविद् भाषाविज्ञान का लक्ष्य उच्चरित भाषारूप का अध्ययन मानते हैं तथा भाषा के विश्लेषण, वर्गीकरण एवं परिभाषा के आधार रूप में परंपरा से हो रहे अर्थ-प्रयोग को त्याज्य मानते हैं।

अर्थ-अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि अर्थ के धारक शब्द का वास्तविक/आधारिक अर्थ सही-सही ज्ञात करना अत्यंत कठिन है, यथा- पत्र, समाचार पत्र, अभिनंदन पत्र, पत्रवाहक, पत्रोत्तर, निमन्त्रण पत्र आदि शब्दों में 'पत्र'का आधारिक

अर्थ ज्ञात करने में समस्या आती है। इसी प्रकार अमूर्त शब्द भी अर्थ संबंधी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं, यथा- सच्चाई, कामना, अच्छा आदि शब्दों का आधारिक अर्थ क्या है? और वक्ता इनका सही प्रयोग कैसे सीखता है? यह ठीक-ठीक बता पाना संभव नहीं है। अतः मुख्य समस्याएँ आधारिक अर्थ, बहुअर्थिता आदि से संबंधित हैं। साथ ही शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग अर्थ संबंधी अध्ययन को और अधिक जटिल बनाते हैं। भारतीय मनीषी शब्द में तीन कल्पित शक्तियों की चर्चा करते हैं जिनके आधार पर अर्थ के तीन स्तर स्वीकार किए गए- अभिधार्थ, लक्षणार्थ एवं व्यंजनार्थ। प्रथम का संबंध रूढ़ि एवं परंपरानुमोदित अर्थ से है। इसमें शब्द का कोशीय अर्थ ही महत्वपूर्ण होता है। लक्षणार्थ में शब्द के कोशीय/अभिधार्थ बोध के साथ-साथ प्रयुक्त शब्द से संपृक्त अन्य गुण-विशेषता का आरोप होता है जबकि भाषा में स्थूल रूप से दृश्यमान या श्रव्यमान शब्द व्यंजना की दृष्टि से वही नहीं होते हैं। भाषा के उच्चरित रूप में प्रयुक्त पदों के अतिरिक्त कुछ ऐसी ध्वन्यात्मक योजना भी सुनाई पड़ती है जिसके कारण खंडीय स्तर पर अभिव्यंजित अर्थ से भिन्न अर्थ का बोध होता है। वाक्यांतर्गत इस योजना के सक्रिय रहने पर अभिधार्थ रहते तो हैं पर वे गौण हो जाते हैं और अधिखंडात्मक या रागात्मक लक्षणों के कारण नवीन अर्थ ध्वनित होता है, यथा- तुम बिल्कुल निर्दोष हो'। इस वाक्य को विशिष्ट सुर में उच्चरित करने पर अभिधार्थ पूर्णरूपेण बाधित न होकर गौण हो जाता है तथा व्यंग्यार्थ/व्यंजना प्रमुख हो जाती है और यह प्रतिभासित करती है कि वक्ता को दोषहीनता का कथन मान्य नहीं है अर्थात् वक्ता के अनुसार व्यक्ति निर्दोष नहीं दोषी है।

8.2 अर्थ के प्रकार

कुछ समय पूर्व तक भाषाविदों का ध्यान **कोशीय अर्थ** पर केंद्रित था किंतु सम्प्रति **वाक्यीय अर्थ** को अधिक महत्व दिया जा रहा है क्योंकि एक के अभाव में दूसरे का ज्ञान संभव नहीं है। जहाँ कोशीय इकाइयाँ अर्थ के लिए वाक्य पर आश्रित हैं वहीं वाक्य का अर्थ वाक्यान्तर्गत आने वाली कोशीय इकाइयों पर निर्भर करता है। वाक्य की व्याकरणिक संरचना अर्थगत भिन्नता स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण होती है अतः अर्थशास्त्री वाक्यीय अर्थ के घटक के रूप में **व्याकरणिक अर्थ** को प्रतिपादित करते हैं। अनेक वाक्य अर्थपूर्ण कोशीय इकाइयों द्वारा रचित होने पर भी निरर्थक होते हैं, यथा—

जाता मोहन कल पेड़ स्कूल के पास है।

वस्तुतः यह हिंदी वाक्यीय संरचना के आधार पर वाक्य ही नहीं कहलाएगा। दूसरी स्थिति वह है जब कि पूर्णतः व्याकरणिक होते हुए भी वाक्य निरर्थक होता है, यथा—

* जूते ने बिल्ली को मारा।

* हमने देखी है उन आँखों की महकती खुशबू।
* कुर्सी को जुकाम हो गया।

स्पष्ट है कि व्याकरणिक दृष्टि से सही वाक्य का आर्थी पक्ष भी पूर्ण होना अनिवार्य है। अतः अर्थ की जटिलता को समझने के लिए व्याकरणिक अर्थ का ज्ञान आवश्यक है। प्रायः **संकल्पनात्मक** (conceptual) एवं **सहचारी अर्थ** (associative) का भी उल्लेख मिलता है। शब्द द्वारा संवहित अर्थ के आधारिक एवं आवश्यक घटक संकल्पनात्मक अर्थ की सीमा में आते हैं, यथा- 'सुई' शब्द के कतिपय आधारिक घटक हैं—नुकीली, छोटी तथा स्टील से बनी, ये घटक संकल्पनात्मक अर्थ के अंग होंगे। सुई शब्द का प्रयोग कतिपय लाक्षणिक अर्थों को भी द्योतित करता है। पूर्व अनुभव के आधार पर यह शब्द श्रोता को 'दर्द' 'चुभना' जैसे अर्थ का भी संज्ञान करा सकता है। श्रोता के अपने अनुभव के आधार पर ध्वनित ये अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं और सहचारी अर्थ के अंग होते हैं। प्रायः साहित्यकार, कवि, विज्ञापनदाता के शब्द-प्रयोग में सहचारी अर्थ मुख्य हो जाता है। भाषाविद् के लिए सहचारी अर्थ पक्ष की तुलना में संकल्पनात्मक अर्थ का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण है। भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन अर्थविज्ञान के अतिरिक्त **संकेत प्रयोग विज्ञान** (Pragmatics) के अंतर्गत भी होता है। इसकी विशेषता वक्ता की दृष्टि से अर्थ पक्ष का अध्ययन है और विद्वानों द्वारा स्थापित **उक्ति अर्थ** का क्षेत्र संकेत प्रयोग विज्ञान है।

आर्थी अभिलक्षण भाषा की प्रकृति को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। प्रश्न उठता है कि आर्थी उपागम भाषा की प्रकृति को किस प्रकार उद्घाटित करता है। हिंदी भाषा के निम्नलिखित वाक्यों को देखिए--

1. सब्जी ने आदमी खाया।
2. मेरी बिल्ली भाषाविज्ञान पढ़ती है।
3. मेज गाना सुन रही है।

ध्यातव्य है कि इन वाक्यों में प्राप्त विलक्षणता/विषमता इनकी वाक्यीय संरचना द्वारा उद्भूत नहीं है। ये वाक्य हिंदी वाक्य संरचना की दृष्टि से सुगठित हैं, यथा--

सब्जी ने	आदमी	खाया।
सप	स	क्रिप

यह वाक्य वाक्यीय दृष्टि से शुद्ध होते हुए भी आर्थी दृष्टि से विषम है। जबकि 'आदमी ने सब्जी खाई' एक पूर्णत ग्राह्य वाक्य है। उपरोक्त उदाहरण में उत्पन्न विलक्षणता का क्या कारण है? हमें यह वाक्य विचित्र क्यों प्रतीत होता है। इसका कारण 'सब्जी' संज्ञा शब्द के संकल्पनात्मक अर्थ के घटकों से संबंधित है जो 'आदमी' संज्ञा शब्द के घटकों से पूर्णत भिन्न है। विशेषत उन सन्दर्भों में जब इन संज्ञा शब्दों का प्रयोग कर्ता के रूप में 'खाया' क्रिया के साथ किया जाए। 'खाया' क्रिया के कर्ता के

रूप में उन्हीं संज्ञाओं का प्रयोग हो सकता है जो खाने में समर्थ हों और 'सब्जी' संज्ञा में यह गुण नहीं होता है (जबकि आदमी संज्ञा में होता है) अतः उपरोक्त वाक्य में विषमता आ जाती है। 'खाया' क्रिया के कर्ता के रूप में प्रयुक्त संज्ञा शब्द के निर्णायक अर्थ घटकों के निर्धारण द्वारा इस निष्कर्ष को अधिक सामान्यीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार शब्दों के अर्थ घटकों को + चेतन (= जो चेतन प्राणी है) या - अचेतन (= चेतन प्राणी नहीं है) आदि अभिलक्षणों द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया अर्थ को आर्थी अभिलक्षण के रूप में विश्लेषित करने का एक माध्यम है। भाषा के प्रत्येक शब्द के अर्थ को, अन्य शब्दों से पृथक करने के लिए + चेतन, -चेतन, + मानवीय, -मानवीय, + पुरुषवाचक, -पुरुषवाचक आदि आधारित अभिलक्षणों के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है, यथा- हिंदी की संज्ञा शब्द तालिका के कतिपय सदस्यों के अर्थ प्रभेदक अभिलक्षणों को निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है—

	मेज	गाय	आदमी	लड़की	औरत	लड़का	सब्जी
चेतन	-	+	+	+	+	+	-
मानवीय	-	-	+	+	+	+	-
पुरुषवाचक	-	-	+	-	-	+	-
प्रौढ़	-	+	+	-	+	-	-

आरेख-39

यह विश्लेषण एक सीमा तक शब्दों के आधारी अर्थ का ज्ञान कराता है किंतु यह उपागम समस्यारहित नहीं है। किसी भी भाषा के सभी संज्ञा शब्दों के आर्थी अभिलक्षणों को इस तालिका में बने वर्गों के आधार पर वर्गीकृत करना संभव नहीं है यथा- मानवता, धमकाना इत्यादि शब्दों को इस तालिका में नहीं रखा जा सकता है।

8.3 कोशीय संबंध

कभी-कभी शब्दों के अर्थ भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किए जाते हैं, यथा—

कमल - एक प्रकार का फूल

उथला - जो गहरा न हो

यहाँ शब्द की व्याख्या उसके घटक अभिलक्षणों द्वारा न होकर अन्य शब्दों से संबंध के आधार पर की गई है। भाषा की आर्थी व्याख्या की यह प्रक्रिया कोशीय संबंधों का विश्लेषण कहलाता है। विभिन्न भाषाओं में प्राप्त मुख्य **कोशीय संबंध** निम्नलिखित हैं—

8.3.1 पर्यायवाचकता

विद्वानों का विचार है कि एक आदर्श भाषा में प्रत्येक रूप/शब्द का एक

निश्चित अर्थ होता है तथा प्रत्येक अर्थ सिर्फ एक निश्चित रूप से संबंधित होता है किंतु वास्तव में यह आदर्श स्थिति किसी भी प्राकृतिक भाषा में सदैव नहीं मिलती है। प्रायः भाषाओं में दो या अधिक शब्द/रूप एक अर्थ से संबंधित मिलते हैं। (आदमीः व्यक्ति/जलःपानी) ऐसे शब्दों को पर्यायवाची (synonym) तथा इस संबंध को पर्यायवाचकता कहते हैं। अस्तु किसी एक वस्तु का संकेत करने वाला अथवा मुख्य विवक्षा से युक्त समान अर्थ रखने वाला शब्द पर्याय कहलाता है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि यह आर्थी समानता सदैव पूर्ण समान नहीं होती है। अनेक परिस्थितियों में जहाँ एक शब्द वाक्य में उपयुक्त प्रतीत होता है वहीं उसका पर्याय अनुपयुक्त लगता है, यथा- मैं जीत गया

इस वाक्य में 'जीत' के स्थान पर 'विजय' का प्रयोग अनुपयुक्त है। कह सकते हैं कि कोई भी भाषा पूर्ण या शुद्ध पर्याय स्वीकार नहीं करती है। शब्द के पर्याय वस्तुओं के आकार-प्रकार, गुण-दोष एवं व्यवहार आदि के आधार पर होते हैं तथा कहीं ये अभिधार्थ बोधक होते हैं तो कहीं लक्षणार्थ, यथा- तरबूज को आकार-प्रकार के आधार पर 'मांसल सुवर्तुल' एवं स्वाद के आधार पर 'सुखांश' कहते हैं।

8.3.2 समनामता

भाषाओं में कतिपय रूपों का संबंध एकाधिक भिन्न अर्थों से होता है। ये शब्द **समनामी** (homonym) कहलाते हैं। इन शब्दों के विविध अर्थ संदर्भ एवं प्रकरण सापेक्ष होते हैं, यथा—

मुझे सोना है।	आग पर जल छिड़क दो।
मुझे सोना खरीदना है।	आग से घर जल गया।

यहाँ एक रूप 'सोना' के दो असंबंधित अर्थ मिलते हैं। इस प्रकार समनामी वे शब्द हैं जिनके भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं किंतु जो दुर्घटनावश समान रूपीय होते हैं।

आम -	आम
फल -	फल
कनक -	कनक
माँग -	माँग

8.3.3 अनेकार्थकता

जहाँ अर्थ संबंधी समानता समान रूप शब्द से संपृक्त होती है वहाँ पारिभाषिक शब्दावली में अनेकार्थी (polysemy) का उल्लेख किया जाता है अर्थात् एक रूप/ शब्द (लिखित या उच्चरित) एकाधिक परस्पर संबंधित अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। यह अनेकार्थकता प्रायः विस्तार का परिणाम होती है, यथा—

सिर	मनुष्य का जानवर का	आँख	मनुष्य की जानवर की सुई की

अनेकार्थी शब्द प्रसंग व प्रकरण सापेक्ष होते हैं। प्रसंग के अनुसार ही इसकी सारिणी में से किसी एक का चयन प्रयोक्ता द्वारा किया जाता है।

समनामता व अनेकार्थता के मध्य सदैव स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। कोश के आधार पर जो मुख्य पृथकता मिलती है वह यह है कि अनेकार्थी शब्द एक प्रविष्टि में होते हैं, जिसके अंतर्गत विविध अर्थों का विवरण दिया जाता है जबकि समनामी शब्दों की चर्चा भिन्न-भिन्न प्रविष्टियों में की जाती है। एक ही शब्द अनेकार्थी व समनामी दोनों प्रकार से भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में भी प्रयोग किया जा सकता है, यथा—

राम का घर है।
राम अच्छे घर का है।　　　　अनेकार्थी
गाँव में कुल बीस घर हैं।
राम में अनेक बुराइयाँ घर कर गई हैं।　　　　समनामता

कभी-कभी एक ही शब्द समनामता व पर्यायवाचकता दोनों विशेषताओं से युक्त मिलता है, यथा-

कृष्ण -	मुरलीमनोहर, कालियामर्दन, कन्हाई (पर्यायवाची)
कृष्ण -	भगवान विशेष का नाम काला

रचना एवं उच्चारण की दृष्टि से समान किंतु अर्थगत भिन्नता प्रदर्शित करने वाले ये समनामी शब्द दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं-

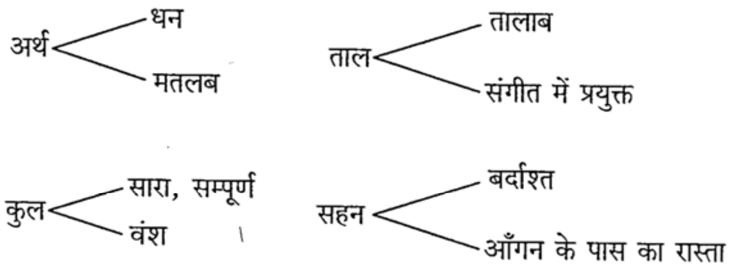
(अ) समस्वन (homophone)- जिन शब्दों में ध्वन्यात्मक अर्थात् उच्चारणगत समानता हो किंतु लिपि एवं अर्थ में पृथकता हो उन्हें समस्वन कहते हैं, यथा- अंग्रेजी में

root - route
site - sight
see - sea

(ब) समलेख (homograph)- जिन शब्दों में वर्तनी की दृष्टि से समानता हो किंतु अर्थ की भिन्नता होती है उन्हें समलेख कहते हैं, यथा—आलेख 40 देखें

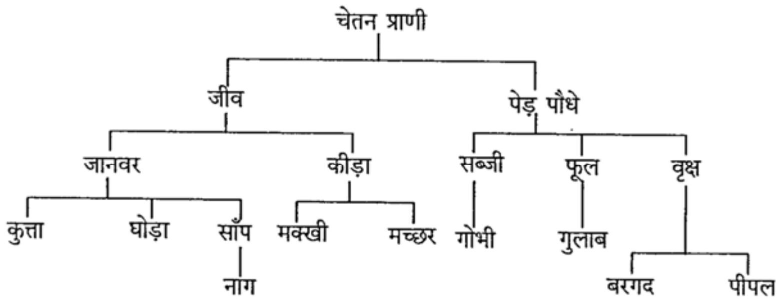
8.3.4 अवनामिता

जब किसी एक रूप/शब्द का अर्थ किसी अन्य रूप के अर्थ में समाविष्ट होता है तब इस संबंध को **अवनामिता** (hyponymy) कहते हैं, यथा-गुलाब-फूल, शेर-



आरेख-40

जानवर, गाजर-सब्जी, केला-फल आदि। अर्थात् यदि कोई वस्तु गुलाब है तो वह अवश्य ही फूल है। इस प्रकार फूल का अर्थ गुलाब के अर्थ में समाविष्ट है या कह सकते हैं कि गुलाब फूल का अवनाम (hyponym) शब्द है। यहाँ हमारी दृष्टि शब्दों के अर्थ में प्राप्त सौपनिक संबंधों पर रहती है। हिंदी की शब्द तालिका- फूल, पेड़, जीव, कुत्ता, घोड़ा, साँप, मक्खी, नाग, मच्छर, सब्जी, गुलाब, बरगद, पीपल, गोभी- के सदस्यों के अर्थ के मध्य प्राप्त सौपानिक संबंध निम्नांकित तालिका द्वारा स्पष्ट किए जा सकते हैं—



आरेख-41

इस आरेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि मच्छर कीड़ा का अवनाम है तथा गोभी सब्जी का तथा बरगद और पीपल वृक्ष के अवनाम है और एक दूसरे के **सहअवनाम** (co-hyponym) है। प्रायः अनुवाद करते समय अवनाम शब्दों से काम चला लिया जाता है, यथा- नाग को snake रूप में अनूदित किया जाता है। कभी-कभी अर्थ स्पष्टीकरण अवनाम शब्द द्वारा किया जाता है जैसे नाग का अर्थ क्या है? प्रायः इस प्रश्न का उत्तर 'साँप' मिलता है।

8.3.5 विपरीतार्थकता

विपरीत अर्थ द्योतित करने वाले शब्द **विपरीतार्थक/विलोम** (antonym) कहलाते हैं, यथा–

विष : अमृत

सार्थक : निरर्थक

इसके तीन वर्ग मिलते हैं। जब एक इकाई का खंडन अन्य इकाई की पुष्टि करे अथवा एक की पुष्टि दूसरे का खंडन करे तो यह संबंध **परिपूरकता** कहलाता है जैसे 'राम विवाहित है' इस बात का द्योतक है कि राम अविवाहित नहीं है। कोशीय इकाइयों के युग्मों में प्राप्त वह संबंध जहाँ एक का समर्थन दूसरे का खंडन करें विपरीतार्थकता कहलाता है। ये पूर्ण विलोम होते हैं, यथा–

मोटा - पतला

एक - अनेक

छोटा - बड़ा

तृतीय संबंधों को **संपर्कता** की संज्ञा देते हैं। ये संबंध पति-पत्नि, क्रय-विक्रय जैसे विपरीत युग्मों में प्राप्त होते हैं। अनेक भाषाविद इस वर्गीकरण की तुलना में पूर्ण/आंशिक वर्गीकरण को महत्व देते हैं। एक-अनेक पूर्ण विलोम का उदाहरण है। नकारात्मक प्रत्यय संयुक्त होकर रचित विलोम आंशिक कहलाते हैं–

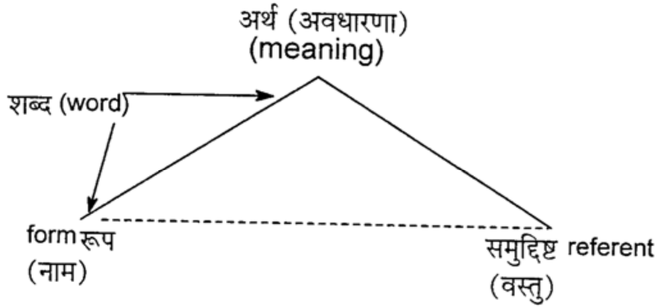
आधार - निराधार

विश्वास - अविश्वास

स्पष्ट है कि विलोम तुलनात्मक अर्थ प्रदान करते हैं और भाषा में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है।

8.4 संदर्भ

पारंपरिक व्याकरण में शब्द को वाक्य विज्ञान तथा अर्थविज्ञान की आधारिक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया। वहाँ शब्द एक 'संकेत' था जिसके दो घटकों को विवेचन के लिए 'रूप' तथा उसका 'अर्थ' यह नाम दिए गए। प्रारंभिक ग्रीक दार्शनिकों-प्लेटो, सुकरात आदि ने यह प्रश्न उठाया कि शब्दों का उनके द्वारा संकेतित वस्तुओं से क्या संबंध है? इन दार्शनिकों के मतानुसार शब्द तथा वस्तु के मध्य घटित आर्थी संबंध **नामन** (naming) के होते हैं। प्रायः सभी पारंपरिक वैयाकरणों ने शब्द के अर्थ और उसके द्वारा नामकरण की गई वस्तुओं के मध्य के अंतर को जानने का प्रयास किया। निम्नांकित संकेत वैज्ञानिक त्रिकोण (semiotic triangle) इस संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।



आरेख-42

आधुनिक समय में शब्द द्वारा नामित वस्तुओं के लिए पारिभाषिक शब्द **समुद्दिष्ट** (referent) का प्रयोग मिलता है तथा शब्द एवं वस्तु/समुद्दिष्ट के मध्य घटित संबंध को **संदर्भ** (reference) की संज्ञा दी जाती है। इस विचारधारा के अनुसार शब्द वस्तुओं को संकेतित या नामित नहीं वरन संदर्भित करते हैं। उपर्युक्त आरेख में रूप एवं समुद्दिष्ट के मध्य खिंची रेखा इनके अप्रत्यक्ष संबंध की ओर संकेत करती है। यह आरेख पारंपरिक व्याकरण के इस महत्वपूर्ण बिंदु को स्पष्ट करता है कि शब्द एक विशेष रूप के साथ एक विशिष्ट अर्थ के संयोजन का परिणाम होते हैं।

8.5 प्रसंग

अर्थ की चर्चा में **प्रसंग** (context) के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। दैनिक व्यवहार में प्रायः किसी शब्द का अर्थ पूछे जाने पर हम उसका प्रसंग जानना चाहते हैं और अनेक स्थितियों में शब्द को उसके प्रसंग में रखे बिना उसका अर्थ स्पष्ट करना असंभव होता है। अनेक प्रकार के प्रसंगों में **भाषिक प्रसंग** (linguistic context) या **समपाठ** (cotext) का विशेष महत्व होता है। किसी वाक्य या पदबंध में किसी शब्द के साथ आगत अन्य शब्द उसके समपाठ कहलाते हैं और शब्द के अर्थ पर इनका विशेष प्रभाव होता है, यथा- हिंदी के समनाम शब्द 'जल' का अर्थ उसके भाषिक प्रसंग अर्थात वाक्य में प्रयुक्त अन्य शब्दों के ज्ञान के बिना नहीं किया जा सकता है। भाषिक प्रसंग के साथ-साथ **भौतिक प्रसंग** (physical context) भी अर्थ के स्पष्टीकरण में सहायक होता है, यथा- अग्निकुण्ड में प्रज्जवलित आग को हम इस भौतिक प्रसंगानुरूप 'जल' का अर्थ ग्रहण करेंगे। स्पष्ट है कि व्यक्ति द्वारा पढ़ी या सुनी गई भाषिक अभिव्यक्तियों का अर्थ ज्ञान समय और स्थान से घनिष्ठत जुड़ा रहता है।

8.6 स्थिति निर्देशी अभिव्यक्तियाँ

भाषा के अनेक शब्दों के अर्थ भौतिक प्रसंग के अभाव में (विशेषत वक्ता के

भौतिक प्रसंग) लेशमात्र भी समझे नहीं जा सकते हैं, यथा—हिंदी के यहाँ, वहाँ, तुम, यह, वह, उस, तुम्हारा आदि शब्द। कई वाक्यों में यह ज्ञात करना लगभग असंभव होता है कि कौन, किससे, कहाँ और कब बात कर रहा है, उदाहरणार्थ- वे आज यहाँ नहीं हैं अतः उन्हें यह कल करना ही पड़ेगा। अनेक स्थिति निर्देशी अभिव्यक्तियों (deictic expressions) के प्रयोग के कारण, प्रसंग के अभाव में हिंदी का यह वाक्य अस्पष्ट है तथा भौतिक प्रसंग का ज्ञान ही इसका अर्थ स्पष्ट कर सकता है। इसी प्रकार 'मैं वहाँ जा रहा हूँ' वाक्य में 'वहाँ' से तात्पर्य-कार्यालय, घर, बाजार, गाँव आदि अनेक स्थानों से लिया जा सकता है अतः 'वहाँ' एक स्थिति निर्देशी अभिव्यक्ति है जिसका अर्थ वक्ता द्वारा निर्दिष्ट स्थान के आधार पर ही ज्ञात किया जा सकता है।

8.7 पूर्वमान्यता

दैनिक जीवन में जब कोई वक्ता स्थिति निर्देशी अभिव्यक्ति 'वहाँ' का प्रयोग करता है तब वह यह पूर्वानुमान करता है कि श्रोता को 'वहाँ' द्वारा संकेतित स्थान का पता है अर्थात वक्ता अपने वक्तव्यों का गठन इस पूर्वानुमान के साथ करता है कि श्रोता को इनका पहले से ही ज्ञान है। कभी-कभी श्रोता इनको समझने में गलती भी कर देता है। वक्ता द्वारा किए गए पूर्वानुमान जिनका श्रोता को पता होता है **पूर्वमान्यता** (presupposition) कहलाते हैं। 'तुम्हारा भाई बाहर तुम्हारा इंतजार कर रहा है' इस वाक्य द्वारा यह पूर्वमान्यता निश्चित है कि श्रोता का कोई भाई है। इसी प्रकार यदि कहा जाए कि 'तुम देर से क्यों आए?' तब यह स्पष्ट है कि श्रोता समय पर नहीं पहुँचा है। पूर्वमान्यता की सत्यता जाँचने का एक सरल उपाय वाक्य को नकारात्मक बनाना है, यथा- 'मेरी पेंसिल टूटी है।' 'मेरी पेन्सिल नहीं टूटी है।' यद्यपि इन वाक्यों के अर्थ एक दूसरे से विपरीत हैं, किंतु दोनों की अंतस्तलीय पूर्वमान्यता 'मेरे पास एक पेंसिल है' समान और सत्य हैं।

8.8 आशय

अर्थ-अध्ययन की दृष्टि से **आशय** (sense) महत्त्वपूर्ण होता है। किसी भाषिक अभिव्यक्ति का आशय उसके अनेकानेक प्रयोगों के आधार पर ज्ञात विसंदर्भीकृत अर्थ होता है, जो एक कोश में प्राप्त होता है, जहाँ उसकी अभिव्यक्ति अन्य शब्दों द्वारा की जाती है। कह सकते हैं कि एक भाषिक अभिव्यक्ति 'अ' का आशय अन्य भाषिक अभिव्यक्ति 'ब' द्वारा उसके अर्थ का वर्णन है। इस वर्णन में प्रायः रूढ़ आर्थी इकाइयाँ (semantic premitives)[2] प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार

इतावली-	cane
अंग्रेजी-	dog
हौसा-	care

स्वाहली-	mbwa
पोलिश-	pies
हिंदी-	kutta

इन अनुवाद समतुल्यों का आशय जहाँ परस्पर एक दूसरे से पूर्ण समानता रखता है वहाँ 'श्वानीय चौपाया' से भी रखता है। यह विशेषता ही इनको पूर्ण समतुल्य बनाती है। कभी-कभी एक भाषिक अभिव्यक्ति का आशय दूसरे में समाविष्ट या अतिछादित भी हो जाता है, यथा- प्रायः माँ एवं पुत्री शब्दों के आशय अतिछादित होते हैं क्योंकि दोनों में ही स्त्री का आशय पूर्णत सम्मिलित है। संदिग्धार्थी अभिव्यक्तियों के एकाधिक आशय हो सकते हैं, यथा—

दौड़ते हुए कुत्ते को मत मारो

इस वाक्य में 'दौड़ते हुए' का एक आशय है 'कुत्ता जो दौड़ रहा है...' तथा दूसरा आशय है 'व्यक्ति दौड़ रहा है...।'

8.9 प्रजनक अर्थविज्ञान

चॉम्स्की की पुस्तक 'सिंटेक्टिक स्ट्रक्चर्स' के प्रकाशन के प्रारंभिक पाँच वर्षों में अर्थविज्ञान का उल्लेख नहीं मिलता है। आरंभ में अर्थ को वाक्यीय वर्णन के अंतर्गत रखा गया[3] तथा भाषिक सिद्धांतों की उपयुक्तता की परीक्षा इस आधार पर की गई कि वाक्यीय नियमों द्वारा प्रजनित संरचना कहाँ तक आर्थी व्याख्या करने में समर्थ है। धीरे-धीरे चॉम्स्की स्वयं स्वतंत्र आर्थी सिद्धांत के महत्व को स्वीकारने लगे किंतु इस कार्य को परिणाम दिया दो नवयुवक दार्शनिकों—**जे. काट्स** तथा **जे. फ़ोडर** ने जो मैसेचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी में चॉम्स्की के साथ काम करने आए थे। इन्होंने व्याकरणिक सिद्धांत एवं अर्थ सिद्धांत के मध्य के संबंध से जुड़ी समस्याओं के समाधान का प्रयास किया तथा रूपांतरण नियम अर्थ को कैसे प्रभावित करते हैं? किन पारंपरिक आर्थी समस्याओं के व्याकरणिक समाधान खोजे जा सकते हैं और किन के लिए विशेष आर्थी नियमों की आवश्यकता है? आदि प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास किया। इनकी मान्यता थी कि अंतस्तलीय संरचना में ही अर्थ निहित होना है तथा रूपांतरण द्वारा प्राप्त वाक्य की बाह्य संरचना भी उसी अर्थ को देती है जो अंतस्तलीय संरचना का होता है। इन विद्वानों ने वक्ता के भाषिक ज्ञान द्वारा वाक्य निर्वचन की क्षमता तथा वक्ता की उस वाक्य को संसार के प्रति अपने दृष्टिकोण के आधार पर विशिष्ट व्याख्या करने की क्षमता के मध्य विभाजक रेखा खींची। किसी कथन का संदर्भ कथन से संबंधित निर्वचनों की संख्या को सीमित कर देता है और निर्वचनों की ये संख्या वक्ता की भाषिक दक्षता का अंग है जिसकी व्याख्या आर्थी सिद्धांत द्वारा होनी चाहिए। काट्स एवं फोडर आर्थी सिद्धांत का उद्देश्य वक्ता की क्षमता की व्याख्या एवं वर्णन मानते हैं। आर्थी सिद्धांत के निम्नांकित तीन कार्य हैं—

(अ) किसी वाक्य के आशय को ज्ञात करना,

(ब) आर्थी कमियों को पहचानना,

(इ) वाक्यों के मध्य प्राप्त भावानुवाद को निश्चित करना।

इन्होंने इनकी व्याख्या के लिए दो अंतराश्रित घटकों की स्थापना की- प्रथम कोश, जिससे यह ज्ञात होता है कि वाक्य निवर्चन में प्रत्येक कोशीय इकाई की क्या भूमिका है, द्वितीय—नियमों का समुच्चय-प्रक्षेप नियम, जिनका कार्य यह निर्धारित करना है कि किस प्रकार कोशीय इकाइयों के व्यवस्थित संयोग वाक्य को अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस सिद्धांत का अर्थ-विश्लेषण वाला अंश व्याख्यापरक था अतः इसका नाम **व्याख्यायक अर्थविज्ञान** (interpretative semantics) पड़ा।

1967 में लेकॉफ, रॉस तथा मैकॉले आदि भाषाविदों ने वाक्य विश्लेषण के लिए अर्थ विज्ञानपरक मॉडल प्रस्तुत किया और यह प्रतिपादित किया कि अंतस्तलीय संरचना ही अर्थ का पर्याय है। उनके मतानुसार वाक्य की प्रजनक शक्ति उसके अर्थ-घटक में निहित होती है क्योंकि बाह्य संरचना में भिन्न प्रतीत होने वाले वाक्यों के जोड़े (कर्तृवाच्य-कर्मवाच्य; सकारात्मक-नकारात्मक) अर्थ की दृष्टि से समान होते हैं। चॉम्स्की ने अंतस्तलीय संरचना के निम्नलिखित गुण बताए थे—

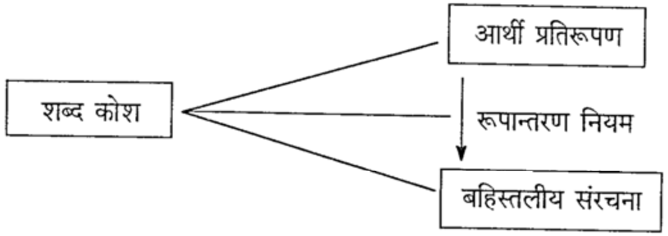
(अ) यह सरलतम वाक्यीय घटक का आधार होती है।

(आ) वह स्थान जहाँ सहगामिता एवं चयनपरक बन्धनों को परिभाषित किया जाता है।

(इ) वह स्थान जहाँ आधारिक व्याकरणिक संबंधों को परिभाषित किया जाता है।

(ई) जहाँ कोश द्वारा कोशीय इकाइयाँ जोड़ी जाती हैं।

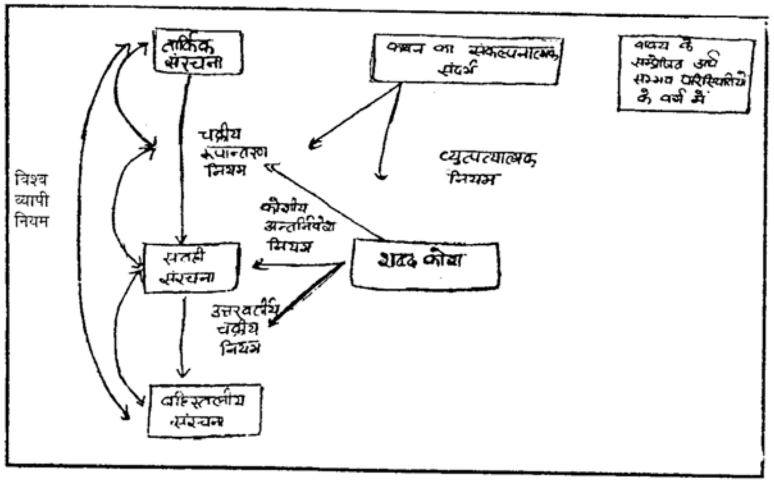
लेकॉफ तथा रॉस के मतानुसार चॉम्स्की द्वारा उल्लिखित प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय विशेषताएँ आर्थी प्रतिरूपण के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और ये विशेषताएँ अंतस्तलीय संरचना में मिलती हैं तथा चतुर्थ का संबंध कोशीय इकाइयों के व्युत्पत्ति में अंतर्निविष्ट होने के पूर्व लागू होने वाले रूपांतरण से है। इन विद्वानों ने अंतस्तलीय संरचना रहित इस सिद्धांत को प्रजनक आर्थी सिद्धांत (Generative Semantics) नाम दिया। इस प्रकार अमूर्त वाक्यविज्ञान से प्रजनक आर्थी विश्लेषण की दिशा में लिए गए कदम में इस विचार का खंडन किया गया कि कोशीय अंतर्निवेश रूपान्तण नियमों के पूर्व होने चाहिए। इन अमूर्त वाक्यशास्त्रियों ने अंतस्तलीय संरचना के स्तर को पूर्णत त्याज्य माना और पहले से चली आ रही इस मान्यता का खंडन किया कि वाक्यीय तथा आर्थी प्रक्रिया मौलिक रूप से पृथक है। प्रजनक अर्थ विज्ञान का प्रारम्भिक प्रारूप निम्नवत् था—



आरेख-43

इस प्रारूप के अनुसार आर्थी एवं वाक्यीय प्रतिरूपण समान रूपात्मक प्रकृति के होने चाहिए अन्यथा वाक्यीय एवं आर्थी नियमों के मध्य कहीं अवरोध का बिंदु होगा।

1972 में लेकॉफ ने प्रजनक अर्थविज्ञान का एक नवीन प्रारूप प्रस्तुत किया—



आरेख-44

प्रजनक अर्थशास्त्री इस विषय में विस्तृत एवं स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करने में असफल रहे कि किस प्रकार तार्किक संरचनाएँ बहिस्तलीय संरचनाओं में परिवर्तित होती हैं। यद्यपि इन विद्वानों ने अनेक जटिल समस्याएँ उठाई किंतु वे महत्वपूर्ण व्याकरणिक तथ्य की व्याख्या में असमर्थ थे तथा उनके द्वारा प्रस्तुत वर्णन अस्पष्ट और भ्रामक थे। इस प्रकार न्यूमेयर के विचार से यह सिद्धांत अनेक भ्रांतियों को जन्म देता हुआ धीरे-धीरे स्वयं ही अपने विनाश का कारण बना।[4]

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में अर्थ संबंधी विवेचन को अर्थविज्ञान नाम दिया गया-
   शुश्रुआ श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
   ऊहापोहाऽर्थ विज्ञानं तत्वज्ञानं च धी गुणाः।।
   आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अर्थविज्ञान की महत्वपूर्ण स्थिति के लिए फ्रांसीसी विद्वान माइकेल ब्रील को श्रेय जाता है। फ्रांसीसी भाषा का शब्द Semantique सर्वप्रथम ब्रील द्वारा ही प्रयुक्त किया गया।
2. वे संकल्पनाएँ जो बिना किसी परिभाषा के समझी जा सकें और अन्य संकल्पनाओं की व्याख्या में सहायता प्रदान करें उन्हें रूढ़ आर्थी इकाइयाँ कहते हैं। 17वीं शताब्दी के दार्शनिक देकार्ते, पास्कल एवं लिबनिज़ ने सर्वप्रथम इनकी चर्चा की।
3. In general, as semantic description becomes deeper, what appear to be semantic questions fall increasingly within its scope.... Chomsky. The Logical Basis of Linguistic Theory. p.936.
4. (a)... in general, generative semantics came away very much a loser. Newmeyer, Linguistic Theory in America, p.162.
   (b)... the fact is that generative sematics DESTROYED ITSELF. Ibid, p.167.

समाज भाषाविज्ञान

9.1 संस्कृति

मानव संसार के जीवधारियों में सर्वाधिक विवेकशील प्राणी है क्योंकि इसके पास बुद्धि तथा ज्ञान की निधि है। अन्य प्राणियों की भांति वह कुछ मूल प्रवृत्तियों सहित जन्म लेता है और अपनी बौद्धिक शक्ति के उपयोग से इनको शोधता है। साथ ही मनुष्य समाज में रहकर भी बहुत कुछ अर्जित करता है। समाज द्वारा अर्जित यह व्यवहार, अभिलक्षण एवं विशेषताएँ संस्कृति की परिधि में आते हैं। संस्कृति शब्द कृ धातु में सम् उपसर्ग एवं क्तिन् प्रत्यय के संयोग से निर्मित हुआ है जिसका अर्थ है साफ या परिष्कृत करना। इस प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में किसी विशिष्ट समाज के अंतर्गत प्राप्त जीवनयापन की पद्धति, विचार, प्रथाएँ, रीतियाँ, मान्यताएँ, विश्वास आदि सभी समाहित हैं।[1] राबर्ट स्टीड के विचारानुसार, ''यह संस्कृति ही है जो एक व्यक्ति को अन्य सब व्यक्तियों से एक समूह को अन्य सभी समूहों से और एक समाज को दूसरे समाजों से पृथक करती है।'' टायलर के मतानुसार, ''संस्कृति वह जटिल समग्र है, जिसके अंतर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथाएँ तथा अन्य आदतें एवं क्षमताएँ सम्मिलित हैं, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।'' किसी भी अर्जित व्यवहार की भाँति संस्कृति के दो पक्ष- भौतिक एवं मानसिक होते हैं। सभ्यता संस्कृति के भौतिक पक्ष का द्योतक है और यह समाज द्वारा अपने अस्तित्व हेतु विकसित साधनों, उपकरणों एवं सुविधाओं के समवाय का संकेतक है। डब्ल्यू ग्रीन के विचारानुसार, ''एक संस्कृति केवल तभी सभ्यता बनाती है जब उसके पास एक लिखित भाषा, विज्ञान, दर्शन, विशेषीकरण वाला श्रम-विभाग, एक जटिल प्राविधिक और राजनैतिक पद्धति हो।'' सभ्यता एवं संस्कृति के मध्य अंतर स्थापित करते हुए श्री वेबर ने कहा, ''सभ्यता में उपयोगी भौतिक पदार्थ और उसको निर्माण करने तथा प्रयोग करने की विधियाँ शामिल होती हैं जबकि संस्कृति में किसी समूह के आदर्श, मूल्य और मानसिक तथा भावनात्मक पहलू सम्मिलित होते हैं।''

संस्कृति के मानसिक पक्ष का संबंध मानव एवं उसके समाज की अपने पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया, भावात्मक संबंध, विचारणा, आदर्श, मान्यताओं आदि से होता है। इस प्रकार जहाँ सभ्यता भौतिक विकास का समानार्थी है वहाँ संस्कृति बौद्धिक उन्नति

का पर्याय एवं व्यक्ति चेतना की सम्यक् क्रियाशीलता का सामाजिक तथा सामासिक रूप है। संस्कृति एक निश्चित समाज के रीति-रिवाज संस्कार, आदर्श आदि को भावी पीढ़ी को इस प्रकार देती है कि व्यक्ति जाने-अनजाने अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें ग्रहण करता चलता है। अतः इसे परंपरा का पर्याय भी कहा जा सकता है। यह मानव का जन्मजात गुण नहीं होता बल्कि जिस समाज में वह निवास करता है उस समाज की संस्कृति वह स्वतः ग्रहण कर लेता है। चूँकि भाषा एक नितान्त अर्जित व्यवहार है। अतः संप्रेषण का मुख्य साधन होने के कारण भाषा संस्कृति का प्रमुख उपादान एवं वाहक भी है वस्तुतः यह दोनों ही सामाजिक तथ्य हैं। जिस प्रकार मनुष्य मानव-रूप में भाषार्जन की प्राकृत क्षमता रखते हुए भी जन्मतः भाषाभाषी नहीं होता उसी प्रकार वह संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है।

संस्कृति के एक उपादान के रूप में अर्जित भाषा का प्रयोग हम सभी के लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। अपने दैनिक व्यवहार के सभी क्रिया-कलापों को हम प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप से भाषा द्वारा पूरा करते हैं किंतु भाषा की परिभाषा करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि यह प्रकृत्यः जटिल एवं प्रयोजन की दृष्टि से बहुमुखी है। यह एक तरफ हमारे विचारों, संवेगों को अभिव्यक्त करने का माध्यम है तो दूसरी तरफ समाज के अन्य सदस्यों से संबंध स्थापित करने का सूत्र भी। यह एक ऐसा जीवंत तथ्य है जो समाज के सभी परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील भी हैं। यह ऐसा वाक् ध्वनियों का प्रतीकात्मक संयोजन है जो मानव की व्यक्तिगत एवं सामाजिक अस्मिता की परिचायक, उसके मानसिक और बौद्धिक स्तर का मापदंड ही नहीं वरन् एक ऐसी कड़ी है जिसने मानव के वर्तमान को उसके नवीन मूल्यों एवं परंपराओं से जोड़े रखा है। संस्कृति एवं भाषा दोनों ही सतत् प्रवाहमान तथा परंपरागत सामाजिक उपादान हैं और दोनों की ही पहचान प्रायः दिक्काल के आधार पर की जाती है जबकि दोनों निरंतर परिवर्तित एवं विकसित होते हैं।

9.2 नृवैज्ञानिक भाषाविज्ञान

भाषा एवं संस्कृति के अंतःसंबंध की प्रकृति एवं समस्याओं का विवेचन नृवैज्ञानिक भाषाविज्ञान (anthropological linguistics) के अंतर्गत किया जाता है। इसका अध्ययनकर्ता यह जानने का प्रयास करता है कि एक भाषा विशेष किस प्रकार और किस सीमा तक भाषिक समाज की सांस्कृतिक अभिरचनाओं से प्रतिबंधित एवं नियंत्रित होती है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम अमरीकी भाषाविदों ने भाषा तथा संस्कृति के संबंध एवं उनसे जुड़ी समस्याओं के निराकरण का प्रयास किया।[2] इनके मतानुसार प्रत्येक भाषाभाषी अपनी संस्कृति का वाहक होता है जिसका परिज्ञान उसके भाषिक व्यवहार द्वारा संभव है। वास्तव में अमरीकी भाषिक अध्ययन की परिस्थितियों ने इन विद्वानों का ध्यान भाषा एवं संस्कृति के संबंध की ओर आकर्षित किया।

अमरीकी जनजातियों के भाषा-सर्वेक्षण के दौरान विद्वानों के समक्ष अनेक ऐसी समस्याएँ आईं जिनका समाधान समाज, संस्कृति तथा भाषा के अंतःसंबंधों को ज्ञात किए बिना संभव नहीं था। साथ ही विषमजातीय वक्ताओं द्वारा बोली जा रही विविध भाषाओं ने अध्येताओं की रुचि अनुवाद कार्य में जाग्रत की। सांस्कृतिक परिवेश के पूर्ण ज्ञान के अभाव में इन भाषाओं में सही अनुवाद करना भी संभव नहीं था। विद्वानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा- किसी भाषा के मुहावरों की प्रकृति की व्याख्या किस प्रकार की जाए तथा किसी समाज की लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ जो दूसरे समाज से भिन्न हैं, उनका वर्णन किस प्रकार हो, इत्यादि। अतः भाषिक इकाइयों एवं कोटियों के वर्णन तथा अनुवाद के लिए सांस्कृतिक परंपराओं का संपूर्ण ज्ञान आवश्यक माना गया। इस दिशा में कार्य प्रारंभ होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण अमरीकी जनजातियों की बोलियाँ थीं जिनकी संरचना तत्कालीन ज्ञात भाषाओं से पूर्णतः भिन्न थी। इन भाषाओं के वर्णन के लिए अध्येताओं ने कोशीय सामग्री का संकलन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संस्कृति की उपेक्षा कर इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है। इनके प्रभावात्मक वर्णन के लिए संबद्ध भाषा समुदाय के जीवन, परंपराओं और रीतियों का परिचय अनिवार्य है यथा- अमरीकी जनजाति होपी में किसी कार्य के समय का उस प्रकार वर्णन नहीं मिलता है जिस प्रकार हम अपनी भाषा में करते हैं, वरन् वे घटना की अवधि की व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार एक कदम, एक लहर या चलना क्रिया अस्थायी घटना है और पत्थर, पेड़, आदमी आदि स्थायी हैं जबकि बादल इन दोनों में से किसी वर्ग में नहीं आता है। इसी प्रकार इगहो जाति में खुबानी (फल) मीठी मानी जाती है और कॉफी मीठी नहीं मानी जाती है क्योंकि कॉफी में मिठास शक्कर से आती है जो अप्रत्यक्ष रूप से उसे मीठा बनाती है। स्पष्ट है कि इन संस्कृतियों के पूर्ण परिचय के आधार पर ही इन भाषाओं की संरचना का सम्यक् वर्णन किया जा सकता है।

9.3 सपीर-वोर्फ परिकल्पना

इस दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों में फ्रांज बोआज़, एडवर्ड सपीर एवं उनके शिष्य वोर्फ प्रमुख थे। बोआज़ ने आदिम अमरीकी जातियों की अलिखित किंतु पर्याप्त विकसित बोलियों का अध्ययन मातृभाषाभाषी सूचकों द्वारा उनके सांस्कृतिक परिवेश में रहकर किया। इनके विचारानुसार भाषा पर संस्कृति का प्रभाव, संस्कृति पर भाषा के प्रभाव से कहीं अधिक है। इनके शिष्य सपीर मूलतः नृविद् थे जिन्होंने बोआज़ के कार्यों से प्रभावित हो भाषाविज्ञान के क्षेत्र में पदार्पण किया। इन्होंने भाषा को एक मानवीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपादान माना और संस्कृति को भली-भाँति समझने के लिए भाषिक अनुभवों को सहायक समझा। अपने अध्ययन के दौरान इन्होंने पाया कि भाषिक इकाइयों के मध्य उपस्थित व्यवस्थित संबंधों की भाँति संस्कृति में भी

व्यवस्थित संबंध अवस्थित हैं और उसकी इस व्यवस्थित प्रकृति का उद्घाटन विविध परिस्थितियों के पारस्परिक संबंधों के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। इनके अनुसार सांस्कृतिक अभिरचनाएँ भाषिक की तुलना में वितरणात्मक संबंधों के आधार पर कम विवेच्य होती हैं किंतु फिर भी संस्कृति का वर्णन व्यवस्थित संरचना के रूप में ही होना चाहिए। सपीर का मत था कि किसी समुदाय के भाषिक रिवाजों (habits) पर उस समुदाय का वास्तविक संसार निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न समुदायों का संसार भी भिन्न होता है वे समान संसार में नहीं रहते हैं। किहीं दो भाषाओं में इतना साम्य नहीं होता है[3] कि वे समान सामाजिक वास्तविकताओं का वर्णन कर सकें। इस प्रकार भाषा अनुभवों को वर्णित करने वाला यंत्र नहीं वरन् वक्ताओं को जगत के अनुभवों का ज्ञान कराने वाली है। दूसरे शब्दों में, भाषा अपने प्रयोक्ताओं के सांसारिक परिदृश्य को निर्धारित एवं नियंत्रित करती है। सपीर के सहयोग से उनके शिष्य वोर्फ ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसे कतिपय विद्वानों ने **सपीर वोर्फ परिकल्पना** नाम से अभिहित किया। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से संसार का प्रत्यक्षीकरण करता है तथा उसे व्याख्यायित करता है। यही कारण है कि हर भाषा की संज्ञानात्मक संरचना समान नहीं होती है तथा प्रत्येक भाषा अपने वक्ता की विचार-प्रक्रिया को प्रभावित करती है। यह परिकल्पना पारंपरिक विद्वानों द्वारा प्रस्तावित **भाषायी नियतत्ववाद** (linguistic determinism) (भाषा विचार को निश्चित करती है) तथा **भाषिक सापेक्षवाद** (linguistic relativity) (भाषाओं की संरचनात्मक विविधता की कोई सीमा नहीं होती है) का सम्मिलित रूप है। इस परिकल्पना को निम्नलिखित दो बिंदुओं पर विवेचित किया जा सकता है—

(अ) अपने समस्त कार्यों एवं विचारों के लिए मानव सदैव एक भाषा विशेष की दया पर निर्भर है, जो समाज में उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम है, क्योंकि वह भाषा में कोडीकृत कोटियों एवं विभेदों के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में देख, सुन या अनुभव नहीं कर सकता है।

(ब) किसी एक भाषा विशेष में कोडीकृत कोटियाँ एवं विभेद उस भाषिक व्यवस्था के एकमात्र अपने होते हैं तथा अन्य व्यवस्थाओं से असमानुपाती होते हैं।

इस प्रकार भाषा-अभिरचना एवं भाषेतर (सांस्कृतिक) अभिरचना के पारस्परिक संबंधों को अधिक व्यापक धरातल पर स्थापित कर वोर्फ ने शब्द (कोशीय इकाई) और जीवन-व्यापार की स्थूल अभिव्यक्तियों को अन्योन्याश्रित माना। उनका विश्वास था कि प्रत्येक जाति की अपनी पूर्वकल्पित धारणाएँ होती हैं जिन्हें मानव अपनी भाषा की परिधि में रहकर व्यक्त करता है अर्थात् प्रत्येक भाषा की अपनी एक सीमित संस्कृति ठीक वैसे ही होती है जैसे किसी जनजाति की होती है। कोई भी व्यक्ति अपने बाह्य प्राकृतिक परिवेश को सर्वथा निरपेक्ष भाव से वर्णित नहीं कर सकता है। इन्होंने भाषा को संस्कृति से और संस्कृति को भाषा से प्रभावित माना। भाषा संस्कृति से प्रभावित

है इस बिंदु पर कहीं कोई सन्देह नहीं किया गया किंतु इस परिकल्पना का द्वितीय अंग अनेक विद्वानों को मान्य नहीं था। इस वर्णन के आधार पर एक सामान्य निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि किसी विशिष्ट समाज की भाषा उसकी संस्कृति का समग्र एवं अखंड अशं होती है तथा प्रत्येक भाषा में प्राप्त कोशीय भिन्नताओं को वास्तव में, सामाजिक उपादानों, संस्थाओं एवं क्रियाओं के सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अभिलक्षण प्रतिबिंबित करते हैं। मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भाषा की कोशीय व्यवस्था की संरचना का ज्ञान, चाहे वह सर्वेक्षण कार्य के लिए आवश्यक हो, शब्दावली विश्लेषण के लिए अथवा अनुवाद के लिए, संस्कृति के अभाव में अपूर्ण है।

9.4 समाज भाषाविज्ञान (sociolinguistics)

भाषा का समाज से घनिष्ठ संबंध एक निर्विवाद तथ्य है। सामाजिक आदान-प्रदान, विचार-विनिमय एवं सम्पर्क के माध्यम के रूप में भाषा अवस्थित है। मानव भाषा का प्रयोक्ता अवश्य है किंतु उसका प्रयोग स्थल समाज है अतः भाषा को समाज सापेक्ष कहा जाता है। भाषा के विविध पक्षों का सम्यक् अध्ययन सामाजिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में संभव नहीं है। यह स्वीकृत तथ्य है कि भाषा मूलतः सामाजिक यथार्थ है जो सामाजिक उपकरणों एवं सन्दर्भों के साथ जुड़कर व्यावहारिक बनती है। भाषाविज्ञान की वह शाखा जो भाषा का इस दृष्टि से अध्ययन करती है समाज भाषाविज्ञान कहलाती है। समाज में गर्हित भाषा का सम्यक अध्ययन इसका उद्देश्य है। भाषा चूँकि समाज सापेक्ष प्रतीक व्यवस्था है अतः उसकी प्रकृति में ही सामाजिक तत्व अंतर्भुक्त रहते हैं। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया एक ओर मानव और उसके बाह्य सन्दर्भों तथा दूसरी ओर मानव एवं समाज के अंतःसंबंध की अनिवार्यता से संयुक्त रहती है। अतः भाषा के सम्यक् अध्ययन के लिए इस समाज से सम्पृक्त कर उसका वर्णन अनिवार्य है। यही समाज भाषाविज्ञान का क्षेत्र है।

भाषाविज्ञान की इस शाखा के पूर्व वाक्य को भाषा की दीर्घतम इकाई माना गया। इस धारा के अंतर्गत कोड तथा **प्रोक्ति** की संकल्पना को वाक्य-अनुबंधित संरचना कहा गया। समाज भाषाविद् संप्रेषण-माध्यम की आधारभूत इकाई वाक् घटना (speech event) को मानते हैं। भाषा की प्रकृति विषमरूपी है। भाषा-विभेद और विकल्पन उसके अनिवार्य अंग हैं। समाज का इन विभेदों एवं विकल्पों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। समाज भाषाविद् इनकी विस्तृत व्याख्या करता है। भाषा तथा समाज के अंतःसंबंध के समस्त पक्षों का अध्ययन सामाजिक समूहों की पहचान, भाषा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण, मानक एवं अमानक भाषा रूप, राष्ट्रभाषा प्रयोग की व्यवस्था और प्रतिमान, भाषा के स्तर एवं सामाजिक विभेद, बहुभाषिकता का सामाजिक आधार आदि विषय समाज भाषाविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इन्हीं विषयों का विश्लेषण एवं व्याख्या जब भाषिक के स्थान पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर की जाए

तब वह 'भाषा का समाजशास्त्र' (sociology of language) कहलाता है। इसके अंतर्गत शोधकर्ता समाज का अध्ययन भाषा जो उसके संबंधों के आधार पर करता है। स्पष्ट है कि समाज भाषाविज्ञान एवं भाषा का समाजशास्त्र दोनों का लक्ष्य भिन्न-भिन्न होता है। प्रथम की रुचि भाषा एवं भाषिक संरचनाओं के विश्लेषण में होती है तो द्वितीय अपने अध्ययन के केंद्र में समाज एवं सामाजिक व्यवस्थाओं को रखता है।

9.5 व्यक्ति बोली, बोली एवं भाषा (idiolect, dialect and language)

जिस समुदाय के सदस्य विचार-विनिमय संप्रेषण के लिए किसी एक भाषा रूप का प्रयोग करे उसे एक भाषिक समुदाय (linguistic community) की संज्ञा देते हैं किंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि एक भाषिक समुदाय में किसी भाषा विशेष का सदैव समस्त वक्ताओं द्वारा एक समान रूप प्रयुक्त होता है। वास्तव में कोई भाषा कैसे बोली जा रही है इस आधार पर उसके कई भेद किए जाते हैं। साथ ही भौगोलिक क्षेत्र व सामाजिक वर्ग के अनुरूप भी भाषा के विभेद मिलते हैं। छोटे से छोटे भाषिक समुदायों में 'बोलने का लहजा' एवं 'बोली' के मध्य अंतर दृष्टिगत होता है। प्रथम का संबंध सिर्फ भाषा की उच्चारणगत विशेषताओं से होता है, जिस आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि वक्ता किस प्रान्त, क्षेत्र या समाज से संबंधित है जब कि 'बोली' व्याकरण एवं शब्दकोश के लक्षणों के साथ-साथ उच्चारणगत विशेषताओं का भी वर्णन करती है। इस प्रकार बोली शब्द बोलचाल की भाषा से संबंधित है जिसका प्रयोग जन साधारण के मध्य होता है। यह भाषा की छोटी स्वाभाविक इकाई है। भाषाविद् बोली को भाषा से संबंधित मानता है किंतु यह नहीं स्वीकार करता कि किसी विशिष्ट प्रान्त या सामाजिक वर्ग की बोली वहाँ की मानक भाषा का च्युत या अपभ्रष्ट भाषारूप होती है। यह निश्चित है कि बोली ही समय और परिस्थिति से प्रभावित होकर भाषा का पद प्राप्त करती है। किसी प्रांतीय या राष्ट्रीय मानक भाषा में प्राप्त व्यवस्था के सदृश व्यवस्था बोली में भी मिलती है। वस्तुतः किसी क्षेत्र विशेष की बोली अनेक कारणों से (धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि) महत्व प्राप्त करती है। उसका प्रयोग क्षेत्र विकसित हो जाता है। शिक्षा, संचार माध्यम, साहित्य और प्रशासनिक कार्यों में उसका प्रयोग होने लगता है तो ऐसे भाषा रूप को **मानक भाषा** (standard language) कहते हैं।

प्रायः दैनिक व्यवहार में बोली व भाषा के मध्य अंतर नहीं समझा जाता और कहीं-कहीं इनकी भिन्नता का आधार राजनैतिक एवं सांस्कृतिक माना जाता है। चीनी भाषा की बोली कही जाने वाली मन्दरिन एवं कन्टोनीस में इतनी अधिक भिन्नता है जितनी दो भिन्न भाषाओं के रूप में स्थापित डच एवं फ्लेमिश में नहीं मिलती है। किसी एक बोली के वक्ताओं में भी भिन्नता मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे

से भिन्न है अतः हर व्यक्ति की बोली दूसरे से अलग होती है एक निश्चित समय में किसी व्यक्ति की वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त बोली को व्यक्ति बोली (idiolect) कहते हैं। प्रत्येक वक्ता की बोली में अंतर होते हुए भी कुछ न कुछ समानताएँ अवश्य होती हैं जिसके कारण श्रोता उसकी बात समझने में समर्थ होता है। इन सामान्य समानताओं को समान साँचा (common core) कहते हैं। इसके अभाव में समाज में स्थिरता नहीं होगी और व्यक्ति संप्रेषण में असमर्थ होगा।

9.6 प्रयुक्ति एवं शैली (register and style)

एक भाषिक समुदाय के सदस्यों की भाषा में प्रयोग संदर्भ के कारण भी वैविध्य प्राप्त होता है। अत्यंत अनौपचारिक से अत्यधिक औपचारिक संदर्भों में वह भाषा का प्रयोग करता है। सन्दर्भों के साथ-साथ प्रयोक्ताओं में अंतर होने पर भी भाषा के रूप में भेद आता है। व्यावहारिक संदर्भ एवं प्रयोक्ता के कारण आगत भाषा भेदों की चर्चा शैली तथा प्रयुक्ति की संकल्पना के अंतर्गत की जाती है। किसी विशिष्ट परिस्थिति में सामाजिक दायित्व की पूर्ति के लिए वक्ता द्वारा प्रयोग की गई भाषा प्रयुक्ति कहलाती है।

किसी स्थिति संदर्भ में भाग लेने वाले दोनों पक्षों के पारस्परिक संबंध के अनुरूप भाषिक प्रयोग में भी परिवर्तन हो जाता है। बोलचाल की भाषा में इसे लहजे का परिवर्तन कहते हैं। एक ही व्यक्ति अपने पिता, पुत्र और मित्र अथवा सहयोगी से कुछ न कुछ भिन्नता रखने वाली, भाषा में वार्तालाप करता है। जहाँ वह पिता से पूछेगा कि **'आप कब आए?'** वहाँ पुत्र से जानना चाहेगा कि **'तुम किस समय आए?'** और मित्र से कहेगा कि **'अबे यार, तुम कब आए?'** स्पष्ट है कि विभिन्न व्यक्तियों से विविध सन्दर्भों में बात करते समय वक्ता भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों का प्रयोग करता है। स्थिति संदर्भ द्वारा निर्धारित इन परिवर्तनों को शैली की संज्ञा भी दी जाती है, यथा- बाजार, सार्वजनिक स्थान, सभा, गोष्ठी आदि विविध सन्दर्भों में वक्ता की शैली भिन्न-भिन्न होती है। शैलीगत यह भिन्नता लिखित भाषा में भी दृष्टिगत होती है, जैसे- व्यावसायिक पत्र तथा संबंधी को लिखे गए पत्र में अंतर होगा। शैली तथा प्रयुक्ति संबंधी ये विचलन मौखिक भाषा में उच्चारण, शब्द और व्याकरण तथा लिखित भाषा में शब्द और व्याकरण को प्रभावित करता है। यही कारण है कि प्रायः हम कवि या लेखक के शब्द-प्रयोग अथवा वाक्य-चयन के आधार पर उसकी कृति को पहचान जाते हैं। वस्तुतः प्रयुक्ति एवं शैली अभिव्यक्ति की दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

9.7 द्विशैलीयता (diglossia)

किसी भाषायी समाज में एक भाषा के दो या दो से अधिक रूपों का प्रयोग जब विभिन्न परिस्थितियों में होता है तो ऐसी स्थिति को **द्विशैलीयता** कहते हैं।[4] भाषिक

समाज के सदस्य जहाँ एक रूप का प्रयोग शिक्षा, राजनीति, साहित्यिक परिचर्चा तथा औपचारिक परिस्थितियों में नियमित रूप से करते हैं वहीं दूसरे रूप का प्रयोग अनौपचारिक तथा बोलचाल की परिस्थितियों में करते हैं। औपचारिक तथा अनौपचारिक के इस भेद को स्वीकार करते हुए एक भाषारूप को उच्च बोली तथा दूसरे को निम्न बोली नाम दिए जाते हैं। प्रायः उच्च बोली साहित्यिक दृष्टि से प्रतिष्ठित व मानक रूप होती है या कभी-कभी वरेण्य कही जाने वाली भाषाएँ भी इस वर्ग में आती हैं जबकि निम्न बोली स्थानीय जन भाषा होती है, उदाहरणार्थ- वरेण्य अरबी भाषा प्रकार्यात्मक दृष्टि से अनेक अरबी भाषी देशों की बोलचाल की बोलियों से इसी प्रकार संबंधित है। मानक जर्मन स्विट्जरलैण्ड में प्रयुक्त स्विस्-जर्मन से इसी भाँति संबंधित है। यही संबंध मानक फ्रांसीसी तथा हैती (Haiti) में प्रयुक्त फ्रेंच क्रियोल के बीच मिलता है। इस तथ्य पर बल देना अनिवार्य है कि इन सभी उद्धरणों में वर्णित उच्च बोली व निम्न बोली के मध्य प्राप्त भिन्नता (विभेद) दो सामाजिक बोलियों में प्राप्त अंतर से कुछ भिन्न होती है। ऐसे अनेक दृष्टांत मिलते हैं जहाँ भाषिक समुदाय का शिक्षित वर्ग ही उच्च व निम्न दोनों बोलियों में पूर्णरूपेण प्रवीण हो। कतिपय स्थितियों में सांस्कृतिक कारणों से, उच्च बोली भाषा का शुद्ध व सही रूप माना जाता है। इस्लाम धर्म की भाषा होने के कारण यही स्थिति वरेण्य अरबी की है किंतु जो लोग दोनों रूपों में प्रवीण होते हैं उनके प्रयोग की स्थिति सुनिश्चित व स्थायी होती है। ये रूप कभी भी एक दूसरे पर आरोपित नहीं होते हैं। वक्ता जिस परिस्थिति में अपने को पाता है उसके अनुरूप प्रयोग करता है। अन्य स्थितियों की भाँति इस स्थिति में भी बोली तथा शैलीगत विभेद क्षीण पड़ जाता है। विद्वानों का मानना है कि संरचनात्मक (स्वनप्रक्रियात्मक, व्याकरणिक व कोशीय भेदकता की) दृष्टि से ये दो रूप भिन्न बोलियाँ हैं और प्रकार्यात्मक दृष्टि से इन्हें पृथक शैलियाँ भी समझा जा सकता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि **भाषाद्वैत** एक विशिष्ट प्रकार की द्विभाषिकता है। यह स्थिति किसी एक भाषा परिवार विशेष तक या भौगोलिक क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रहती है। भाषाद्वैत तथा द्विभाषिकता में मुख्य अंतर यह है कि द्विभाषिकता में जहाँ दो भाषिक कोड कार्य करते हैं वहीं भाषाद्वैत में एक भाषिक कोड। द्विभाषी व्यक्ति दोनों में से किसी एक भाषा रूप अथवा मिश्रित रूप का प्रयोग करता है। भाषाद्वैत में प्रयोग-संदर्भ निश्चित होता है। प्रायः द्विभाषी क्षेत्रों में भाषाद्वैत की स्थिति मिल सकती है। संक्रमण क्षेत्रों में दोनों भाषाओं में भाषाद्वैत के कारण प्रयोगकर्ता को चार कोड में से चयन करना पड़ता है।

९.8 द्विभाषिकता (bilingualism)

कतिपय देश शासकीय रूप में ही द्विभाषिक अथवा बहुभाषी होते हैं अर्थात् इन राष्ट्रों में दो या दो से अधिक शासकीय भाषाएँ स्वीकृत होती हैं,

उदाहरणार्थ—कनाडा तथा बेल्जियम। कनाडा में अंग्रेजी तथा फ्रेंच दोनों शासकीय भाषाएँ हैं। अन्य राष्ट्रों में शासकीय द्विभाषिकता नहीं मिलती है किंतु, उनकी सीमाओं में दो या दो से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। विश्व के प्रायः ज्यादातर देश दूसरे वर्ग के अंतर्गत आते हैं। जो देश शासकीय रूप में द्विभाषी होते हैं वहाँ यह आवश्यक नहीं होता है कि समस्त समुदायों द्वारा दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाए। तात्पर्य यह है कि इन राष्ट्रों में प्रायः निवासियों द्वारा दैनिक जीवन में इन दोनों भाषाओं का अथवा किसी एक का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि जब किसी समुदाय के अनेक सदस्य द्विभाषी होते हैं तभी उस समुदाय को द्विभाषी समुदाय कहते हैं। राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ द्विभाषिकता की स्थिति वैयक्तिक स्तर पर भी मिलती है। किसी बच्चे के माता-पिता यदि भिन्न-भिन्न मातृभाषाओं का प्रयोग करते हैं तो प्रायः वह बच्चा दोनों भाषाएँ साथ-साथ सीखता है और यदि वह दोनों में समान रूप से दक्ष हो जाए तो ऐसा व्यक्ति द्विभाषी कहलाता है। आदर्श द्विभाषिकता प्रायः दुर्लभ होती है क्योंकि भाषा के समस्त प्रयोग प्रसार में, सभी परिस्थितियों में, आवश्यक दक्षता व्यक्ति के लिए दुष्प्राप्य होती है। किंतु फिर भी दो या अधिक भाषाओं का लिखित एवं मौखिक ज्ञान अनेक व्यक्तियों को होता है। ऐसी स्थिति में प्रायः यह दृष्टिगत होता है कि एक भाषा प्रधान हो जाती है तथा द्वितीय उसकी अधीनस्थ होती है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और वैयक्तिक दोनों स्तरों पर द्विभाषिकता की अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं। वैविध्य होते हुए भी सभी द्विभाषिक समुदायों में एक समानता यह मिलती है कि दो भाषाओं के व्यवहार/अधिकार क्षेत्र (domain) के मध्य स्पष्ट प्रकार्यात्मक भिन्नता होती है, यथा- यदि एक का व्यवहार क्षेत्र घर है अर्थात् मित्र परिवार जन आदि से होने वाले वार्तालाप तो दूसरे का व्यवहार क्षेत्र गृह से बाहर हो सकता है। यह स्थिति भी हो सकती है कि वक्ता अपने घर में किसी अपरिचित के आने पर द्वितीय भाषा का प्रयोग करे और अपने घर के सदस्यों के साथ प्रथम भाषा का।

9.9 कोड परिवर्तन (code switching)

संदर्भ एवं व्यवहार क्षेत्र की उपयुक्तता के अनुरूप जब वक्ता एक भाषा का प्रयोग करते-करते दूसरी भाषा का प्रयोग करने लगे तो यह स्थिति कोड-परिवर्तन कहलाती है, यथा- हमारे देश में कार्यालयों में कार्यरत समान सांस्कृतिक एवं भाषिक समुदाय से संबंधित अधिकारी परस्पर अंग्रेजी में बात करते-करते अचानक मराठी/ गुजराती या बंगाली में बात शुरू कर देते हैं। कभी-कभी यह कोड परिवर्तन किसी प्रादेशिक बोलचाल की भाषा में भी हो जाता है प्रायः यह स्थिति उस समय होती है जब वार्तालाप औपचारिक से अनौपचारिक स्तर पर होने लगता है। इस प्रकार का कोड-परिवर्तन अनेक द्विभाषिक समुदायों में मिलता है।

यही नहीं एक ही भाषा में भी भिन्न-भिन्न कोड की चर्चा की जाती है और वक्ता

एक कोड से दूसरे में परिवर्तन करता है। इसे स्पष्ट करते हुए 1967 में बर्नस्टीन ने सीमित (restricted) एवं विस्तृत (elaborated) अवधारणाओं की चर्चा की। सीमित कोड में केवल संबंधित विषय के शब्द और मुहावरे चुने जाते हैं जबकि विस्तृत कोड में सभी तरह के अर्थ वाले शब्दों के चयन की स्वतंत्रता होती है। इस प्रकार रसायनशास्त्र, दर्शन, भाषाविज्ञान, सिनेमेटोग्राफी आदि विषय पर चर्चा करते समय वक्ता सीमित कोड का चयन करता है और सामान्य बोलचाल में विस्तृत कोड का।

9.10 कोड मिश्रण (code mixing)

जब वक्ता भाषा प्रयोग करते समय एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्व मिला दें तो उसे कोड-मिश्रण कहते हैं। यह मिश्रण शब्द, पदबंध, उपवाक्य कई इकाइयों का होता है, यथा- हिंदी बोलते समय अंग्रेजी के शब्दों, पदबंधों आदि का प्रयोग करना- मेरा morning lecture आज नहीं हुआ। मैंने admission ले लिया है but I don't want to go. भाषा मिश्रण में एक भाषा आधार के रूप में होती है प्रायः आधार मातृभाषा होती है। यह मिश्रण भाषा का भाषा में, भाषा का बोली तथा बोली में भाषा का या बोली में बोली का हो सकता है। कोड-मिश्रण के कई कारण होते हैं। कतिपय भाषिक समुदाय किसी भाषा को दूसरे की तुलना में अधिक प्रतिष्ठित मानते हैं आदर मिलने के कारण वक्ता इस द्वितीय भाषा के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास करता है। कभी स्वभाववश या आवश्यकतावश भी इस प्रकार के भाषिक प्रयोग मिलते हैं। कभी-कभी सांस्कृतिक रूढ़ियाँ इनके प्रयोग का कारण बनती हैं। भारतवर्ष में अनेक कारणों से आज कोड-मिश्रण की स्थिति बहुतायत में मिलती है।

9.11 पिजिन एवं क्रियोल (pidgin and creole)

राजनैतिक, व्यापारिक अथवा धार्मिक उद्देश्य से दो संस्कृतियों का संपर्क एवं सम्मिलन भाषा के मिश्रित रूप को जन्म देता है। व्यापारिक आदि व्यावहारिक उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए जिस मिश्रित भाषा का जन्म होता है उसे पिजिन कहते हैं। इसमें आधार रूप में स्थानीय भाषा की ध्वनि एवं व्याकरण होता है और शब्द समूह दूसरी भाषा का होता है। कुछ सन्दर्भों में, किन्हीं सामाजिक संबंधों के निर्वाह के लिए कुछ घंटों की अवधि में भी भाषा उत्पन्न होती है, यथा—चीन के बंदरगाहों पर प्रयुक्त पिजिन अंग्रेजी। बम्बई में प्रचलित मिश्रित या बंबइया हिंदी पिजिन का उदाहरण है जिसका प्रयोग मुंमई महानगरी तथा उससे लगे हुए उपनगरीय क्षेत्रों में होता है। इसका व्याकरण मानक हिंदी के व्याकरण से इतना सरल है कि इसमें लिंग, वचन तथा पुरुष के भेद प्रायः लुप्त हो गए हैं तथा क्रिया में लिंग, वचन की अन्विति की आवश्यकता ही नहीं होती, यथा—'अच्छा लड़का लोग गया', 'अच्छा लड़की लोग गया'। इसी प्रकार हिंदी और भोजपुरी के आधार पर विकसित 'सदरी' को भी पिजिन माना गया। जब पिजिन अपने

उद्देश्यों से कहीं अधिक विकसित हो जाती है और एक सामाजिक समुदाय की मातृभाषा बन जाती है तो उसे क्रियोल कहते हैं, यथा- मारिशस की पुर्तगाली, इण्डोनेशिया की शिचुला, वर्जिन द्वीप समूह की क्रियोलीकृत डच आदि।

9.12 सामाजिक स्तरीकरण

भाषा व समाज सिक्के के दो पाश्वों की भाँति हैं और एक के अभाव में दूसरे की सत्ता संभव नहीं। भाषा का प्रादुर्भाव समाज की उत्पत्ति के साथ हुआ और उसका अर्जन एवं प्रयोग समाज में होता है। जहाँ मानव का कोई कार्य-व्यापार भाषा के अभाव में पूर्ण नहीं होता है उसे प्रत्येक क्षेत्र में भाषा की आवश्यकता होती है, वहाँ मानव समाज की आधारभूत इकाई है और समाज का निर्माणकर्ता एवं अनिवार्य पक्ष है। इस प्रकार भाषा समाज से संबंधित है और समाज मानव से और मानव भाषा से। मानवीय समाज में शिक्षा, आयु, लिंग, जाति एवं अर्थ (धन) के आधार पर विभिन्न स्तर प्राप्त होते हैं। किसी समाज के सभी सदस्य न तो शिक्षित होते हैं और न ही उनमें आयु, लिंग आदि समानता मिलती है। भाषाविदों का मानना है कि विविध स्तरों के अनुरूप भाषा का रूप भी भिन्न-भिन्न होता है, यथा—दक्षिण भारत में ब्राह्मण तथा अब्राह्मण दोनों जातियाँ निवास करती हैं और इनकी भाषा भिन्न-भिन्न है। ब्राह्मण वर्ग की भाषा संस्कृतनिष्ठ अधिक है तथा अब्राह्मण वर्ग की भाषा में द्रविड़ भाषा के शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाता है। जातीय वर्ग के आधार पर भाषा में प्राप्त यह विभेद सिर्फ शब्दों तक सीमित नहीं रहता अपितु रूप एवं ध्वनिगत भी होता है।

आर्थिक दृष्टि से समाज में उच्च, मध्य व निम्न तीन वर्ग मिलते हैं। इन तीनों की भाषा में किंचित अंतर होता है, यथा- अमरीका के उच्च वर्ग में बालक मानक अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं जबकि निम्नवर्ग के बालक अमानक अर्थात् अपभ्रष्ट निम्नवर्गीय बोली का प्रयोग करते हैं। कई भाषिक समुदायों में लिंग के अनुरूप भी भाषा परिवर्तित मिलती है। प्रायः पुरुष वर्ग जिन अपशब्दों का सरलता से प्रयोग करता है स्त्रीवर्ग द्वारा उनका प्रयोग वर्जित माना जाता है। वेस्ट इंडीज की एक आदिम जाति में पुरुष वर्ग 'कैरब' भाषा और स्त्रीवर्ग अशवेक भाषा का प्रयोग करता है।

समाज में ये भिन्नता वय के कारण भी दृष्टिगत होती है। युवावर्ग से प्रौढ़वर्ग की भाषा कुछ भिन्नता लिए होती है। भाषाविदों ने अध्ययन के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि धर्म, व्यवसाय तथा पीढ़ी के अनुरूप भी भाषा के विभेद मिलते हैं। व्यवसाय के अनुसार प्राप्त भिन्न भाषा रूप को **जार्गन** (jargon) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति हर व्यवसाय की शब्दावली से पूर्णतः परिचित नहीं होता है। सभी व्यवसायों की शब्दावली भिन्न होती है। इसका उद्देश्य अपने व्यवसाय को दूसरे से भिन्न प्रतिपादित करना होता है। विभिन्न विषयों से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली भी जार्गन के अंतर्गत आती है। सामाजिक भिन्नता के अनुरूप भाषा का एक अन्य रूप

स्लैंग (slang) कहलाता है। 1850 से पूर्व स्लैंग का अर्थ अभद्र बोली था। परवर्ती काल में यह निम्न व अपराधी वर्ग द्वारा प्रयुक्त भाषा रूप समझा जाने लगा। जेस्पर्सन आदि विद्वानों के मतानुसार इसका प्रयोग न सिर्फ अपराधी वर्ग द्वारा या अशिष्टता का द्योतक है वरन् मनुष्य चेतन ढंग से इसका प्रयोग करता है। इसका प्रयोग प्रायः मनोरंजन के लिए, स्वयं को किसी वर्ग विशेष से संबंधित दर्शाने के लिए, वार्तालाप में सहजता अथवा संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए किया जाता है। यह भाषा का ऐसा उपमानक रूप है जिसका प्रयोग सीमित क्षेत्र में सामाजिक समूह के अंतर्गत किया जाता है और जिसे अधिकांश लोग समझ लेते हैं। आज का युवावर्ग इन शब्दों का बहुत प्रयोग करता है। हिंदी के कुछ प्रचलित स्लैंग हैं- टीपना, फूट लेना, ससुराल जाना, मामा, नक्शा, गोली देना, गंजिंग करना (लखनऊ शहर के मुख्य बाजार हजरतगंज के नाम पर बना स्लैंग)। अपराधियों, सैनिकों, व्यवसायिकों आदि द्वारा अपने भाव को दूसरों से छिपाने के उद्देश्य से जिस भाषा रूप का प्रयोग किया जाता है उसे **कूट** (code) भाषा कहते हैं। इसका संपूर्ण विधान पारस्परिक समझौते पर आश्रित है। गुप्त भाषा का वह रूप जो विशेष रूप से अपराधी वर्ग द्वारा प्रयुक्त होता है **कान्ट** (cant) कहलाता है। अंग्रेजी में paper hangers तथा 'short story writers' धोखेबाजों के लिए प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि सामाजिक भिन्नताओं जाति वर्ग, वय, शिक्षा आदि के आधार पर भाषा के भी कई रूप मिलते हैं। भाषा की मूल संरचना समान होते हुए भी शब्द प्रयोग के कारण इनमें भिन्नता आती है अथवा कहीं भाषा के प्रचलित शब्दों को भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

9.13 भाषा परिवृत्ति, विलुप्ति एवं अनुरक्षण

भाषा संपर्क की स्थिति द्विभाषिकता की जनक हो सकती है। कई पीढ़ियों तक द्विभाषिकता की स्थिति चलने पर कभी-कभी कोई व्यक्ति या भाषिक समुदाय क्रमशः अथवा अचानक एक भाषा का प्रयोग छोड़कर दूसरी भाषा का प्रयोग आरंभ कर देता है, इस स्थिति को भाषा परिवृत्ति (language shift) की संज्ञा देते हैं। इस अवस्था में किसी भाषा विशेष के प्रयोग क्षेत्र का संकुचन हो जाता है और उसके स्थान पर दूसरी भाषा के प्रयोग क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है। कई बार भाषा-भाषी जन समुदाय में सदियों तक द्विभाषिकता की स्थिति के बाद कई कारणों से 'भाषा परिवृत्ति' की स्थिति मिलती है, जैसे-आस्ट्रिया के ओबरवर्ट शहर में चार सौ साल तक जर्मन और हंगेरियन भाषा प्रचलित रहीं किंतु वर्तमान समय में जर्मन भाषा ने न केवल शिक्षा और व्यवसाय बल्कि घर-परिवार के क्षेत्र में भी अपना प्रभुत्त्व जमाना शुरू कर दिया है।[6]

भाषा परिवृत्ति सदैव दो समुदायों के मध्य ही नहीं कभी-कभी एक समुदाय के भीतर भी घटित देखी जा सकती है। ऐसी स्थिति में परिवृत्ति दो भाषाओं के मध्य न होकर दो बोलियों के बीच घटित होती है। कभी-कभी रूपात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्तर

पर आंशिक परिवृत्ति मिलती है, जैसे आज लगभग समस्त भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। इस प्रकार अंग्रेजी ने भारतीय भाषाओं के प्रयोग क्षेत्र के इस भाग को अधिकृत कर रखा है।

भाषा परिवृत्ति की चरम स्थिति भाषा विलुप्ति (language death) को जन्म देती है। इस स्थिति में किसी भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता हुआ सभी व्यवहार क्षेत्रों- घर, बाजार, शिक्षा, धर्म, व्यवसाय आदि में समाप्त हो जाता है।[7]

अर्थात् वह स्थिति जब एक भाषा-भाषी जन समुदाय अपनी भाषा का प्रयोग समाप्त कर दे और समाज के समस्त क्षेत्रों से उस भाषा का व्यवहार लुप्त हो जाए। ऐसी अवस्था में प्रायः देखा जाता है कि संपर्क की स्थिति में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से प्रभावशाली भाषा कमजोर भाषा पर हावी हो जाती है और यदि इस प्रक्रिया में कमजोर भाषा के व्यवहार क्षेत्र धीरे-धीरे कम होते जायें तो एक समय ऐसा आता है जब उसका लोप हो जाता है और भावी पीढ़ी उस भाषा का प्रयोग समाप्त कर देती है।[8] आज विश्व की 96 प्रतिशत भाषाएँ परिवृत्ति, अवनति अथवा विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। भाषा विलुप्ति की स्थिति कई चरणों से गुजरती हुई आती है। इस संदर्भ में किसी समय, स्थान या वर्ष को चिन्हित नहीं किया जा सकता है। भाषा विलुप्ति का संबंध व्यक्ति, परिवार या भाषिक समुदाय किसी से भी हो सकता है। यही नहीं आरम्भिक चरणों में भाषा के प्रयोग में ह्रास भी मिलता है। शनैः शनैः उसका संप्रेषण माध्यम के रूप में प्रयोग समाप्त हो जाता है और आने वाली पीढ़ी के बच्चे (जो भविष्य में भाषा के संवाहक होते हैं) भाषा को सीखने से वंचित रह जाते हैं।[9]

इसके विपरीत कभी-कभी कोई भाषा-भाषी जन समुदाय विभिन्न मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दबावों का सामना करता हुआ भी अपनी भाषा को सुरक्षित रखता है, इस स्थिति को भाषा-अनुरक्षण (language maintainence) की प्रक्रिया कहा जाता है। सामान्यतः अपनी भाषा के प्रति निष्ठा, भावात्मक लगाव, उसकी अस्मिता के प्रति वक्ताओं में विद्यमान जागरुकता आदि तत्व भाषा अनुरक्षण में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। परिवृत्ति की भाँति अनुरक्षण भी आंशिक या पूर्ण हो सकता है, जैसे- आज हिंदी भाषा-भाषी जन समुदाय में संस्कृत भाषा का प्रयोग धार्मिक क्रिया-कलापों और अनुष्ठानों में हो रहा है। कह सकते हैं कि संस्कृत आज अन्य क्षेत्रों से लुप्त होने पर भी धार्मिक व्यवहार क्षेत्र में अनुरक्षित है; यह आंशिक अनुरक्षण की स्थिति है। वहीं दूसरी ओर अनेक जनजातीय समुदाय मुख्य धारा में जुड़कर भी अपनी भाषा और संस्कृति को अनुरक्षित रखे हैं, जो पूर्ण अनुरक्षण का परिचायक है।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. Culture is the learned, socially acquired traditions and life styles of the members of a socety, including their patterned repetitive ways of thinking feeling and acting. If includes knowledge, belief,

art, morals, law customs and any other capabilities and habits acquired by man as a meber of a society.

2. यूरोप में इसके प्रारंभिक बीज जर्मन विद्वान विल्हेल्म फॉन हुम्बोल्ड के अध्ययनों में दृष्टिगत होते हैं। इनके मतानुसार 'the structure of a language was correlated with the knowledge and inner life of its speakers'.

3. सपीर के शब्दों में, "The worlds in which different societies live are dinstinct worlds, not merely the same world with different labels attached."

   - Language in Culture, P.92.

4. फर्गुसन के मतानुसार, "Diglossia is a relatively stable languae situation in which,....... there is a very divergent, highly codified (often grammatically complex) super posed variety...is used for most written and formal spoken purposes but is not used by any sector of the community for ordinary conversation. 1959". p.336.

5. डॉ. बुद्धदेव चटर्जी से साभार प्राप्त।

6. अदिति मुखर्जी के शब्दों में, ``we may define `language shift' as the shift from the use of one language to the use of another..."

7. डेविड क्रिस्टल के मतानुसार, ``the situation which arises when a language ceases to be used by a community..."

8. डोरियन के शब्दों में, ``if transmission of a language ceases and remaining pool of speakers shrinks and eventually disappears, the language can be considered to have died``.

9. कैम्बेल के शब्दों में ``... a language dies when it no longer has any speakers.``

आधुनिक भाषाविज्ञान का इतिहास

10.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राच्य एवं पाश्चात्य देशों में भाषाध्ययन की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान रही है। भारत में ईसा से लगभग चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व भाषा संबंधी अध्ययन पर्याप्त उन्नत अवस्था में था। वैदिक वाङ्मयों की तत्कालीन भाषा संस्कृत को भाषा परिवर्तन प्रक्रिया से सुरक्षित रखने के प्रयास स्वरूप भारतीय ऋषि-मनीषियों ने शिक्षा, प्रातिशाख्य, निरुक्त, निघण्टु, व्याकरण आदि ग्रंथों की रचना की और भाषा के विभिन्न पक्षों से संबंधित विवेचन प्रस्तुत किया। प्रसिद्ध वैयाकरण **पाणिनि** ने **अष्टाध्यायी** में तत्कालीन भाषा संस्कृत का बीजगणितीय सूत्र शैली में व्याकरण लिखा। आठ अध्यायों में वर्गीकृत यह पूर्णतः संकालिक एवं रूपात्मक व्याकरण है जिसका उद्देश्य स्वनप्रक्रियात्मक, रूपरचनात्मक एवं वाक्यीय दृष्टि से शुद्ध रूपों की स्थापना है। अवश्रुति (vowel gradation) का अभिग्यान, प्रकृति, प्रातिपदिक तथा प्रत्ययों की पृथकता का निरूपण, शून्य की संकल्पना, स्वनिम अवधारणा आदि इसके प्रमुख अभिलक्षण हैं। धीरे-धीरे संस्कृत का जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त लोक प्रचलित रूप लुप्त हो गया और वह राजदरबार की भाषा तथा ब्राह्मण वर्ग के लिए विद्वत्ता-प्रदर्शन का साधन मात्र बन गई। पाणिनि व्याकरण की जटिलता एवं बीजगणितीय सूत्र शैली की क्लिष्टता ने लोगों का ध्यान व्याकरण से हटाया, ऐसे में कतिपय विद्वानों ने टीका ग्रंथों की रचना की जिनमें सरल एवं सुबोध शैली में सूत्रों की व्याख्या की गई। एक प्रकार से पाणिनि की इस उत्कृष्ट एवं अन्यतम कृति ने भाषा के विकास को बाधित भी किया क्योंकि परवर्ती विद्वान अष्टाध्यायी पर टीका अथवा टीका की टीका रचने में ही संलग्न रहे। इन कार्यों ने अनेक विदेशी विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया जिन्होंने सामान्य सिद्धांतों के निरूपण में भारतीय दृष्टिकोण से दिशा निर्देश प्राप्त किए।[1]

पाश्चात्य जगत में ग्रीक विद्वानों की भाषा अध्ययन परंपरा दार्शनिक के साथ-साथ व्याकरणिक थी। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के महान शिक्षक सोफिस्टो ने युवा पीढ़ी को तर्कपूर्ण आलोचना तथा वाद-विवाद की कला में प्रशिक्षण देते समय ग्रीक भाषा का विश्लेषण किया। **प्रोटागोरस** ने लिंग, क्रिया एवं विभक्ति का उल्लेख किया और

परवर्ती काल में **अरस्तू** तथा **प्लेटो** ने संज्ञा, क्रिया, निपात एवं कारक भेद को स्पष्ट किया। दूसरी सदी ईसा पूर्व **थ्रैक्स** ने अपने रोमन शिष्यों को ग्रीक भाषा-शिक्षण कराने के लिए एक व्याकरण की रचना की जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ और जिसने परवर्ती कार्यो के लिए एक स्पष्ट, निश्चित प्रारूप प्रस्तुत किया। **वारो** ने इसी प्रारूप को आधार मान लैटिन के प्राचीनतम व्याकरण की रचना की, जिसमें ग्रीक शब्दावली का ही अनुकरण किया गया। धीरे-धीरे ऐसे अनेक व्याकरणिक पारिभाषिक शब्द एवं वर्गीकरण रूढ़ हो गए जिनका आज भी प्रयोग हो रहा है।

जहाँ छोटे स्तर पर हुए तुलनात्मक अध्ययनों ने भाषा विशेष में प्रथम वैज्ञानिक विश्लेषण को प्रोत्साहित किया वहाँ बड़े स्तर पर किए गए तुलनात्मक कार्यों ने भाषा अध्ययन को विज्ञान के उच्च पद पर आसीन किया। 1783 में ब्रिटिश कवि, **सर विलियम जोन्स** कलकत्ता में न्यायाधीश नियुक्त हुए। भारतीय कानूनी पुस्तकों को अंग्रेजी में अनूदित करने की इच्छा से इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। यही नहीं ये फारसी, चीनी, ग्रीक, अवेस्ता आदि भाषाओं के भी ज्ञाता थे। अनुवादक होने के कारण संस्कृत तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में प्राप्त समानताओं ने जहाँ उनका ध्यान आकृष्ट किया वहीं चीनी भाषा के परिचय ने उन्हें असमान भाषाओं की वास्तविकता से भी परिचित कराया। दीर्घकाल तक अध्ययन के उपरांत 1786 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के तृतीय अधिवेशन के दौरान उन्होंने संस्कृत की अद्‌भुत संरचना की प्रशंसा की तथा संस्कृत एवं यूरोपीय भाषाओं के मध्य विद्यमान भौगोलिक दूरी होने पर भी किसी समान स्रोत से उत्पत्ति के प्रमाण की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। संस्कृत-परिचय ने यूरोपीय विद्वानों के तुलनात्मक अन्वेषण के लिए नवीन मार्ग उद्घाटित किए। इस खोज से प्रभावित विद्वानों ने एक शताब्दी से अधिक समय गहन ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन में व्यतीत किया जिसकी विस्तृत चर्चा छठे अध्याय में हो चुकी है। काल की गति ने एक बार फिर मोड़ लिया और ऐतिहासिक अध्ययनकर्ता सिर्फ वर्णनात्मक तथ्यों के विश्लेषण को अपर्याप्त समझने लगे। लैटिन व्याकरण के प्रारूप पर रचित पाठ्‌य पुस्तकों की परंपरा का खंडन किया गया तथा भाषा की सार्वभौमिक विशेषताओं को भी अस्वीकार किया गया। ऐसे समय में **विल्हेम फॉन हुम्बोल्ड** ने जावा की कवि (Kawi) तथा बास्क (Basque) भाषाओं का वर्णनात्मक विश्लेषण कर ऐतिहासिक की तुलना में संकालिक अध्ययन की उपयोगिता पर बल दिया। 19वीं शताब्दी के अंत में ऐतिहासिकता का स्थान पुनः वर्णन ने लिया और इस दिशा में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य **फर्दिनान्द डी सस्यूर** ने किए, जो जेनेवा विश्वविद्‌यालय में 1906 से 1911 तक भाषाविज्ञान के प्रवक्ता थे। प्रथम विश्वयुद्ध से 1970 तक अनेक युवा अध्येताओं ने इस दिशा में विश्लेषण किए। बीसवीं शताब्दी में भाषाविज्ञान पूर्णतः वर्णनात्मकवाद से प्रभावित रहा अतः प्रत्येक प्रवृत्ति का पृथक्-पृथक् स्वतंत्र विवेचन करने से पहले एक समग्र अध्ययन आवश्यक है।

यूरोपीय वर्णनात्मकवाद का मानवता एवं साहित्य के प्रति झुकाव था जबकि अमरीकी वर्णनात्मकवाद कुछ भिन्न-भिन्न रूपों में वैज्ञानिकता की ओर अभिमुख रहा। जहाँ यूरोपीय भाषाएँ साहित्यिक दृष्टि से संपन्न और एक परिवार की थीं वहाँ अमरीकी भाषाओं का कोई लिखित रूप या अतीत नहीं था। संभवतः इसी कारण यूरोप में पारंपरिक व्याकरण का विषय-क्षेत्र (पद्धति नहीं) अधिक प्रचलित रहा। अमरीकी भाषाविज्ञान पर विज्ञान का प्रभाव मानवविज्ञान के कारण हुआ। अमरीकी जगत में, परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करने वाली दो भिन्न धाराएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। जर्मनी में जन्मे **फ्रान्ज बोआज़** तथा उनके शिष्य **एडवर्ड सपीर** एक धारा के प्रवर्तक थे। इन्होंने भाषा एवं संस्कृति के संबंध को महत्वपूर्ण मानकर यह प्रतिपादित किया कि संस्कृति के अभाव में भाषा का सम्यक विवेचन नहीं किया जा सकता है। इन विद्वानों ने अमरीकी जनजातियों के बीच रह कर भाषिक सामग्री संकलित की। इन मौखिक भाषाओं में कुछ ऐसी थीं जिनके वक्ता की मृत्यु के साथ भाषा का अंत निश्चित किया जा सकता था। अतः इन विद्वानों का प्रमुख उद्देश्य इनको लिपिबद्ध कर विश्लेषित करना था जिससे इन्हें संरक्षित रखा जा सके। अमरीका में नृवैज्ञानिक भाषाविज्ञान की द्वितीय धारा 1930 के आरंभ में धार्मिक मिशनरियों द्वारा चलाई गई। ईसाई धर्मावलम्बियों ने दो उद्देश्यों से 'Summer Institute of Linguistics' की स्थापना की- धर्म प्रचारकों का भाषिक प्रशिक्षण एवं बाइबिल का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद। चूँकि वहाँ सभी भाषाएँ मौखिक अवस्था में थीं अतः इस संस्था का पहला कार्य इन्हें लिखित रूप प्रदान करना था। इस प्रकार नृविज्ञान से प्रभावित इन दोनों धाराओं में प्रथम का उद्देश्य सुदूर संस्कृतियों की भाषाओं को लिपिबद्ध करना और द्वितीय का लक्ष्य ईसाई धर्म-प्रचार था। 1950 के लगभग भाषाविज्ञान में नृविज्ञान से संबंध तोड़ने शुरू कर दिए। सपीर के समकालीन **ल्यूनार्ड ब्लूमफील्ड** यद्यपि अमरीकी जनजातियों की भाषाओं के प्रति जागरुक थे तथापि इनका भाषाध्ययन दृष्टिकोण सपीर से कुछ भिन्न था। इन्होंने भाषाविज्ञान के स्वतंत्र, स्वयत्ततापूर्ण क्षेत्र पर बल दिया और उसे मनोविज्ञान, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन आदि से भिन्न एक वैज्ञानिक विषय के रूप में प्रतिपादित किया जिसका उद्देश्य सिर्फ भाषा का अध्ययन-विश्लेषण है तथा जिसमें वस्तुनिष्ठता, रूपात्मकता एवं प्रणालीगत सुनिश्चितता होनी अनिवार्य है।

प्रारम्भिक अध्ययनों में मनोवैज्ञानिक **वुन्ट** से प्रभावित ब्लूमफील्ड के परवर्ती कार्यों में व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक **वीज़** का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ होने पर अमरीकी प्रतिरक्षा एवं विदेश मंत्रालय के समक्ष अनेक अज्ञात भाषाओं के शिक्षण का प्रश्न उठा। 'अमेरिकन काउन्सिल ऑफ लर्नड सोसाइटी (ACLS) नामक संस्था ने विभिन्न अमरीकी विश्वविद्यालयों से संबद्ध भाषाविदों की सहायता से बोलचाल की भाषा सिखाने वाले पाठ्यक्रमों का निर्माण

किया। 'लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ अमरीका' तथा अनेक प्रमुख अमरीकी भाषाविदों ने सिद्धांत एवं पद्धति के विषय को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं किया। इनका उद्देश्य सामग्री का संकलन एवं विश्लेषण था अतः इनकी प्रविधि आनुभविक थी और इनका मत था कि 'तथ्य स्वयं अपना परिचय देते हैं।' लगभग दो दशक तक अमरीकी जगत में चर्चा का यही विषय रहा।

1939 में विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न एक डेनिश विद्वान **लुइस हेल्म्स्लेव** ने अपनी पुस्तक **प्रोलेगोमेना**[2] के माध्यम से एक नवीन दिशा में प्रयास किए। इनके अनुसार वर्णन में असंगतिहीनता सर्वांगता से तथा सर्वांगता सरलता से अधिक महत्वपूर्ण है। जब पाँचवे और छठे दशक में हेल्मस्लेव के गणितात्मक भाषावैज्ञानिक दर्शन की व्यापक चर्चा हो रही थी तब एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक **नोअम चॉम्स्की** ने भाषाविज्ञान की पूर्व स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी। उन्होंने 1958 में प्रकाशित 'सिंटैक्टिक स्ट्रक्चर्स' नामक पुस्तक के माध्यम से सुसंबद्ध भाषिक सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें व्याकरण शब्द की परिधि व गहनता ने नई अर्थवत्ता प्राप्त की। इसे प्रजनक व्याकरण नाम दिया गया जिसमें व्याकरणिक स्तर भाषा के विभिन्न विश्लेषण स्तरों- ध्वनि, व्याकरण एवं अर्थ में से एक स्तर मात्र न रहकर एक ऐसी समपुंजित एवं संबद्ध पद्धति का द्योतक हो गया जिसके अंतर्गत भाषा के गुह्य एवं अमूर्त आधारभूत संरचनात्मक नियमों के विश्लेषण से लेकर भाषा के वाक्यों का वास्तविक रूपायन तक समावेशित है।

1960 के अंत में चॉमस्की द्वारा प्रवर्तित आंदोलन कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। सिद्धांत संबंधी वाद-विवाद में लगे विद्वान एक दूसरे की आलोचना कर रहे थे। लगभग उसी समय मनोभाषाविद् तथा समाजभाषाविद् आदि प्रायोगिक भाषाशास्त्री मूर्त भाषिक समस्याओं को सुलझाने में लीन थे। धीरे-धीरे अपने कार्यों के कारण इन्होंने सिद्धांतवादियों को बहुत पीछे छोड़ दिया और विद्वान न केवल खुलकर सिद्धांत का विरोध करने लगे वरन् उसे टालने भी लगे। इस अध्ययन में उल्लिखित सभी संप्रदायों ने सुसंबद्ध एवं सुनियोजित सिद्धांत पर बल दिया। यह अवश्य है कि जहाँ कुछ के लिए सिद्धांत और प्रक्रिया का महत्व अधिक था वहीं कुछ अन्य के लिए सर्वेक्षण तथा प्रयोग का, वास्तव में जिसके मूल में सिद्धांत छुपे थे।

10.2 संरचनात्मकता Structuralism

बीसवीं शताब्दी में 'संरचनात्मकता' पद का प्रयोग एक विशिष्ट विचारधारा के लिए किया गया जिसका प्रभाव उस काल में अनेक अध्ययन-विषयों पर पड़ा। वास्तव में यह दृष्टिकोण किसी उपादान के निर्मायक तत्वों के परिज्ञान एवं पारस्परिक संबंधों को महत्व देता है। यह स्वीकार करता है कि प्रत्येक वस्तु एक विशिष्ट रचना है जिसके निर्मायक अंश समूह में एकत्रित न होकर निश्चित, व्यवस्थित नियमों में आबद्ध हैं और अध्ययनकर्ता का उद्देश्य इन तत्वों की खोज एवं उनके पारस्परिक संबंधों का

विश्लेषण करना है। कुछ विद्वानों ने इस मनोदृष्टि को भाषाध्ययन के क्षेत्र पर भी आरोपित किया और कहा कि कोई भी भाषा अंतराश्रित तत्वों की व्यवस्था है। यूरोपीय विद्वान हुम्बोल्ट के अध्ययनों में संरचनात्मकता के कुछ बीज मिलते हैं। परवर्ती काल में इस विचार धारा ने उन अनेक यूरोपीय तथा अमरीकी विद्वानों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित किया जिनकी रुचि भाषा उत्पत्ति संबंधी कार्यों की अपेक्षा भाषा की तात्त्विक प्रकृति के अध्ययन में अधिक थी।

10.2.1 कूर्तने

कूर्तने का जन्म 1845 में पोलैण्ड में हुआ था। इन्होंने जेना विश्वविद्यालय में भारोपीय तुलनात्मक अध्ययन, संस्कृत तथा स्लाविक भाषाशास्त्र में शिक्षा ग्रहण की। ऑगुस्ट श्लाइखर के शिष्य होने के कारण इनके आरम्भिक अध्ययन तुलनात्मक भारोपीय परंपरा में मिलते हैं। परवर्ती कार्यों में इनका स्पष्ट झुकाव संकालिकता की ओर दृष्टिगत होता है। इन्होंने अपने शिष्य **एम. क्रुज़ेफ़स्की** के साथ मिलकर कार्य किए तथा भाषाविज्ञान की वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग पर बल दिया। 36 वर्ष की अल्पायु में क्रुज़ेफ़स्की का देहान्त हो गया जिस कारण यह अपने सिद्धांतों को अधिक विकसित नहीं कर पाए। इन्होंने सामान्य भाषाविज्ञान की समस्याओं तथा निगमनात्मक पद्धति की उपयोगिता पर विशेष बल दिया। इनके मतानुसार भाषा का विश्लेषण एवं अध्ययन आंतरिक विशेषताओं पर आधृत होना चाहिए क्योंकि एक निश्चित काल आंतरिक व्यवस्था ही भाषा में कार्यरत स्थिर नियमों तथा शक्ति की संकेतक होती है। इस प्रकार कूर्तने ने भाषा के संकालिक अध्ययन को महत्व दिया। इन्होंने प्रतिपादित किया कि जहाँ भाषा एक ओर कतिपय तत्वों का समवाय है वहाँ दूसरी ओर एक सतत् प्रवाहमान धारा या प्रक्रिया भी है। स्पष्ट है कि कूर्तने ने भाषा के दो पक्षों के मध्य भेद स्थापित किया। स्वन/ध्वनि तथा स्वनिम के अंतर को स्पष्ट करने वाले प्रथम विद्वान कूर्तने ही थे। इनके अनुसार स्वनिम का कार्य एक शब्द को दूसरे से पृथक स्थापित करना है। स्वनिम का कोई अर्थ नहीं होता वरन् ये औच्चारिक एवं श्रौतिक प्रतीतियों को अर्थीकृत करते हैं। प्रभेदकता स्वनिम का आधारिक अनिवार्य अभिलक्षण है। इन्होंने अनुभव किया कि भाषा की ध्वनियों को सांख्यिकी प्रतिशत और अनुपात द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। शब्द, अक्षर तथा गुच्छ की स्थिति में ध्वनियाँ किस अनुपात या प्रतिशत में प्रयुक्त होती हैं, ध्वनि के विविध सहप्रयोग कौन-कौन से हैं इत्यादि समस्याओं का विश्लेषण संभव है। इस प्रकार भाषा की संरचनात्मक विशेषताओं के वर्णन के लिए सांख्यिकी एवं गणितीय उपकरणों का सर्वप्रथम प्रयोग कूर्तने ने किया।

10.2.2 सेस्यूर

आधुनिक भाषाविज्ञान का मूल उत्स जेनेवा संप्रदाय में माना गया जिसके जनक **फर्दिनान्द डी सेस्यूर** थे। इनका जन्म 1857 में स्विट्ज़रलैण्ड के एक फ्रांसीसी

परिवार में हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा जेनेवा में हुई तथा 1876 में यह लिपज़िग विश्वविद्यालय (जर्मनी) गए जो उस समय नवीन उत्साही नवयुवकों के स्कूल के रूप में प्रसिद्ध था। जहाँ युवा सेस्यूर का सम्पर्क **लेस्किन, ब्रुगमैन, ऑस्टहॉफ** आदि विद्वानों से हुआ। ये विद्वान पूर्व प्रचलित धारणाओं के खंडन में रत थे। 1881 में इन्होंने संस्कृत संबंध कारक के प्रयोग पर पी.एच-डी. की उपाधि प्राप्त की। इक्कीस वर्ष की अल्पायु में सेस्यूर ने ऐतिहासिक तुलनात्मक भाषाविज्ञान से संबंधित एक मौलिक लेख प्रकाशित किया जिसमें भारोपीय स्वर व्यवस्था के विकास के संबंध में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। 1907 से 1911 के मध्य इन्होंने जेनेवा में सामान्य भाषाविज्ञान के सिद्धांत और पद्धति पर व्याख्यान दिए। इनकी मृत्यु के उपरांत इन्हीं भाषणों को आधार बना इनके सहयोगी **चार्ल्स बेली** तथा **अल्बर्ट सेचेहाए** ने Course de linguistique generale नामक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की।[6] यह पुस्तक सेस्यूर के प्रभाव और प्रतिष्ठा की ही नहीं वरन् संरचनात्मक भाषाविज्ञान का भी आधार बनी। सन् 1913 फरवरी में इस महान भाषाविद की मृत्यु हो गई।

सेस्यूर ने भाषा संबंधी कतिपय आधारभूत प्रश्न उठाए यथा—क्या व्यक्ति जो बोलता एवं लिखता है समुच्चय रूप में वही भाषा है? इनके अनुसार भाषा की प्रकृति बहुमुखी होती है। सतत् परिवर्तनशील होने के साथ-साथ सूक्ष्म स्तर पर भाषा की प्रकृति व्यक्तिपरक न होकर सामाजिक है और समस्त वैकल्पिक भेदों तथा उपभेदों के होने पर भी भाषा अपनी बनावट और बुनावट में समरूपी है। भाषा की प्रकृति का पूर्ण ज्ञान उसकी समग्रता को ज्ञात करके ही किया जा सकता है। इसके लिए आंतरिक एवं बाह्य दो उपागमों की आवश्यकता होती है। भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार भाषा वक्ता को प्रभावित करती हैं? मानवीय सभ्यता का भाषा-विकास पर क्या प्रतिफल होता है? इत्यादि बाह्य उपागम का क्षेत्र है। आंतरिक उपागम का उद्देश्य भाषा की आधारिक व्यवस्था एवं केंद्रीय बुनावट का अध्ययन-विश्लेषण है।

भाषा की प्रकृति संबंधी अपने अवबोधनों को आलंब देने के लिए सेस्यूर ने एकाधिक धारणाओं को विकसित किया और इनका वर्णन स्वनिर्मित पारिभाषिक शब्दों के आधार पर किया। इनके भाषिक सिद्धांत का प्रथम नियम प्रतीक सिद्धांत से संबंधित है। भाषा के व्यवस्थित स्वरूप की व्याख्या करते हुए इन्होंने भाषा को परस्पराश्रित प्रतीकों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया। इनके मतानुसार भाषिक प्रतीक दो प्रकृत्यः मनोवैज्ञानिक तत्वों के संयोजन से निर्मित होता है, यथा—

$$\underset{(Sign)}{\text{प्रतीक}} = \frac{\text{संकेतक}\ (Signifiant}{\text{संकेतित}\ (Signifie)}$$

संकेतक एवं संकेतित घनिष्टतः सम्पृक्त होते हैं और एक का प्रत्यास्मरण दूसरे को भी उपस्थित करता है। संकेतित स्वनिमों द्वारा तथा संकेतक अर्थ द्वारा प्रतिरूपित होता है। भाषिक प्रतीक किसी वस्तु एवं उसके नाम का संयोजन नहीं है वरन् एक अवधारणा और ध्वनिबिंब का सम्मिलन है। अतः इसकी दोरुखी मनोवैज्ञानिक सत्ता होती है। सेस्यूर भाषिक प्रतीक की दो मौलिक विशेषताएँ मानते हैं—प्रथम ये शुद्ध पारंपरिक और यादृच्छिक होते हैं अतः संकेतक एवं संकेतित के मध्य कोई आंतरिक या प्राकृतिक संबंध नहीं होता है और द्वितीय यह रैखिक होते हैं। रेखीयता की यह विशेषता मुख्यतः संकेतित में दृष्टिगत होती है जिसका अनुक्रमिक अंशों में खंडीकरण संभव है। ये अंश निर्धारित और सुनिश्चित अनुक्रम में संयुक्त होकर भाषा का निर्माण करते हैं। कोई भी भाषा प्रतीकों का संघात नहीं वरन् उनके निश्चित निर्धारित एवं व्यवस्थित क्रम का परिणाम होती है अतः एक रेखीयता का यह अभिलक्षण भाषा को अन्य संकेत व्यवस्थाओं से भिन्न स्थापित करता है। संकेतक एवं संकेतित का संबंध नहीं वरन् वे स्वयं भी यादृच्छिक होते हैं साथ ही ये संबंधपरक एवं अंतराश्रयी हैं अतः भाषिक प्रतीक की सत्ता स्वयं के कारण नहीं होती है वरन् अन्य से भिन्नता रखने के कारण होती है और यही विशेषता संकेतक एवं संकेतित पर भी लागू होती है।

भाषा के संदर्भ में सेस्यूर प्रतीक का अर्थ शब्दों, शब्द समूहों, वाक्यों से लेते हैं जिन्हें आगे घटक प्रतीकों में विश्लेषित किया जा सकता है। इनके विचारानुसार प्रतीक दो प्रकार के होते हैं- यदि प्रतीक का आगे घटक प्रतीक में विश्लेषण न हो पाए तो वह **सरल प्रतीक** कहलाता है और यदि उसका निर्माण दो या अधिक प्रतीकों द्वारा हो तो उसे **संबंधिम (syntagm)** कहते हैं। सरल प्रतीक पूर्णतः यादृच्छिक होते हैं जबकि संबंधिम सापेक्षिक रूप में। प्रत्येक संबंधिम प्रतीक अपने घटकों से विन्यासक्रमी संबंध तथा समान अभिरचना वाले अन्य संबंधिमों से सारणिक संबंध रखता है।

भाषा व्यवस्था के सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या एवं स्पष्टीकरण हेतु सेस्यूर ने तीन सार्थक युग्म प्रतिपादित किए- लांग एवं परोल; **एककालिक एवं द्विकालिक**; सारणिक एवं शृंखलात्मक। भाषिक व्यवहार एवं उसके वास्तविक प्रतिरूपण के मध्य प्राप्त भिन्नता को स्पष्ट करने तथा अध्ययन विषय की प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए सेस्यूर ने **लांग** एवं **परोल** का वर्गीकरण प्रतिपादित किया। प्रारंभ में इन्होंने तीन अवधारणाएँ रखीं- लैंगेज (la langage), लांग (la langue) तथा परोल (la parole) किंतु बाद में दो पर ही ध्यान केन्द्रित किया। सेस्यूर का तर्क था कि जहाँ अन्य अध्ययन विषयों के समक्ष उद्देश्य पहले से स्पष्ट होता है जिसे वह विविध दृष्टिकोणों से विवेचित करते हैं वहाँ भाषाविज्ञान के साथ ऐसा नहीं है। यहाँ अध्येय वस्तु एवं माध्यम समान है और इसका अध्ययन विषय बहुआयामी एवं जटिल है। 19वीं शताब्दी के भाषिक अध्ययनों की सैद्धांतिक कमियों एवं त्रुटियों को समझने के कारण ही सेस्यूर 'लांग' जैसी क्रान्तिकारी अवधारणा पर पहुँचे। इनके मतानुसार लांग

एक ऐसी मानवीय विधा है जो समरूपी और बहुदिशिक है तथा जिसमें भौतिक, शारीरिक एवं मानसिक पक्ष साथ-साथ समाविष्ट है। लैंगेज ईश्वरीय शक्ति है जिसके द्वारा मानव किसी समाज में व्यवहृत भाषा का अर्जन करता है। लांग ऐसी अमूर्त, मानसिक एवं अप्रत्यक्ष शक्ति है जो भाषिक समुदाय के प्रत्येक सदस्य के मस्तिष्क में अवस्थित रहती है। यह अरैखिक है और व्यक्ति के साथ-साथ समाज से भी संबंधित है जहाँ एक ओर यह प्रत्येक व्यक्ति की धरोहर है वहाँ समाज के सभी सदस्यों के लिए समान है। मानव मस्तिष्क में नियम समुच्चय रूप में स्थित भाषा व्यवस्था (लांग) के आधार पर समाज में मानव द्वारा भाषा का प्रयुक्त/व्यवहृत रूप परोल कहलाता है। इसका संबंध व्यक्ति से होता है यह व्यक्ति विशेष का भाषिक व्यवहार है जो किसी लांग की परिसीमा में घटित होता है। यह मूर्त, भौतिक, तर्कसम्मत, प्रज्ञात्मक एवं यादृच्छिक होता है। इसमें रेखीयता का अभिलक्षण मिलता है। वक्ता द्वारा अपने विचारों एवं क्रियाविधि को भाषिक संहिता के आधार पर व्यक्त करने का साधन परोल ही है। लांग एवं परोल परस्पर आश्रित होते हैं। यहाँ प्रथम द्वितीय का सहायक भी है और परिणाम भी। अंतर्संबंधित होने पर भी दोनों प्रकृत्यः पूर्णतः भिन्न होते हैं। सेस्यूर ने इस तथ्य पर बल दिया कि भाषाविज्ञान का उद्देश्य लांग का अध्ययन करना है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंशों पर अध्ययन उनके एककालिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए।

सेस्यूर ने प्रत्येक भाषिक इकाई की अवधारणा को दो नवीन अवधारणाओं में वर्गीकृत किया जिसमें से एक लांग की इकाई का प्रतिरूपण करती है तथा दूसरी उसकी संवादी परोल को इकाई का प्रतिरूपण करती है, जैसे—ध्वनि उनके लिए एक स्वतंत्र इकाई नहीं है। यह लांग की इकाई के रूप में स्वनिम है तथा परोल की इकाई के रूप में ध्वनि है। इसी आधार पर दो पृथक अध्ययन क्षेत्रों का सृजन हुआ जो ध्वनि एवं उसके भाषिक प्रकार्यों का अलग-अलग अध्ययन विश्लेषण करते हैं- स्वनविज्ञान तथा स्वनप्रक्रिया। संरचनावादियों एवं परवर्ती भाषाविदों ने इस वर्गीकरण का स्वागत किया। इस प्रकार सेस्यूर ने स्वनिम, रूपिम, शब्द, संबंधिम, वाक्य प्रकार तथा अर्थ को लांग की इकाइयाँ माना जबकि ध्वनि (संस्वन) सहरूप, पदबंध, वाक्य एवं प्रयोग को परोल के स्तर पर उनकी संवादी इकाइयाँ स्वीकार किया।

सेस्यूर नव्य वैयाकरणों के इस मत से सहमत नहीं थे कि भाषा का ऐतिहासिक परीक्षण ही उसका वैज्ञानिक अध्ययन है। उन्होंने न केवल इस मत का खंडन किया वरन् यह स्थापित करने का भी प्रयास किया कि भाषा एक ऐसी संघटना नहीं है जिसकी सत्ता/अस्तित्व स्वतंत्र हो। भाषा प्राकृत विज्ञान का तथ्य नहीं है वरन् इसका संबंध मस्तिष्क, मानव एवं सामाजिक जीवन से है और इन्हीं सन्दर्भों में इसका अध्ययन विश्लेषण होना चाहिए। चूँकि ऐतिहासिक अध्ययन इन पक्षों का विश्लेषण नहीं कर सकता है। अतः यह विश्लेषण एक काल विशेष की भाषा व्यवस्था या संरचना को

समझने का अनुपयुक्त आधार कहा जा सकता है। अतः सेस्यूर ने एककालिक एवं द्विकालिक अध्ययन के मध्य भेद किया। एककालिक अध्ययन किसी स्थिति विशेष में भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था का तटस्थ विवरण प्रस्तुत करता है जबकि द्विकालिक अध्ययन काल सापेक्ष विवेचन करता है। सेस्यूर ने दो अक्षों की चर्चा की--

(1) **सहकालिक स्थितियों का अक्ष-** जो सहअस्तित्व वाली वस्तुओं के मध्य घटित संबंध का द्योतक है। इनके बीच काल का बंधन नहीं होता है।

(2) **अनुक्रमों का अक्ष-** जिस पर एक समय में एक ही वस्तु की चर्चा की जा सकती है किंतु जिस पर सभी वस्तुएँ अपने-अपने परिवर्तनों के साथ स्थित होती हैं।

सेस्यूर के मतानुसार एककालिक भाषाविज्ञान का उद्देश्य उन तर्कपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक संबंधों का अध्ययन करना है जो सहकालिक स्थिति वाले शब्दों को परस्पर बाँध कर वक्ता के मस्तिष्क में एक समुच्चय का निर्माण करते हैं जबकि द्विकालिक भाषाविज्ञान उन संबंधों का अध्ययन करता है जो अनुक्रम में आगत शब्दों को परस्पर बाँधते हैं और एक दूसरे के स्थानापन्न हो सकते हैं। एककालिक विश्लेषण पर बल डालते हुए सेस्यूर ने कहा कि जो भाषाविद् किसी स्थिति विशेष को ज्ञात करना, समझना चाहता है उसे उस स्थिति का सृजन करने वाले तथ्यों का बहिष्कार करना चाहिए जिनके कारण वह स्थिति उत्पन्न हुई है अर्थात् द्विकालिकता पर ध्यान नहीं देना चाहिए। सेस्यूर ने शतरंज के खेल के रूपक द्वारा अपने विचार को स्पष्ट करने का प्रयास किया। जिस प्रकार शतरंज के खेल में बोर्ड की स्थिति निरंतर परिवर्तित होने पर भी एक समय विशेष में खेल का संपूर्ण विवरण दिया जा सकता है और इस विवरण के लिए यह जानना अनिवार्य नहीं होता कि खेल की पूर्व स्थितियाँ कैसी थीं ठीक इसी प्रकार पूर्व स्थितियों का संदर्भ लिए बिना ही किसी भाषा का एककालिक वर्णन किया जा सकता है। यद्यपि प्रत्येक भाषा गतिशील होती है और वह निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरती रहती है तथापि भाषा स्थिति के विवरण के लिए सेस्यूर उसे स्थिर मानते हैं। यह अवश्य है कि भाषा में पूर्ण स्थिरता की स्थिति नहीं हो सकती है। अतः कह सकते हैं कि भाषा की एककालिक स्थिति एक बिंदु विशेष नहीं वरन् काल का एक प्रसार है जिसके दौरान गतिशीलता न्यूनतम रहती है।

भाषिक जगत में सेस्यूर के पदार्पण के पूर्व पारंपरिक दृष्टिकोण से व्याकरण को रूपरचना एवं वाक्य रचना दो वर्गों में विभाजित किया गया तथा इनमें भी रूपरचना के क्षेत्र में अधिक कार्य हुए और वाक्यरचना का क्षेत्र लगभग अछूता ही रहा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सेस्यूर ने भाषिक इकाइयों के मध्य प्राप्त व्यवस्थित संबंधों को दो भागों में बाँटा। सेस्यूर ने भाषिक प्रतीक के दो अभिलक्षण रेखांकित किए- यादृच्छिकता एवं एकरेखीयता। एकरेखीयता एवं प्रतियोग की अवधारणा के आधार पर दो प्रकार के संरचनात्मक संबंधों का उल्लेख किया- सारणिक एवं शृंखलात्मक। उनके अनुसार कथोपकथन में आगत भाषिक तत्व एक व्यवस्थित अनुक्रम में होते हैं।

एकरेखीयता से युक्त संबंधों के लिए इन्होंने 'सम्बन्धिम' शब्द का प्रयोग किया। एक के बाद एक आने वाली इकाइयों के बीच सदैव शृंखलात्मक संबंध मिलता है। ये संबंध प्रत्यक्ष एवं ज्ञात होते हैं इनके द्वारा अनुक्रमिकता तथा तत्वों की निश्चित संख्या लक्षित होती है। सेस्यूर इन्हें 'relations in presentia' की संज्ञा देते हैं। सारणिक संबंधों का स्थान मस्तिष्क में होता है आवश्यकता पड़ने पर वक्ता इनका प्रयोग करता है। इन संबंधों में प्राप्त इकाइयाँ न तो संख्या में निश्चित होती हैं और न ही निश्चित क्रम में होती हैं। भाषा प्रयोग के समय प्रत्यक्षतः उपस्थित न होने के कारण सेस्यूर इन्हें 'relations in absentia' कहते हैं। उदाहरण स्वरूप हिंदी का एक वाक्य लें-

भाषाविज्ञान रोचक विषय है। इस वाक्य के शब्दों के मध्य प्राप्त संबंध शृंखलात्मक है। यहाँ प्रयुक्त 'भाषाविज्ञान' के स्थान पर प्रयोग किए जाने योग्य शब्दों (जैसे- गणित, मनोविज्ञान आदि) की सारणी वक्ता के मस्तिष्क में अवस्थित है। इस सारणी के सदस्यों के मध्य प्राप्त संबंध सारणिक कहलाता है। यह संबंध अर्थ (जैसे- पर्यायवाची शब्दों के मध्य) अथवा रूप (जैसे- विभक्तियों के मध्य) अथवा दोनों स्तर पर हो सकते हैं। सेस्यूर शृंखलात्मक संबंधों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि भाषा की समस्त इकाइयाँ अपने आस-पास की इकाइयों से प्रभावित होती हैं तथा उनके द्वारा प्रतिबन्धित होती हैं।

10.2.3 प्राग संप्रदाय

सेस्यूर के उपरांत यूरोप में कई ऐसे केंद्रों का विकास हुआ जहाँ उनके सिद्धांतों से प्रेरित हो भाषाध्ययन को नवीन दिशा मिली। सेस्यूर से प्रभाावित होने पर भी इन संप्रदायों की विचारधारा में पर्याप्त भिन्नता थी क्योंकि अलग-अलग संप्रदायों से संबद्ध विद्वानों ने सेस्यूर द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का भिन्न-भिन्न अंशांशों में समर्थन किया। यूरोप में प्रचलित इन संप्रदायों में- प्राग, कोपैनहैगन एवं लंदन प्रमुख थे।

1926 में Cercle linguistique de Prague की स्थापना हुई। इसके मुख्य विद्वान मैथेसियस, त्रुबेत्स्कॉय, मुकारोफ़्स्की, याकोब्सन तथा शेरबा थे। इन विद्वानों ने मुख्यतः स्लाविक व रोमन्स भाषा क्षेत्र में कार्य किए। इन्होंने प्राग मण्डल के जरनल[6] में प्रकाशित लेख तथा निबन्धों के आधार पर एक व्यवस्थित भाषिक सिद्धांत का निरूपण किया। इस संप्रदाय से जुड़े विद्वानों ने भाषा को अभिव्यक्ति माध्यम की व्यवस्था माना जिसका उद्देश्य पारंपरिक ज्ञान की वृद्धि करना है तथा भाषाविद का लक्ष्य मूल कथन के प्रकार्य का विश्लेषण है। इस तथ्य का परिज्ञान करना है कि कहाँ, कैसे, किस प्रकार और किसके द्वारा कोई निश्चित भाषिक कथन प्रयोग में आए हैं। यह प्रकार्यात्मक व्यवस्था स्वनप्रक्रियात्मक, रूपरचनात्मक, वाक्यरचनात्मक एवं अर्थ सभी स्तरों पर मिलती है जिसको उदघाटित कर, जानने का प्रयास भाषाविद करता है। त्रुबेत्स्कॉय इन स्तरों को अंतर्संबंधित मानते हैं। इनके अनुसार स्वतंत्र होते

हुए ये स्तर समाकलित हैं। इस संप्रदाय के विद्वानों का ध्यान मुख्यतः ध्वन्यात्मक सिद्धांत पर केन्द्रित था। ध्वन्यात्मक सिद्धांत का विस्तृत व्यवस्थापरक प्रतिपादन त्रुबेत्स्कॉय की पुस्तक[7] में मिलता है। इस पुस्तक में लगभग दो सौ भाषाओं की ध्वन्यात्मक संरचना का वर्णन तथा लेखक के दस वर्षों के सैद्धांतिक कार्यों का समायोजन है।

प्राग संप्रदाय के विद्वानों ने स्वनिकी एवं स्वनप्रक्रिया के मध्य भिन्नता स्थापित की। इनके मतानुसार एक दूसरे के पूरक होने पर भी दोनों का उद्देश्य भिन्न है। स्वनिकी ध्वनियों की भौतिकी और कायिकी (शरीर क्रिया विज्ञान) का अध्ययन है और स्वनप्रक्रिया किसी व्यवस्था के अंतर्गत ध्वनियों के प्रकार्यों को विश्लेषित करता है। यह भेद प्रायः सभी आधुनिक भाषाविदों को भी मान्य है। स्वनप्रक्रियात्मक इकाइयों के प्रकार्यों को पूर्णतः विश्लेषित करने के लिए ध्वन्यात्मक सामग्री का प्रयोग वांछनीय है। भेदक विरोध (distinctive opposition) (किसी भाषा के दो शब्दों में एक ध्वनि के व्यतिरेक के कारण उत्पन्न अर्थगत भिन्नता) की अवधारणा इनके स्वनप्रक्रियात्मक सिद्धांत के केंद्र में थी। इसी आधार पर इन्होंने स्वनिम को-स्वनप्रक्रियात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण कारकों का योग, इस प्रकार परिभाषित किया। इन्होंने स्वनिम को अंशों में विभाज्य माना और अन्य संप्रदायों द्वारा स्वीकृत परमाणुवादी मनोदृष्टि का खंडन किया। इस विचार ने स्वनप्रक्रिया के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर शोध के नवीन मार्ग उदघाटित किए। इनके मतानुसार इन इकाइयों के तीन प्रमुख प्रकार्य हैं—

(अ) परिज्ञानात्मक—समस्त भाषिक इकाइयाँ ध्वनियों द्वारा निर्मित होती हैं। स्वनप्रक्रियात्मक इकाइयाँ अन्य भाषिक इकाइयों के परिज्ञान में सहायक होती हैं। वाक्य में कितनी इकाइयाँ हैं इसका ज्ञान करना परिज्ञानात्मक प्रकार्य का उद्देश्य है।

(आ) सीमांकन—वाक्य में दो इकाइयों के मध्य की सीमा तथा कौन सी इकाई प्रारंभ हो रही है और कौन सी समाप्त, इसका ज्ञान स्वनप्रक्रियात्मक इकाइयों के माध्यम से ही होता है, यथा- a name - an aim; a jar-ajar, हाथ ही - हाथी

(इ) प्रभेदात्मक—ये इकाइयाँ ही दो कथनों, शब्द समूह या शब्दों के मध्य सार्थक भेद उत्पन्न करती हैं, यथा—कल-काल; डगर-नगर; सुन्दर-सुन्दरी।

त्रुबेत्स्कॉय ने स्वनविज्ञान में कार्यरत बारह द्विचर प्रतियोगों (binary oppositions) का उल्लेख किया जो स्वयं में एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रणाली थी। इन्होंने तीन मान्यताएँ प्रतिपादित कीं जो भविष्य में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुईं—

1. यदि किसी भाषा की दो ध्वनियाँ समान स्वनिक संदर्भ में परस्पर स्थानापन्न किए जाने पर शब्द में अर्थ संबंधी भिन्नता लाएँ तो वे दो भिन्न-भिन्न भाषिक इकाइयाँ अर्थात् स्वनिम होती हैं, यथा- सर्बो क्रोशियन भाषा के शब्द 'pora' (छिद्र), 'bora' (झुर्री) यहाँ 'p' और 'b' समान संदर्भ में प्रभेदक का कार्य करने के कारण दो स्वतंत्र

स्वनिम हैं।

2. यदि दो ध्वनियों को समान स्वनिक स्थिति में प्रयोग किए जाने पर अर्थ में अंतर न आए तो उन्हें दो भिन्न स्वनिम न कहकर एक स्वनिम के प्रासंगिक परिवर्त्य (occasional variants) कहते हैं, यथा- जुकाम होने पर किसी व्यक्ति द्वारा कतिपय ध्वनियों का नासिक्यीकृत उच्चारण।

3. यदि किसी एक भाषा की दो ध्वनियों के औच्चारिक एवं श्रवणात्मक अभिलक्षणों में समानता हो किंतु वे कभी समान स्वनिक संदर्भ में प्रयुक्त न हों तो उन्हें सहस्वनिम कहते हैं। त्रुबेत्स्काय ने सहस्वनिम के लिए 'combinatory variants' शब्द का प्रयोग किया।

अपने सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए इन्होंने यह निरूपित किया कि यदि दो स्वनिम समस्त सम्भावित सन्दर्भों में प्रभेदक होते हैं तो उन्हें नियत प्रतियोग (constant opposition) में मानते हैं और यदि दो स्वनिम कतिपय स्थितियों में भिन्नता रखते हैं और अन्य में नहीं तो उन्हें निर्वैषम्य प्रतियोग (neutralizable opposition) में माना जाता है। ऐसी स्थिति में आगत स्वनिम आर्की स्वनिक (archi phoneme) कहलाता है अर्थात् दो स्वनिमों में समान प्रभेदक लक्षणों के योग की सहभागिता की स्थिति।

प्रतियोग सिद्धांत की चर्चा, प्राग विद्वानों ने रूपरचना के स्तर पर भी की, और रूपिम को 'आधारिक रूपरचनात्मक प्रभेदकताओं का योग' इस रूप में परिभाषित किया, जैसे—कारक, काल आदि की प्रभेदकता। प्रकार्यपरक एवं संरचनात्मक मनोदृष्टि का अनुपालन करने वाले इस संप्रदाय के विद्वानों ने वाक्य का गहन एवं सूक्ष्म विश्लेषण किया। इनके अनुसार वाक्य भाषा की मूलभूत इकाई है जिसके द्वारा वक्ता किसी सूक्ष्म या स्थूल सत्य के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वाक्य की संरचना संपूर्ण भाषा की व्याकरणिक संरचनानुरूप होती है। इन्होंने वाक्य द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर वाक्य को दो वर्गों में विभाजित किया—

थीम (theme) कथ्य- वाक्य के वे तथ्य जिनका ज्ञान पूर्व संदर्भ से होता है और सम्प्रेषण प्रक्रिया में इनका बहुत कम योगदान होता है। दूसरे शब्दों में सम्प्रेष्य भावों के अतिरिक्त थीम लगभग न के बराबर अर्थ अभिव्यक्त करता है।

रीम (rheme) पक्षपद- यह वाक्य का वह भाग है जो नवीन सूचनाएँ प्रदान कर सर्वाधिक भाव सम्प्रेषित करता है।

परवर्ती विद्वानों के लिए यह विभाजन विभिन्न भाषाओं की वाक्य रचना में प्राप्त व्यतिरेक को ज्ञात करने हेतु एक मूल्यवान उपकरण सिद्ध हुआ तथा अनेकानेक अज्ञात वाक्य रचनात्मक एवं शैली वैज्ञानिक तथ्यों के उदघाटन में सहायक हुआ। प्रागभाषाविदों ने दृढ़ता से इस विचार का समर्थन किया कि एककालिक अध्ययन पूर्ण, सरल एवं नियंत्रित सामग्री पर निर्भर होने के कारण यद्यपि अधिक तर्क संगत है तथापि

ऐतिहासिक अध्ययन को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता है। इन विद्वानों ने समसामयिक भाषाओं की संरचना पक्ष के अध्ययन के लिए तुलनात्मक पद्धति का भी प्रयोग किया। वंशानुक्रमिक दृष्टि से साम्य न रखने वाली, एक काल विशेष की भाषाओं की संरचना में प्राप्त असमानता का वर्णन भी इन विद्वानों ने किया। आधुनिक काल में विश्लेषण की यह पद्धति व्यतिरेकी विश्लेषण कहलाती है और इसका प्रयोग मुख्यतः भाषा शिक्षण एवं अनुवाद के क्षेत्र में हो रहा है।

10.2.4 कोपनहैगेन संप्रदाय

स्कैन्डिनेविया में सामान्य भाषाविज्ञान से संबंधित आरम्भिक अध्ययन डेनिश भाषाशास्त्री रास्क ने किए। इन्होंने नार्स, अवेस्ता, द्रविड़ आदि भाषाओं का विश्लेषण किया तथा भाषा परिवार एवं ध्वनि परिवर्तन जैसे विषयों का विवेचन किया। भारोपीय परिवार में अवेस्ता को स्थान दिलाने का श्रेय रास्क को ही जाता है। इस श्रृंखला के अन्य महत्वपूर्ण विद्वान **मैडविग**, **नोरीन** एवं **येस्पर्सन** थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इन विद्वानों द्वारा किए गए कार्य एवं कतिपय अन्य विद्वानों के समूह को कोपेनहैगेन संप्रदाय नाम दिया गया। 1934 में स्थापित इस केंद्र का महत्वपूर्ण जरनल 1939 में निकलना प्रारंभ हुआ।[9] इस संप्रदाय के दो प्रमुख स्तम्भ **वी. ब्रांडल** तथा **एल. हेल्मस्लेव** माने जाते हैं। इन्होंने भाषाविज्ञान को अधिक रूपात्मक एवं अमूर्त बनाने का प्रयास किया। दर्शन और विशेषतः तर्कशास्त्र में रुचि होने के कारण इन विद्वानों ने भाषिक विश्लेषण में तार्किक संकल्पनाओं का प्रयोग किया। बीजगणितीय पद्धति का अनुगमन इनके सिद्धांत को जटिल बनाता है और संभवतः इसी कारण अनेक भावी सम्भावनाओं से युक्त होने पर भी इनकी पद्धति के प्रयोग एवं पालन में कुछ ही भाषाविद संलग्न हुए।

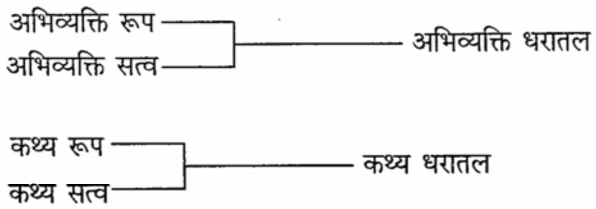
'एक्टा लिंग्विस्टिका' के प्रथम अंक में प्रकाशित लेख में ब्रांडल ने संरचनात्मक भाषाविज्ञान की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया- एककालिक अध्ययन, लॉग तथा भाषा संरचना। ब्रांडल के अनुसार मूलभूत संकल्पनाएँ संबंधपरक एवं सामान्य दो श्रेणियों में मिलती हैं। ध्वनि, रूपरचना तथा वाक्य रचना समस्त स्तरों पर इनका प्रतिफलन होता है। ब्रान्डल वाक्य रचना को स्वतंत्र सत्ता मानते हैं। यह प्राग भाषाविद त्रुबेत्स्कॉय के प्रतियोग सिद्धांत से सहमत थे और इन्होंने इस सिद्धांत को अर्थ के क्षेत्र पर भी आरोपित करने का प्रस्ताव रखा। इनके अनुसार 19वीं शताब्दी का तुलनात्मक व्याकरण पुरातात्विक, प्रत्यक्षवादी एवं विधिविषयक होने के कारण भाषा के दार्शनिक और तार्किक अध्ययन के लिए भाषिक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण में असमर्थ था। दर्शन तथा तर्कशास्त्र में पूर्वाधिकार होने के कारण कुछ विद्वान इन्हें दार्शनिक अधिक और भाषाविद कम मानते हैं और संभवतः यही कारण था कि समकालीन भाषाविदों ने इनकी सैद्धांतिक भाषिक धारणाओं का समर्थन नहीं किया।

इस संप्रदाय के दूसरे प्रमुख विद्वान हेल्मस्लेव ने **उल्डाल एच. जे.** तथा **टोगबी के.** के साथ मिलकर 1935 के अंत में एक नवीन भाषिक सिद्धांत प्रस्तुत किया तथा पूर्व प्रचलित सिद्धांतों से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए उसे **ग्लोसेमैटिक्स** नाम दिया। 1943 में प्रकाशित इनकी पुस्तक[10] का अंग्रेजी अनुवाद 1953 में प्रकाशित हुआ।[11] हेल्मस्लेव के अनुसार भाषा समग्रता अंश नहीं वरन संबंधों द्वारा निर्मित होती है अतः भाषा का संरचनात्मक विश्लेषण ही वैज्ञानिक विश्लेषण है क्योंकि सरंचनात्मक विश्लेषण भाषिक इकाइयों (अंश) की अन्य विशेषता को ध्यान में न रखकर उनके मध्य प्राप्त संबंधों के आधार पर भाषिक वर्णन करता है। हेल्मस्लेव ने निरूपित किया कि प्रत्येक प्रक्रिया की एक संवादी व्यवस्था होती है जिसके आधार पर प्रक्रिया को सीमित अंशों तथा अंशों के संयोजनों में विश्लेषित वर्णित किया जा सकता है तथा इस प्रकार इकाइयों (अंशों) को वर्गीकृत कर उनके संभावित संयोजनों का एक सामान्य एवं विस्तृत कैलकुलस निर्धारित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि सेस्यूर की मान्यता का समर्थन करते हुए हेल्मस्लेव ने भाषिक इकाइयों के मध्य घटित संबंधों को महत्वपूर्ण माना।

इन्होंने सेस्यूर की इस मान्यता- 'भाषा रूप है सत्व नहीं'- को अधिक विस्तृत एवं सूक्ष्म रूप में विवेचित किया। उनके अनुसार भाषा संकेतों की व्यवस्था है जिसके दो पक्ष हैं—

1. अभिव्यक्ति धरातल (expression plane)
2. कथ्य धरातल (content plane)

अभिव्यक्ति धरातल भाषा का बाह्य पक्ष अर्थात् उच्चरित एवं लिखित रूप है जबकि कथ्य धरातल भाषा का वैचारिक रूप है। सामान्यतः किसी भाषा में न तो समस्त अभिव्यक्ति साधनों का प्रयोग होता है और न ही सभी कथ्य का और प्रत्येक भाषा इन दोनों धरातलों पर प्राप्त सामग्री का उपयोग अपने-अपने ढंग से करती है। हेल्मस्लेव इस विवेचन को अधिक सूक्ष्मता प्रदान करने के लिए दोनों धरातलों पर भिन्न रूप एवं सत्व का उल्लेख करते हैं—



आरेख-45

कथ्य सत्व है वास्तविक वस्तु, भाव या अर्थ तथा कथ्य रूप है उस वास्तविक

वस्तु, भाव या अर्थ का वह भाषिक रूप जो किसी भाषा में प्राप्त होता है। इस प्रकार कथ्य सत्व भाषा निरपेक्ष तथा कथ्य रूप भाषा सापेक्ष होता है। कथ्य सत्व सार्वकालिक और सार्वभाषिक है जबकि कथ्य रूप देशकाल के अनुरूप भिन्नता रखता है तथा विश्व की विभिन्न भाषाओं में नाना प्रकार की वस्तुओं के लिए अलग-अलग शब्दों का प्रयोग इसका प्रमाण है। अभिव्यक्ति सत्व हैं ध्वनियाँ और भाषा में इनका प्रयोग अभिव्यक्ति रूप है। अभिव्यक्ति सत्व एवं कथ्य सत्व भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बाह्य या गौण माने जाते हैं जिनका अध्ययन क्रमशः स्वनिकी एवं अर्थविज्ञान के अंतर्गत होता है। अभिव्यक्ति रूप एवं कथ्य रूप विशेष महत्व के और आंतरिक माने जाते हैं। प्रत्येक भाषा में इनका पृथक-पृथक स्वरूप होता है और स्वनप्रक्रिया तथा व्याकरण इनका क्षेत्र है। जहाँ सत्व हर भाषा का समान वहाँ रूप हर भाषा का अपना होता है। इस प्रकार कथ्य सत्व है- हमारे चतुर्दिक व्याप्त समस्त जागतिक वास्तविकताएँ और कथ्य रूप है कथ्य सत्व की हमारी मानसिक प्रस्तुति अर्थात हम किस प्रकार चतुर्दिक व्याप्त वास्तविकताओं को ग्रहण कर अभिव्यक्त करते हैं। अभिव्यक्ति सत्व भाषा का भौतिक ध्वनि पक्ष है और अभिव्यक्ति रूप अभिव्यक्ति सत्व का मानसिक प्रस्तुतीकरण है अर्थात् संप्रेषण प्रक्रिया में हम किस प्रकार भाषिक प्रतीक को ग्रहण कर अभिव्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में, वाग्ध्वनियाँ अभिव्यक्ति सत्व के अंतर्गत आती हैं और स्वनिम अभिव्यक्ति रूप में; जागतिक वास्तविकता का परिचय देने वाली कोटियाँ कथ्य सत्व के अंतर्गत आती हैं तथा भाषा के शब्द समूह और व्याकरण द्वारा की गई उनकी व्यवस्था कथ्य रूप में। अभिव्यक्ति रूप एवं कथ्य रूप परस्पर संबंधित होते हैं और हेल्मस्लेव इनके संबंध को प्रतिनिधान (commutation) की संज्ञा देते हैं। प्रतिनिधान अर्थात एक रूप सारिणी के सदस्यों के मध्य घटित परिवर्तन। भाषिक इकाइयों का समान संदर्भ में प्रतिस्थापन। यदि दोनों धरातलों पर अनुक्रम बन्धनीय परिवर्तन घटित करे तो उन्हें परिवर्तनीय माना जाता है। अभिव्यक्ति रूप एवं कथ्य रूप में जहाँ संबंध नहीं होता उसे **चर** (variant) की संज्ञा दी जाती है। इनके मध्य कतिपय **निश्चर** (invariant) भी होते हैं। हेल्मस्लेव के अनुसार- भाषा अविकल अपरिवर्तों/निश्चरों की व्यवस्था है। इन्होंने **ग्लॉसीम** को लघुतम अंश या भाषा के अखंडीय निश्चर कहकर परिभाषित किया। अभिव्यक्ति धरातल के निश्चर **सेनिम** ceneme तथा कथ्य धरातल के निश्चर **प्लेरीम** (pleneme) कहलाते हैं।

हेल्मस्लेव ने अंतर्संम्बंधों पर अत्यधिक बल दिया। इनके अनुसार भाषा संरचना को अंशों में विभाजित करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना उनके पारस्परिक संबंधों का वर्णन है। अन्य शब्दों में अंशों के मध्य प्राप्त निर्भरताओं या प्रकार्यों का वर्णन ही भाषाविज्ञान का उद्देश्य है। ये तीन प्रकार्यों की चर्चा करते हैं—

1. **अन्योन्याश्रित** (inter dependence)- किसी स्थिति में यदि 'अ', 'ब' का पूर्वानुमान करता है और 'ब' 'अ' का तो दो चरों के मध्य प्राप्त यह निर्भरता

अन्योन्याश्रित कहलाती है।

2. निर्धारण (determination)- यदि 'अ' 'ब' का पूर्वानुमान करे किंतु 'ब' 'अ' का पूर्वानुमान नहीं करता है तब एक चर तथा निश्चर के मध्य प्राप्त यह निर्भरता निर्धारण कहलाती है।

3. संघात- इस स्थिति में न 'अ' 'ब' का पूर्वानुमान करता है और न 'ब' 'अ' का। इन दो निश्चरों के मध्य की निर्भरता को संघात कहते है। ये तीनों आधारिक प्रकार्य विभिन्न विन्यासात्मक एवं शृंखलात्मक संबंधों में मिलते हैं।[12]

प्रत्येक भाषा नवीन अभिव्यक्ति के लिए नए संकेत निर्मित करती है अतः किसी भाषा में असंख्य संकेत मिलते हैं। ग्लॉसोमैटिक्स संकेत को अंश में विभाजित कर उन्हें फिगरे (figurae) पारिभाषिक नाम प्रदान करता है। फिगरे अर्थात सीमित एकपक्षीय इकाइयाँ जो असीमित संकेतों का निर्माण करें। भाषा की यह सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है कि सीमित संख्यक फिगरे असीमित प्रतीकों का उत्पादन करते हैं। इन्होंने प्रतिपादित किया कि अभिव्यक्ति धरातल के फिगरे (स्वनिम) संकेत नहीं करते हैं और कथ्य धरातल पर फिगरे (आर्थी कोटियाँ) संकेतित नहीं होते हैं। इस प्रकार जहाँ तक बाह्य प्रकार्यों एवं अभाषिक तत्वों से संबंध की बात है भाषा एक प्रतीक व्यवस्था है किंतु जहाँ तक आंतरिक संरचनाओं का प्रश्न है भाषा फिगरे की व्यवस्था है।

यह सिद्धांत भाषा के अनुशीलन को अत्यधिक अमूर्त बना देता है जिस कारण भाषिक अध्ययन के दो महत्वपूर्ण अंग स्वनिकी और अर्थ विज्ञान लगभग महत्त्वहीन हो जाते हैं। रूपात्मक तर्कशास्त्र की प्रविधियों पर विशेष बल के कारण यह सिद्धांत एल्गोरिथम की अमूर्त व्यवस्था के रूप में विकसित हुआ तथा समस्त प्रतीक व्यवस्थाओं के सार्वभौमिक सिद्धांत के रूप में उभरा किंतु अभी तक किसी भी प्राकृतिक भाषा का प्रभावकारी वर्णन विश्लेषण इसके द्वारा संभव नहीं हुआ।[13] इस सिद्धांत का प्रभाव स्तर परक व्याकरण तथा प्रतीक एवं आलोचना सिद्धांतों पर दृष्टिगत होता है।

10.2.5 लंदन संप्रदाय

सर विलियम जोन्स के काल से ही ब्रिटिश भाषावैज्ञानिकों की रुचि संस्कृत, प्राकृत, तिब्बती आदि पूर्वी भाषाओं में थी। अट्ठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में भी इस संप्रदाय में विस्तृत एवं गहन शोधकार्य हुए। यही नहीं पारिवारिक वर्गीकरण और अंतर्महाद्वीपीय संबंधों की खोज भी इन विद्वानों के प्रिय विषय थे। सन 1900 में डेनियल जोन्स ने अंग्रेजी स्वनप्रक्रिया पर कार्य किए। स्वनविज्ञान पर अधिक कार्य होने के कारण इस संप्रदाय को कभी-कभी 'स्वनवैज्ञानिक स्कूल' भी कहा गया। जे.आर. फर्थ इस संप्रदाय के दूसरे प्रमुख विद्वान थे जो 1920 से 28 के दौरान भारतवर्ष में अंग्रेजी के प्राध्यापक भी रहे। तमिल के अच्छे ज्ञाता होने के कारण इन्होंने तमिल उच्चारण व्यवस्था पर भी लेख लिखा। इनके अध्ययन का मुख्य क्षेत्र स्वनिम विज्ञान तथा

किसी कथन की स्वनिक सामग्री के विश्लेषण के लिए सारणिक एवं शृंखलात्मक संबंधों के मध्य भेद भी करता है। इन विद्वानों ने स्वनगुण के पाँच भेद बताए—

1.	वाक्य स्वनगुण	अनुतान
2.	शब्द स्वनगुण	स्वर संगति
3.	अक्षर स्वनगुण	तान, बलाघात
4.	अक्षर अंश स्वनगुण	अक्षर आदि/मध्य/अंत में प्राप्त महाप्राणीकरण
5.	संहिता (juncture)	उच्चस्तरीय संरचनात्मक इकाइयों (शब्द रूपिम) के मध्य की सीमा में प्राप्त।

10.3 अमरीकी संप्रदाय

भाषाविज्ञान में यदि संरचनात्मकता इस तथ्य पर आश्रित है कि कौन से विद्वान सेस्यूर के सिद्धांतों से सहमत थे और कौन नहीं अथवा किस विद्वान ने सेस्यूर द्वारा निरूपित सिद्धांतों को स्वीकार किया या किसने अस्वीकार, तो इस स्थिति में केवल प्राग तथा कोपेनहैगेन संप्रदाय ही संरचनावादी माने जायेंगे किंतु यदि संरचनात्मक से तात्पर्य एक विशेष मनोदृष्टि से लिया जाये जिसके अंतर्गत भाषा को एक ऐसी संप्रेषण व्यवस्था के रूप में देखा जाए जिसकी इकाइयाँ असतत एवं परस्पर आश्रित हैं जिनके संयोग व्यवस्था एवं संबंध का निर्माण करते हैं तथा स्वनप्रक्रियात्मक रूपरचनात्मक और वाक्यीय स्तरों का परिज्ञान तथा इकाइयों के अन्योन्याश्रित संबंधों के आधार पर उनकी परिभाषा करना ही जहाँ भाषाविद् का एकमात्र उद्देश्य है, यह विचार मान्य होने पर ब्लूमफील्ड तथा एडवर्ड सपीर की छाया में पुष्पित-पल्लवित अमरीकी संप्रदाय भी संरचनात्मक के अंतर्गत स्वीकार किया जाएगा।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप विशेषतः जर्मनी भाषिक अध्ययनों का केंद्र था। जर्मनी के इस आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह के छुटपुट प्रमाण यद्यपि यत्र तत्र दृष्टिगत होते हैं, यथा- फ्रांसीसी विद्वान एम.ब्रील., स्विस विद्वान सेस्यूर तथा अमरीकी विद्वान **डब्लू.डी. विह्टने** के प्रयास तथापि भाषाध्ययन की धारा दीर्घकाल तक प्रमुख रूप से भारोपीय अध्ययनों एवं जर्मनी से जुड़ी रही। उस काल में बॉन, बर्लिन, लिपजिंग आदि जर्मन विश्वविद्यालय भाषाशास्त्रियों के लिए तीर्थस्थल बन गए तथा जर्मनी की यात्रा एवं वहाँ अध्ययन-अध्यापन विद्वानों के लिए गर्व का कारण माना गया। इस जर्मन परंपरा को अमरीकी शिक्षण संस्थाओं तक पहुँचाने का श्रेय विह्टने को जाता है जो स्वयं संस्कृत के ज्ञाता एवं शिक्षक थे। किंतु इन्होंने अपनी पुस्तकों[14] में जिस मनोदृष्टि एवं भाषिक पद्धति की चर्चा की वह जर्मन परंपरा से भिन्न थी और अमरीकी शिक्षण संस्थानों में उसका व्यवहार नहीं किया गया। तत्कालीन अमरीकी अध्ययन भी यूरोपीय अध्ययनों की भाँति ग्रीक, लैटिन, जर्मेनिक, संस्कृत, रोमांस आदि

भाषाओं तक ही सीमित थे। उस समय तक विद्वानों का ध्यान अमरीकी जनजातियों की बोलियों में प्राप्त भिन्नता की ओर आकर्षित नहीं हुआ और इन बोलियों के अध्ययन का संबंध नृविज्ञान से जोड़ा गया। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य फ्रांन्ज बोआज़ ने किया। जर्मनी में जन्मे तथा भौतिक शास्त्र एवं भूगोल जैसे विषयों में शिक्षित **बोआज़** जब अट्ठाईस वर्ष की आयु में अमरीका पहुँचे तक अमरीकी जनजातियों की वैविध्यपूर्ण संस्कृति एवं परंपराओं को ज्ञात करने में इनकी रुचि हुई। इन्होंने पाया कि संस्कृति का पूर्ण वर्णन मनुष्य की भाषा और साहित्य ज्ञान के अभाव में संभव नहीं होता है। चूँकि भाषा का इतिहास संस्कृति के इतिहास को प्रतिबिम्बित करता है अतः संस्कृति के अभाव में किया गया अध्ययन अपूर्ण एवं भ्रामक होगा।

बोआज़ के पूर्व अमरीकी विद्वानों ने विभिन्न जनजातियों की भाषाओं का वर्णन भारोपीय व्याकरण प्रारूप के आधार पर करने का असफल प्रयास किया। नव्य वैयाकरण परंपरा से परिचित होने पर भी अमरीकी विद्वानों ने उनके सिद्धांतों को अज्ञात इतिहास तथा अलिखित सामग्री वाली अमरीकी भाषाओं पर आरोपित करना उचित नहीं समझा। बोआज़ ने यह अनुभव किया कि उनका परिचय एवं सम्पर्क विशिष्ट व्याकरणिक संरचनाओं से हुआ है जिन्हें वरेण्य भाषाओं के ढाँचे में रखकर विश्लेषित नहीं किया जा सकता है। अतः उन्होंने इस तथ्य को रेखांकित किया कि प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ट व्यवस्था होती है जिसका वर्णन और विश्लेषण एक सामान्य पद्धति एवं प्रारूप द्वारा संभव नहीं है। इस प्रकार किसी भाषा की सामग्री स्वयं ही उपयुक्त विश्लेषण पद्धति का ज्ञान कराती है। स्पष्ट है कि बोआज़ की भाषिक मनोदृष्टि आनुभविक, अनुगमनात्मक एवं सावधानीपूर्वक किए गए भाषा-निरीक्षण पर आश्रित थी। इन्होंने भाषा-सर्वेक्षण की नवीन प्रविधियों का उल्लेख करने के साथ-साथ यह निरूपित किया कि किसी भाषा से संबंधित सामग्री संकलन मातृभाषाभाषी सूचक द्वारा सर्वाधिक सफलता से किया जा सकता है। अमरीकी भाषाओं के लिप्यंकन के लिए इन्होंने अंतर्राष्ट्रीय स्वन वर्णमाला पर आधृत एक नवीन स्वन्यात्मक लेखन व्यवस्था का विकास किया।

हुम्बोल्ड एवं हर्डर द्वारा स्थापित भाषिक सापेक्षवाद के सिद्धांत से बोआज़ प्रभावित थे। फलस्वरूप इन्होंने प्रतिपादित किया कि संस्कृतिगत विविधताएँ जगत के प्रत्यक्षीकरण में भिन्नता उत्पन्न करती हैं, जिस कारण व्यक्तियों के विचारों तथा मान्यताओं में भेद होता है और जो अंततः भाषा में भिन्नता लाता है। निश्चित ही एक भाषा के रूप तथा वर्ग दूसरी भाषाओं से पृथक होते हैं अतः उन्हें अन्य पर आरोपित नहीं करना चाहिए। भाषाविद का उद्देश्य प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक कोटियों का उदघाटन एवं वर्णन है। बोआज़ ने संकालिक अध्ययन को महत्व दिया। इनका संकालिक अध्ययन सेस्यूर की भाँति स्थिर नहीं अपितु गत्यात्मक था। स्पष्ट है कि भाषाध्ययन की नृवैज्ञानिक मनोदृष्टि के प्रणेता बोआज़ थे।

10.3.1 सपीर

जर्मनी में जन्मे एडवर्ड सपीर मूलतः यहूदी थे जिनकी शिक्षा-दीक्षा अमरीका में हुई। ये बोआज़ के शिष्य, एक अच्छे साहित्यकार, संगीतज्ञ, आलोचक तथा नृवैज्ञानिक थे। अमरीकी जनजातियों की संस्कृति का गहन अध्ययन करते समय इनकी रुचि भाषा के अध्ययन के प्रति जागृत हुई। मानव शास्त्री होने के कारण सपीर भाषा को बृहत सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रख उसका विश्लेषण करने के पक्षधर थे। सपीर ने भाषा को एक विशुद्ध मानवीय, सामाजिक और सांस्कृतिक घटना के रूप में माना जो ऐच्छिक प्रतीकों द्वारा विचारों, भावनाओं तथा अभिलाषाओं को अभिव्यक्त करने वाली असहज संप्रेषण व्यवस्था है। इस मान्यता के कारण सपीर भाषाविज्ञान को सामाजिक विज्ञान मानते हैं जिसका स्वतंत्र स्वयत्ततापूर्ण क्षेत्र नहीं है वरन जो मानवविज्ञान, मनोविज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि से संबद्ध है। भाषा के प्रति सपीर का समग्रतावादी दृष्टिकोण था। भाषा की आंतरिक व्यवस्था, उसकी समाज सापेक्षता, इतिहास, संस्कृत एवं साहित्य से संबंध आदि के प्रति वह जागरुक थे। 1921 में प्रकाशित पुस्तक 'भाषा' तथा अन्य अनेक लेखों[15] के माध्यम से सपीर के मनो-सामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई। इन्होंने प्रतिपादित किया कि प्रत्येक भाषा की अपनी एक व्यवस्था होती है और इसलिए प्रत्येक भाषा चतुर्दिक व्याप्त जागतिक वास्तविकता का नामांकन और वर्गीकरण अपनी व्यवस्थानुरूप करती है। अपनी व्यवस्थानुरूप भाषा चारों ओर के जीवन पर अपनी छाप छोड़ देती है। किसी अन्य भाषा का प्रयोक्ता जगत को भिन्न दृष्टिकोण से देखता है। उसकी अपनी सांस्कृतिक व सामाजिक व्यवस्था उसकी भाषा व्यवस्था को प्रभावित करती है। इस प्रकार ये तीनों व्यवस्थाएँ एक-दूसरे में प्रतिबिंबित होती हैं।

सपीर ध्वनि के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर विशेष बल देते हैं। इनके अनुसार ध्वनि स्वयं में महत्वपूर्ण नहीं होती है बल्कि अन्य ध्वनियों के साथ निर्मित अभिरचनाएँ उसको महत्व देती हैं। ये ध्वनि अभिरचनाएँ प्रत्येक भाषा की पृथक-पृथक होती हैं। अतः किन्हीं दो भाषाओं में प्राप्त समान ध्वनि दो भिन्न-भिन्न ध्वनि अभिरचनाओं में घटित हो सकती है। सपीर ने अपने कतिपय लेखों के माध्यम से स्वनिम की संकल्पना को स्पष्ट किया और उसकी मनोवैज्ञानिक सत्ता को स्वीकारा। इनके मतानुसार रूप, रूपिम, शब्द आदि भाषा के महत्वपूर्ण तत्व हैं। इन्होंने भाषा द्वारा अभिव्यक्त धारणाओं को चार वर्गों में विभक्त किया—

1. **मूर्त अवधारणाएँ-** मूर्त वस्तुओं तथा पदार्थों के द्योतक शब्द इस वर्ग में आते हैं, यथा- घर, बत्तख, दौड़, पढ़ इत्यादि।

2. **व्युत्पादक अवधारणाएँ-** वे शब्द जो मूर्त अवधारणाओं से व्युत्पन्न होते हैं, यथा- बेघर, पढ़ाई आदि।

के विचारों से प्रभावित था। इसके माध्यम से इन्होंने भाषाध्ययन की सुनिर्धारित, वैज्ञानिक एवं यांत्रिक प्रणाली प्रस्तुत करने का प्रयास किया। कालान्तर में ब्लूमफील्ड ने मनोवैज्ञानिक प्रभाव से स्वयं को मुक्त कर लिया। इनके प्रारंभिक कार्य जर्मन रूपरचना एवं ध्वनि से संबंधित थे। धीरे-धीरे इनकी रुचि सामान्य भाषाविज्ञान में जाग्रत हुई। उस काल में अमरीकी जनजातियों की भाषाओं के प्रति जागरुकता से ब्लूमफील्ड भी अछूते न रहे और इन्होंने अलगोकियन, मिनोमिनी, टेगलोग आदि अमरीकी भाषाओं का विस्तृत विश्लेषण किया। ब्लूमफील्ड ने संस्कृत वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी की अत्यंत प्रशंसा की।[19] अष्टाध्यायी में निरूपित संकालिक, सूत्रात्मक, बीजगणितीय विश्लेषण पद्धति से प्रभावित हो इन्होंने उसी प्रारूप पर मिनोमिनी भाषा के वर्णनात्मक व्याकरण की रचना का कार्य प्रारंभ किया जो इनकी मृत्यु के उपरांत प्रकाशित हुआ।

1933 में ब्लूमफील्ड की द्वितीय पुस्तक **भाषा** का प्रकाशन हुआ जिसमें इन्होंने भाषाविज्ञान का उद्देश्य सिर्फ भाषिक आधारों पर भाषा का विश्लेषण एवं वर्णन बताया तथा भाषाविज्ञान को दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान आदि से मुक्त एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित किया जिसकी सुनिश्चित पद्धति, स्वयत्ततापूर्ण क्षेत्र तथा आनुभविक अध्ययन सामग्री होती है। इन्होंने भाषिक रूप के स्वरूप, वर्गीकरण तथा वर्णन द्वारा भाषा विश्लेषण की एक निश्चित, स्पष्ट एवं वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति के निरूपण का प्रयास किया। विषय की वैज्ञानिकता, वस्तुनिष्ठता तथा पद्धतिगत सुनिश्चितता पर अधिक बल तथा **'भाषा'** पुस्तक में प्रकाशित कतिपय वक्तव्यों[20] के कारण विद्वानों के मध्य इस भ्रामक धारणा का प्रसार हुआ कि ब्लूमफील्ड भाषा के अर्थ पक्ष को विश्लेषण से विलग करना चाहते थे किंतु वास्तविकता यह नहीं थी। यांत्रिकतावाद के समर्थक ब्लूमफील्ड ने अपनी पुस्तक में एकाधिक स्थलों पर अर्थ से संबंधित विचार किए तथा कई भाषिक इकाइयों की परिभाषा भी आर्थी आधार पर की। भाषाविद ब्लूमफील्ड के समक्ष प्रश्न अर्थ की उपस्थिति (प्रयोग) या अनुपस्थिति (अप्रयोग) का नहीं था वरन अर्थ के उचित व अनुचित प्रयोग का था। जिस कारण इन्होंने अर्थ के कतिपय प्रयोगों के औचित्य को चुनौती दी। अतः यह मानना उचित न होगा कि इन्होंने भाषाविश्लेषण से अर्थ पक्ष को बहिष्कृत किया।

ब्लूमफील्ड द्वारा निरूपित पद्धति भाषिक संप्रवाह का विखंडन एवं वर्गीकरण करती है। इनकी पद्धति भाषिक रूप की अवधारणा पर आधृत है। इनके अनुसार भाषिक रूप ऐसा लघुतम अंश है जो लघुतम ध्वनियों के साथ लघुतम अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। इन्होंने भाषिक रूप को मुक्त एवं बद्ध तथा सरल एवं जटिल इन दो अलग-अलग वर्गों में विभाजित किया। भाषिक रचनाओं के विश्लेषण के लिए आसन्न घटक पद्धति का निरूपण भी ब्लूमफील्ड द्वारा किया गया और भाषिक रचना के अंतर्केन्द्रिक एवं बहिर्केंद्रिक वर्गों की चर्चा की। वितरण सिद्धांत के मूल बीज भी इनके अध्ययन में मिलते हैं।

अपनी पुस्तक में ब्लूमफील्ड ने स्वनिमिकी, स्वनप्रक्रिया, रूपरचना एवं वाक्यरचना आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा के साथ-साथ ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति, बोली भूगोल, भाषा परिवर्तन जैसे विषयों को भी ग्रहण किया। इन्होंने अपने कार्यों में वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक कार्यों को समाकलित करने का प्रयास किया। ऐतिहासिक अध्ययन क्षेत्र में इनकी दो उपलब्धियाँ थीं- (1) भारोपीय भाषाविज्ञान के सैद्धांतिक आधार को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करने का प्रयास, (2) भारोपीय भाषा अध्ययनों को सामान्य भाषाविज्ञान के क्षेत्र में दृढ़ता से स्थापित करने का प्रयास। इनके मतानुसार एककालिक विवेचन स्वयं में पूर्ण होता है जबकि ऐतिहासिक/द्विकालिक में यह विशेषता नहीं मिलती है। इस प्रकार इनके संरचनात्मक रूपरेखा वाले ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययनों ने द्विकालिक विश्लेषण को प्रोत्साहन दिया। इस विश्लेषण का निश्चित प्रारूप स्वयं ब्लूमफील्ड ने अलगोकियन अध्ययनों (1946) में प्रस्तुत किया था।

ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'भाषा' ने भाषिक शोध के लिए आवश्यक सैद्धांतिक मूल आधार प्रस्तुत किया जिसने समस्त मनोवादी अवधारणाओं का खंडन कर वस्तुनिष्ठता, रूपात्मक पद्धति और वैज्ञानिक दृढ़ता पर बल दिया। इनके लेखों व पुस्तकों का अमरीकी भाषा वैज्ञानिक जगत पर ऐसा प्रभाव हुआ कि उस काल को 'ब्लूमफील्डियन युग' के नाम से पुकारा गया। इनके सहयोगियों व छात्रों में **रॉबर्ट हॉल, सी.एफ. हॉकेट, हिल, जे. हैरिस, जे. ब्लॉख, ट्रैगर** आदि प्रमुख थे जिन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से ब्लूमफील्ड के विचारों व सिद्धांतों को बढ़ावा दिया एवं वर्णनात्मक/संरचनात्मक भाषाविज्ञान को नवीन रूप दिया।

10.4 स्तरपरक व्याकरण stratificational grammar

अमरीकी भाषाविद **सिडनी एम. लैम्ब** एवं उनके सहयोगियों ने इस भाषिक सिद्धांत की स्थापना की। फ्रांसीसी विद्वान सेस्यूर तथा लुई हेल्मस्लेव से सूत्र ग्रहण कर लैम्ब ने इस सिद्धांत का निरूपण किया। हेल्मस्लेव के मतानुसार समग्रता में वस्तु नहीं वरन परस्पर घटित संबंध महत्वपूर्ण होते हैं। लैम्ब ने इसी विचार को ग्रहण कर भाषा का प्रत्यक्षीकरण जटिल संबंधों की व्यवस्था के रूप में किया और भाषिक संरचना की एक सतह/स्तर को दूसरे से व्युत्पन्न न मान उनके संबंधों को पर्याप्त महत्व दिया। लैम्ब के अनुसार भाषा सर्वप्रथम एक संहिता/कोड है जो एक सूचना समुच्चय को एक संकेत समुच्चय से जोड़ती है। सूचना संकल्पनात्मक संरचना तथा संकेत स्वनिक सामग्री है और दोनों के मध्य का संबंध आधारिक होता है। पारंपरिक रूप में वर्णित भाषा के विविध स्तरों ध्वनि, व्याकरण एवं अर्थ की भाँति लैम्ब भी पृथक तलों (strata) की चर्चा करते हैं। उनकी यह अवधारणा संरचनात्मक विद्वानों के विश्लेषण से मेल खाती है। तल की संख्या के संबंध में प्रारंभ में लैम्ब एकमत नहीं थे अंततः इन्होंने छः तल स्वीकार किए—

1. संकेत विज्ञान (semiology)	(i) अर्थिमिक (sememic) (ii) अति अर्थिमिक (hyper sememic)
2. व्याकरण (grammar)	(i) रूपिमिक (morphemic) (ii) कोशिमिक (lexemic)
3. स्वनप्रक्रिया (phonology)	(i) अधोस्वनिमिक (hypo phonemic) (ii) स्वनिमिक (phonemic)

इनके विचारानुसार स्वनप्रक्रियात्मक व्यवस्थाएँ औच्चारिक और श्रवणात्मक अंगों के अनुकूल तथा संकेतात्मक व्यवस्थाएँ विचार अभिरचना एवं व्यक्ति द्वारा सोची और बोली गई घटनाओं, संबंधों के अनुकूल होनी चाहिए। भाषा में प्रयुक्त स्वन और अर्थ की प्रकृति में भिन्नता है। स्वनप्रक्रियात्मक व्यवस्थाएँ वाग्व्यवहार के अनुरूप होती हैं और स्वन समय की रेखा पर घटित होने के कारण एक रेखीय और एक आयामी है जबकि अर्थ का संबंध संकेत विज्ञान से है जो मूलतः बहुआयामी है। स्पष्ट है कि भाषिक संबंधों में प्राप्त जटिलता का प्रमुख कारण विभिन्न संरचनात्मक अभिरचनाओं के स्वनिक रूप एवं तत्संबंधी संकल्पनाएँ होती हैं और इन दोनों के मध्य एक से एक का संबंध नहीं मिलता है। चूँकि कोडीकरण तथा विकोडीकरण की प्रक्रियाएँ भिन्न तत्वों पर घटित होती हैं अतः लैम्ब भाषा-व्यवस्था को विभिन्न तलों में विभाजित करते हैं। भाषा-विश्लेषण के लिए लैम्ब दो प्रकार के संबंधों का उल्लेख करते हैं—

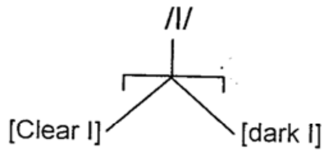
1. विन्यासात्मक (tactic)
2. प्रतिफलनात्मक (realizational)

भाषा-व्यवस्था के प्रत्येक तल की अपनी समस्तरीय व्यवस्था होती है जो दूसरे तलों से स्वतंत्र है। प्रत्येक तल पर विविध तत्वों के सुगठित संयोजनों के मध्य घटित संबंध विन्यासात्मक कहलाते हैं। स्वनप्रक्रियात्मक तल पर लैम्ब इन्हें स्वनिम विन्यास (phonotactics) तथा रूपरचनात्मक तल पर रूपिम विन्यास (morphotactics) नाम देते हैं, उदाहरणार्थ- मण्डक और णगर हिंदी शब्द समूह का अंग नहीं हैं किंतु फिर भी हिंदी वक्ता जहाँ इनमें से प्रथम को स्वीकार करता है वहाँ द्वितीय को अस्वीकार। इसका यह कारण है कि हिंदी की ध्वन्यात्मक व्यवस्था में 'ण' ध्वनि शब्दादि में नहीं आती है किंतु अपभ्रंश भाषा का ज्ञाता इस शब्द को सहर्ष स्वीकार करेगा क्योंकि अपभ्रंश ध्वन्यात्मक व्यवस्था में 'ण' शब्दादि में मान्य है। यह स्थिति ही स्वनिम विन्यास अर्थात स्वनप्रक्रिया की वाक्य रचना कहलाती है। लैम्ब इसी प्रकार आर्थी विन्यास एवं व्याकरणिक विन्यास का भी उल्लेख करते हैं, उदाहरणार्थ—हमने उसकी आँखों की खुशबू देखी है, पढ़ रहा राम है, भाषाविज्ञान की पुस्तक—हिंदी के इन दोनों वाक्यों में से प्रथम आर्थी विन्यास की दृष्टि से तथा द्वितीय व्याकरणिक विन्यास की दृष्टि से अनुपयुक्त एवं अस्वीकृत हैं।

अंतस्तलीय संबंध प्रतिफलनात्मक कहलाते हैं। अतः यदि पारंपरिक दृष्टि से

संकल्पनात्मक संबंधों को उच्च स्तरीय एवं स्वनिक संबंधों को निम्न स्तरीय माना जाए तो विन्यासात्मक संबंध समस्तरीय और प्रतिफलनात्मक संबंध ऊर्ध्वाधर स्थिति में रखे जाते हैं। विन्यासात्क तथा प्रतिफलनात्मक अभिरचनाएँ मिल कर एक तलीय व्यवस्था का निर्माण करती हैं और प्रत्येक तलीय व्यवस्था अपने में विशिष्ट, समग्र तथा पूर्ण होती है। संभवतः संरचनावादी संपूर्ण भाषिक संरचना के संदर्भ में जिस समग्रता की अपेक्षा करते हैं उसी प्रकार की समग्रता की सत्ता लैम्ब एक तल पर मानते हैं।

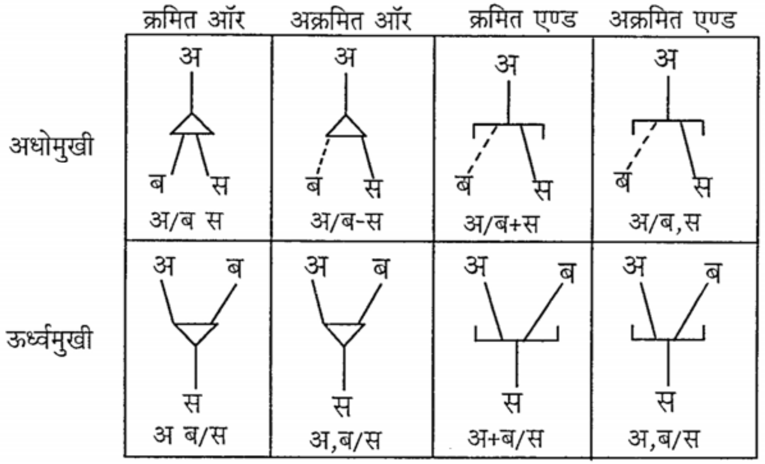
भाषा-विश्लेषण के प्रस्तुतीकरण के लिए लैम्ब ने अपनी पुस्तक[22] में सर्वथा **नवीन ग्राफीय** रेखांकन प्रस्तुत किए। इन्होंने 'एण्ड' तथा 'ऑर' दो प्रकार के संबंधों की चर्चा की। यदि कोई रूप साथ प्रयुक्त होने वाले दो या अधिक रूपों से संबंधित है तो इसे 'एण्ड' संबंध कहते हैं, यथा- फूल शब्द जहाँ अर्थिमिक स्तर पर वस्तु, खुशबू, बगीचा, रंग आदि से संबंधित है वहीं स्वनप्रक्रियात्मक स्तर पर /फ्/, /उ/, /ल्/, /अ/ स्वनिमों से भी संबंधित है। 'ऑर' संबंध से तात्पर्य यह है कि कोई रूप दो या अधिक ऐसे रूपों से संबंधित हैं जो वैकल्पिक रूप से प्रयोग में आते हैं। इन संबंधों को पुनः क्रमित (ordered) और अक्रमित (unordered) तथा ऊर्ध्वमुखी (upward) और अधोमुखी (downward) वर्गों में विभक्त किया जाता है। अंग्रेजी /l/ तथा उसके सहस्वन के मध्य अक्रमित संबंध मिलता है एक समय में वक्ता दोनों में से किसी एक का प्रयोग करता है।



हिंदी कमल शब्द और उसके स्वनिमों में क्रमित संबंध है क्योंकि इसमें स्वनिमों की एक निश्चित व्यवस्था है-



'एण्ड' तथा 'ऑर' के साथ मिलकर इनके निम्न वर्ग किए जा सकते हैं—



आरेख-46

अधोमुखी से तात्पर्य 'अभिव्यक्ति की ओर' तथा ऊर्ध्वमुखी का तात्पर्य 'अर्थ की ओर' है। इस रेखांकन से स्पष्ट है कि यह व्याकरण किसी भाषा का संपूर्ण विश्लेषण अत्यंत जटिल रेखांकनों द्वारा करता है।[23]

अमरीकी संरचनात्मक अध्ययन तथा ग्लासोमैटिक्स का प्रभाव इस व्याकरण पर दृष्टिगत होता है। प्रथम का विश्लेषण स्तर सिद्धांत लैंब द्वारा निरूपित तलों से समरूपता रखता है। किंतु अमरीकी संरचनावादी जहाँ स्तरों के स्पष्ट विभाजन तथा स्वतंत्र सत्ता की बात करते हैं वहाँ स्तरपरक व्याकरण तलों के मध्य के संबंधों को ज्ञात कर समझने का प्रयास करता है तथा इस विचार को अस्वीकार करता है कि भाषिक विश्लेषण एक तल से दूसरे तल की ओर बढ़ता है। संरचनात्मक भाषाविदों द्वारा निरूपित स्तरों के मध्य प्राप्त सौपानिक क्रम (hierarical order) की मान्यता को अस्वीकार करने के कारण ही संभवतः लैम्ब ने पूर्व प्रचलित 'level' के स्थान पर 'strata' का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा। इन दोनों संप्रदायों के मध्य प्राप्त दूसरी भिन्नता यह है कि संरचनावादी विद्वान भाषिक संकेतों के भौतिक अध्ययन तक सीमित रहे जबकि स्तरपरक व्याकरण ने संकल्पनात्मक पक्ष का अध्ययन करने के साथ-साथ अर्थ की जटिलताओं को भी उदघाटित करने का प्रयास किया।[24]

10.5 बंधिम विज्ञान tagmemics

बंधिम विज्ञान की जड़ें अमरीकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान में ही स्थित थीं। इसके संस्थापक **के.एल. पाइक** Summer Institute of Linguistics से घनिष्ठतः

संबंधित थे। पाइक द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को आगे विकसित करने का श्रेय **आई. ई. लॉगक्रे** को जाता है। पाइक एक व्यवस्थापक पादरी थे जिन्होंने अनेक भक्तिपरक रचनाओं के साथ-साथ विश्लेषणात्मक अध्ययन भी किए। अपनी पुस्तक[25] में इन्होंने भाषा तथा मानवीय व्यवहार दोनों को व्यवस्थामय माना। इनका यह दृष्टिकोण अमरीकी संरचनावादियों के मानवशास्त्रीय संबंधों का परिणाम कहा जा सकता है। इनके मतानुसार भाषा मानवीय व्यवहार है जो उस अखंड समग्रता का एक अंग है जिसमें भाषिक एवं अभाषिक व्यवहार एक घटना के रूप में सम्मिलित हैं। मानवीय व्यवहार ऐसी संरचनात्मक समग्रता है जिसे स्पष्ट खंडों तथा स्तरों या उपखंडों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। भाषिक एवं अभाषिक व्यवहार की अखंड समग्रता के अध्ययन के लिए पाइक ने एक समेकित भाषा सिद्धांत का विकास किया जो बंधिम विज्ञान नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पाइक भाषा को त्रिरूपीय मानते हैं जो स्वनप्रक्रिया, व्याकरण एवं शब्द कोश से संरचित है। वे इन तीनों के अलगाव या उपखंडीकरण की चर्चा नहीं करते हैं वरन् इन तीनों के सम्मिलन को बढ़ावा देते हैं। उनके अनुसार ये तीनों परस्पर संबंधित हैं और भौतिक शास्त्र के आधार पर इनके संबंध को स्पष्ट किया जा सकता है। भाषा का अध्ययन अंश, तरंग एवं क्षेत्र की विशिष्ट शब्दावली में किया जा सकता है। इनके अनुसार स्वनिमिक एवं रूपिमिक संरचाओं की गणना 'अंश' के अंतर्गत होती है। ये संरचनाएँ जिस गत्यात्मक पद्धति से परस्पर आच्छादित एवं विलयित होती है उसका निरीक्षण 'तरंग' के अंतर्गत किया जाता है तथा 'क्षेत्र' में संस्कृति एवं व्यक्तित्व के संबंध के परिप्रेक्ष्य में भाषा की प्रकार्यात्मक भूमिका का उल्लेख होता है।

बंधिम विज्ञान का नाम **बंधिम** शब्द के आधार पर पड़ा। इस शब्द का पारिभाषिक रूप में सर्वप्रथम प्रयोग ब्लूमफील्ड की पुस्तक 'भाषा' में मिलता है किंतु वहाँ इसकी परिभाषा, स्वरूप एवं प्रकार्य सर्वथा भिन्न था। 1948 में पाइक के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि क्या व्याकरण के स्तर पर भी कोई स्वनिम होता है? इन्होंने प्रक्रियात्मक इकाइयों को व्यतिरेक, वितरण एवं विचलन के आधार पर परिभाषित किया और इनका अनुप्रयोग व्याकरण पर किया और व्याकरण में इनका वर्णन अभिलक्षण वृत्ति, अभिव्यंजना वृत्ति तथा वितरण वृत्ति नाम से किया। बंधिम एक विशिष्ट प्रकार्य स्थान (slot) में प्रयुक्त होने वाली स्थानापत्ति सक्षम इकाइयों के एक वर्ग का सहसंबंध है। इस प्रकार व्याकरण व्यवस्था की लघुतम इकाई को पाइक बंधिम कहते हैं। भाषिक व्यवहार का विश्लेषण करने वाले इस बंधिम विज्ञान में दो वर्णनात्मक उपागमों का प्रयोग किया जाता है। प्रथम उपागम **व्यवहार** (etic) तथा **व्यवस्था** (emic) के मध्य भिन्नता प्रदर्शित करता है। इन पारिभाषिक शब्दों का निर्माण पाइक ने phonetics/phonemics शब्दों के अंतिम अंश की सहायता से किया। प्रत्येक व्यवस्थापरक इकाई किसी एक मुक्त व्यवस्था (open system) की रूपात्मक

इकाई होती है जो भौतिक एवं स्थूल व्यवहारपरक इकाई द्वारा प्रकट होती है। व्यवहारपरक इकाई का ज्ञान किसी न किसी दृश्यमान लक्षण द्वारा होता है, यथा- विश्व की अनेक भाषाओं में कुछ सामान्य अभिलक्षण से युक्त /t/ ध्वनि मिलती है। किसी भाषा विशेष से संबंधित न होने के कारण तथा प्रभावात्मक आधार पर वर्णित होने के कारण यह एक व्यवस्थापरक इकाई होगी। किंतु यदि हम हिंदी भाषा में प्रयुक्त /t/ स्वनिम की चर्चा करें जिसके विशिष्ट परिस्थितियों में सहस्वन भी प्रयुक्त होते हैं तो यह व्यवहारपरक इकाई (emic unit) होगी। समस्त भाषिक स्तरों पर etic/emic इकाइयाँ मिलती हैं।

पाइक द्वारा प्रतिपादित द्वितीय उपागम बंधिम सौपानिकी है। बंधिम विज्ञान में यह सौपनिक क्रम रूपिम के शून्य स्तर से प्रारंभ हो शब्द स्तर, पदबंध, वाक्यबन्ध, वाक्य और अनुच्छेद की दिशा में बढ़ता है। प्रत्येक स्तर के तत्व समावेशन द्वारा संबंधित होते हैं, यथा- वाक्य के स्तर पर एक या अधिक वाक्यबन्ध और वाक्यबन्ध स्तर पर एक या एकाधिक पदबंध समाविष्ट होते हैं। जिस तत्व का समावेश किया जाता है उसे बंधिम की संज्ञा दी जाती है और जहाँ समावेशन घटित होता है उसे **सिन्टैग्मीम** (syntagmeme) कहते हैं। इस प्रकार सौपनिक क्रम में कोई भी इकाई उच्चस्तर पर टैग्मीम होगी और उससे निम्न स्तर पर सिन्टैग्मीम, यथा- एक वाक्य वाक्यबन्ध के लिए सिन्टैग्मीम और अनुच्छेद में जहाँ उसका समावेश होगा टैग्मीमवत कार्य करेगा। पाइक भाषा में कार्यरत तीन प्रक्रियाओं की चर्चा करते हैं- पश्च पाशन (back looaping), **स्तर उच्छलन** (level skipping) तथा **पुनरावर्ती स्तरण** (recursive layering)। ये प्रक्रियाएँ किसी एक स्तर पर घटित होती हैं। जब उच्च स्तर की रचना के अंतर्गत निम्न स्तर की रचना का प्रयोग हो तो इस प्रक्रिया को पश्च पाशन की संज्ञा दी जाती है, उदाहरणार्थ- हिंदी संज्ञा पदबंध में संबंध सूचक उपवाक्य का प्रयोग- 'वह स्त्री जो बात कर रही थी, चली गई।' वाक्यीय रचना की वह प्रक्रिया जहाँ एक स्तर के तत्व आगामी स्तर पर नहीं उसके बाद वाले स्तर पर समाहित होते हैं, स्तर उच्छलन कहलाती है, यथा- अंग्रेजी के पदबंध The king of Spains's son में संबंध कारक का चिह्न रूपग्रामिक स्तर पर संयुक्त न होकर पदबंध 'The king of Spain' में संयुक्त हुआ है। जब शब्द के अंतर्गत शब्द अथवा पदबंध के अंतर्गत पदबंध आए तो उस प्रक्रिया को पुनरावर्ती स्तरण कहते हैं, जैसे- 'यह सारा ताजा मीठा दूध' इस संज्ञा पदबंध में 'सारा ताजा मीठा' विशेषण पदबंध समाहित है।

भाषिक इकाइयों की संरचनात्मक एवं व्याकरणिक प्रभेदात्मकता को सूक्ष्म रूप में स्पष्ट करने के लिए पाइक बंधिम के सहबंधिम की चर्चा भी करते हैं। इनकी दृष्टि में व्याकरणिक प्रभेदकता न होने पर भी आर्थी प्रकार्य में प्रभेदक बंधिम महत्वपूर्ण होते हैं। यद्यपि यह संरचनावादियों से प्रभावित थे तथापि कतिपय बिंदुओं में स्पष्ट भिन्नता दृष्टिगत होती है। जहाँ आसन घटक सिद्धांत वाक्य के द्वैतात्मक विभाजन की बात

करता है वहाँ बंधिम विज्ञान वाक्य संरचना में बंधिम के समतुलित (equipollent) एवं अनुक्रमिक (sequential) स्थान को महत्व देता है तथा एक स्तर पर दो से अधिक बंधिमों की उपस्थिति को त्रुटिपूर्ण समझ उसे प्रश्नचिह्नित नहीं करता है। भाषा की बाह्य संरचना के विश्लेषण तक सीमित होने पर भी पाइक का बंधिम विज्ञान भाषा विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत माना जाता है।

10.6 प्रजनक व्याकरण

ब्लूमफील्ड के उपरांत अमरीका में भाषाविज्ञान के जिस नवीन युग का उदय हुआ उसे युग सूत्रधार चॉम्स्की के नाम पर **'चॉम्स्कियन एरा'** कहा गया। आरंभ में स्वयं वर्णनात्मक धारा के समर्थक चॉम्स्की के चिंतन एवं नवीन मनोदृष्टि के परिणामस्वरूप भाषाविज्ञान जगत में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया। 1957 में प्रकाशित अपनी प्रथम पुस्तक के माध्यम से इन्होंने प्रतिपादित किया कि भाषा का व्याकरण एक वैज्ञानिक सिद्धांत की भाँति है जो निश्चित संख्यक परीक्षणों पर आश्रित होने पर भी असंख्य, असीमित भाषिक वाक्यों के विश्लेषण एवं वर्णन में समर्थ तथा व्याकरणिक और अव्याकरणिक वाक्यों के परिज्ञान में सहायक होता है। इस पुस्तक में चॉम्स्की ने यह प्रतिपादित किया कि पूर्व दशकों में प्रचलित सिद्धांत एवं प्रारूप भाषा के तथ्यों को पूर्णरूपेण विश्लेषित करने में सक्षम नहीं हैं। तीसरे, चौथे दशक के अमरीकी भाषाविद् यांत्रिकता, पद्धतिगत सुनिश्चितता, भाषाविज्ञान का स्वयत्ततापूर्ण स्वतंत्र क्षेत्र, भाषिक सामग्री का संकलन एवं वर्गीकरण आदि पर अधिक बल देते हैं जबकि चॉम्स्की ने भाषा की मानसिक प्रकृति, सहजातीयता, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान एवं दर्शनशास्त्र का अंतर्संबंध, भाषिक सार्वभौम तत्व, व्याकरण की प्रजनकता आदि को प्रधानता दी। 'सिन्टैक्टिक स्ट्रक्चर्स' में यद्यपि बहुत कम रूपांतरणों की चर्चा की गई है और अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह गए तथापि सैद्धांतिक भाषाविज्ञान के इतिहास में इसका विशिष्ट स्थान है। 1965 में चॉम्स्की की दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसके माध्यम से इन्होंने प्रथम चरण में आगत समस्याओं के समाधान का प्रयास किया। यह सिद्धांत **'स्टैण्डर्ड थ्योरी'** नाम से प्रसिद्ध हुआ जो 1957 के अध्ययन से मुख्यतः दो बिंदुओं पर भिन्न था। इस प्रतिमान में नियम-संरचना को पूर्ण बनाने के लिए अर्थ-पक्ष को ग्रहण किया गया। आर्थी सिद्धांत की दिशा में कार्य प्रारंभ करने का श्रेय दो युवा अध्येताओं **काट्स** तथा **फोडर** को जाता है। इन्होंने प्राकृतिक भाषाओं की वाक्य रचना एवं आर्थी संबंधों को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रारूप का द्वितीय महत्वपूर्ण बिंदु अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना की संकल्पना का विस्तारपूर्वक वर्णन है। साथ ही इसमें बीज/मूल वाक्य (kernel sentence) तथा रूपस्वनिमिक घटकों का उल्लेख नहीं किया गया और सभी रूपांतरण अनिवार्य माने गये। निम्नांकित आरेख प्रथम एवं द्वितीय प्रारूप के मध्य प्राप्त भिन्नता को स्पष्ट दर्शाते हैं–

1957 'सिन्टैक्टिक स्ट्रक्चर्स' प्रारूप प्रथम

वाक्य
↓
पदबंध संरचना घटक
↓
रूपांतरण घटक
↓
रूपस्वनिमिकी घटक
↓
स्वनप्रक्रियात्मक घटक

आरेख-47

1965 'आस्पेक्ट्स' स्टैण्डर्ड थ्योरी प्रारूप द्वितीय

वाक्य रचना

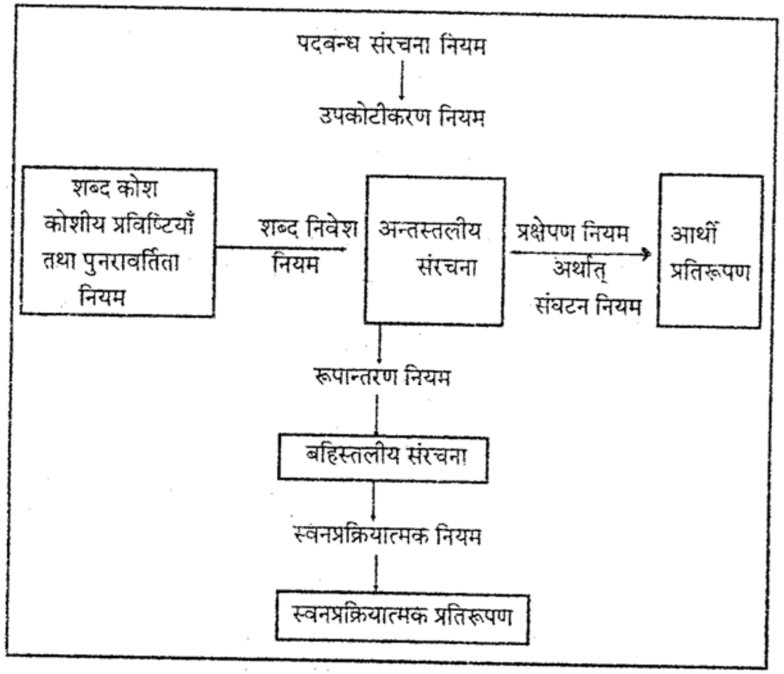
आधार घटक	रूपांतरण नियम
↓	↓
अंतस्तलीय संरचना	बहिस्तलीय संरचना
↓	↓
आर्थी घटक	स्वनप्रक्रियात्मक घटक
↓	↓
आर्थी प्रतिरूपण	स्वनप्रक्रियात्मक प्रतिरूपण

आरेख-48

द्वितीय प्रारूप में आधार घटक में पदबंध संचना नियम आते हैं जो पुनर्लेख नियमों के रूप में होते हैं जिनकी चर्चा पांचवें अध्याय में हो चुकी है। विश्लेषण कर्त्ता के समक्ष पुनर्लेख नियमों से संबंधित तीन समस्याएँ आती हैं। किसी भाषा के समस्त संभावित वाक्यों का प्रजनन करने वाले व्याकरण में नियमों का सही क्रम क्या होगा? दूसरा प्रश्न उठता है कि पुनर्लेख नियम प्रसंग निरपेक्ष हो या प्रसंग सापेक्ष? पुनर्लेख नियम अंतःप्रज्ञा पर निर्भर नहीं करते हैं। इनका शुद्ध रूपात्मक स्वरूप इनकी विशेषता भी है और समस्या भी। आधार घटक में ही उपकोटीकरण नियम तथा शब्द कोश की गणना भी होती हैं। संदर्भ कथनों के अतिरिक्त अन्य उपकोटीकरण नियमों में कोशीय

कोटियाँ भी सम्मिलित होती हैं जो संज्ञा और क्रिया कोटियों को उनके वाक्यीय अभिलक्षणों के आधार पर स्पष्ट करती हैं। ये नियम दो प्रकार के होते हैं- नियमबद्ध उपकोटीकरण तथा चयनबद्ध उपकोटीकरण। शब्द कोश में समस्त कोशीय रचकों की एक तालिका होती है अर्थात् यह कोशीय प्रविष्टियों का एक समुच्चय है। प्रत्येक कोशीय प्रविष्टि कतिपय स्वनप्रक्रियात्मक अभिलक्षणों के समूह तथा विशिष्ट वाक्यीय और आर्थी अभिलक्षणों के समुच्चय के संयोग का परिणाम है। किसी वाक्य की संपूर्ण अर्थ अभिव्यक्ति के लिए कोशीय मदों (items) के अभिलक्षण संलयित करने पड़ते हैं तथा वाक्यान्तर्गत अनेक संबंधों को निश्चित करना पड़ता है।

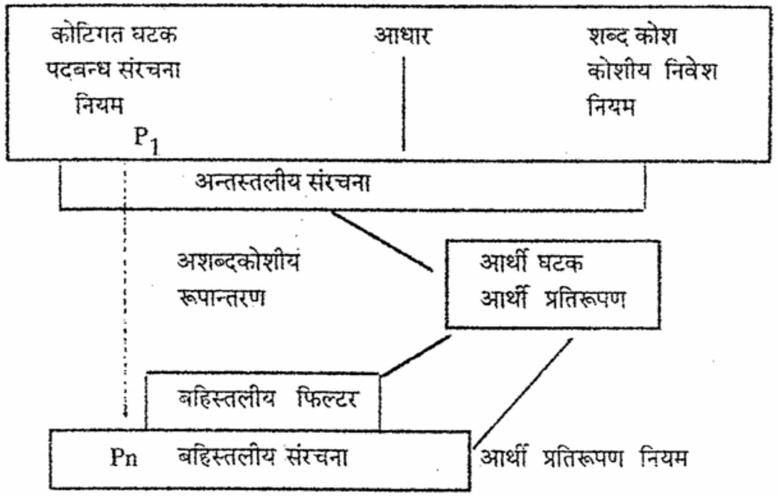
इस प्रारूप में यद्यपि वाक्यीय आर्थी और स्वनप्रक्रियात्मक घटक पृथक्-पृथक् दर्शाए गए हैं तथापि ये तीनों अंतर्सम्बन्धित हैं। इनका अंतर्संबंध निम्नांकित आरेख द्वारा स्पष्ट होता है—



आरेख-49

1970 में रूपांतरण एवं प्रजनक व्याकरण के अगले चरण का आरंभ हुआ। अपने लेख 'Remarks on nominalization' में चॉमस्की ने प्रजनक अर्थ विज्ञान पर

प्रत्याक्रमण किया। इन्होंने पूर्व प्रस्तुत प्रारूप को संशोधित कर प्रस्तुत किया जो 'विस्तारित मानक सिद्धांत Extended Standard Theory' कहलाया। प्रजनक अर्थशास्त्री इसे निर्वचनात्मक अर्थ विज्ञान या व्याख्यात्मक प्रारूप नाम से अभिहित करते हैं। निम्नांकित आरेख 1970 से 1975 के मध्य हुए प्रारूपगत परिवर्तन को स्पष्ट करता है—



आरेख-50

आधार के शाखन नियम व्याकरणिक कार्यों तथा संबंधों को निर्धारित करते हैं। शब्द कोश में स्थानापन्न रूपांतरण नियम से संबद्ध प्रविष्टियाँ होती हैं। ये नियम कोशीय मदों (items) को पदबंध संरचना नियमों द्वारा प्रजनित माला (string) से अवगत कराते हैं। शब्द कोश के ये नियम ही आधार में समस्त संदर्भगत प्रतिबन्ध लगाते हैं। बहिस्तल का सुगठन संकेत करता है कि रूपांतरण फिल्टर का कार्य करते हैं। वे निर्गत परिस्थितियाँ जो रूपांतरण के इस कार्य को अभिवृद्ध करती हैं उन्हें बहिस्तलीय फिल्टर कहते हैं। अशब्दकोशीय रूपांतरण में संरचनात्मक वर्णन तथा परिवर्तन आता है। आर्थी प्रतिरूपण नियम वाक्यीय रूपों का अर्थ निर्धारित करते हैं। स्पष्ट है कि मातृभाषा भाषी के भाषा ज्ञान को भलीभाँति ज्ञात कर विश्लेषित करने के लिए चॉम्स्की निरंतर अपने सिद्धांत में परिवर्तन एवं परिवर्धन करते रहे। 1980 में इन्होंने अपने व्याकरण प्रारूप में कारक (Case), अधिकार (government) एवं अनुबंधन (binding) जैसी संकल्पनाओं को समाहित किया। यह प्रारूप अधिकार और अनुबंधन नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसकी चर्चा छठे अध्याय के अंतर्गत की जा चुकी है।

10.7 कारक व्याकरण

प्रजनक व्याकरण भाषा के वाक्यीय प्रकार्यों पर अधिक बल देता है और वाक्य का विश्लेषण सप+क्रिप रूप में करता है किंतु भाषा में सिर्फ वाक्यीय प्रकार्य ही नहीं होते इसका अर्थ पक्ष भी महत्वपूर्ण है जिसका सूक्ष्म विश्लेषण भाषा की अंतस्तलीय संरचना के विश्लेषण द्वारा संभव है अतः प्रजनक अर्थविज्ञान में रूपांतरण की संकल्पना को मान्यता देने के साथ-साथ बहिस्तलीय संरचना में भिन्नताओं का ज्ञान अंतस्तलीय संरचना के विवरणों की भिन्नताओं के परिप्रेक्ष्य में किया गया। 1960 के अंत में **चार्ल्स फिल्मोर** ने अपने प्रारूप में अर्थ को समाहित कर कारक व्याकरण नामक नवीन प्रारूप प्रस्तुत किया। फिल्मोर द्वारा प्रतिपादित कारक व्याकरण भी रूपांतरण की संकल्पना को स्वीकारता है तथा बहिस्तलीय भिन्नताओं का वर्णन अंतस्तलीय सरंचना के 'कारकीय संबंधों' द्वारा करने का प्रयास करता है। फिल्मोर की मान्यता है कि भाषा वस्तुतः वाक्यों का व्यवस्थामय संग्रह है और वाक्यात्मक ढाँचा कारकीय संबंधों में केन्द्रित है। फिल्मोर वाक्य के अन्य घटकों से क्रिया के संबंध को कारक संबंध कहते हैं। इनके मतानुसार वाक्य से कारक संबंध निकाल दिये जाने पर संप्रेषण घटित नहीं होता है अतः कारक संबंध प्रत्येक भाषा के व्याकरण का आधार अंग है। कतिपय विद्वान जहाँ कारकीय संबंधों को व्याकरणिक मानते हैं वहाँ अन्य को आर्थी की कोटि में रखते हैं। वस्तुतः ये संबंध न तो शुद्ध रूप में व्याकरणिक होते हैं और न ही आर्थी, इन्हें आर्थी-वाक्यीय कहा जा सकता है।

प्रजनक अर्थ विज्ञान एवं कारक व्याकरण दोनों में ही अंतस्तलीय संरचना पर अधिकाधिक आर्थी सूचना पुनः प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। फलतः अंतस्तलीय संरचना ने आर्थी प्रतिरूपण का स्थान ग्रहण किया। निम्नलिखित वाक्य देखें—

1. माँ ने खाना बनाया।	1. मोहन ने दरवाजा खोला।
2. खाना बना।	2. दरवाजा खुला।
3. माँ ने महराजिन से खाना बनवाया।	3. मोहन ने चाबी से दरवाजा खोला।

इन वाक्यों में जहाँ 'माँ' कर्ता या कार्य को करने वाली है वहाँ 'प्रभावित कर्म' खाना है और 'महराजिन' साधन है। एक मातृभाषी इस तथ्य से परिचित है कि ये तीनों वाक्य परस्पर संबंधित रचनाएँ हैं। रूपांतरण नियम इनके संबंध का विश्लेषण नहीं कर पाते हैं जबकि कारकीय संबंधों के आधार पर इन्हें संबंधित किया जा सकता है। फिल्मोर के मतानुसार कारक संबंध सार्वभाषिक होते हैं यद्यपि कुछ भाषाओं में कारक संबंधों को लक्षित करने वाले चिन्हकों का अभाव होता है किंतु संकल्पनात्मक रूप में कारक वहाँ भी उपस्थित रहते हैं। फिल्मोर दो प्रकार के कारकीय संबंधों की चर्चा करते हैं- प्रथम अर्थ की विशिष्ट पदावली में प्राप्त कारकीय संबंध, यथा- कर्ता, कर्म आदि जो सार्वभौमिक होते हैं तथा द्वितीय कारकीय रूप, यथा- विभक्तियाँ, परसर्ग, शब्दक्रम, अनुतान आदि जिनका संबंध भाषा विशेष से होता है। संस्कृत वैयाकरण

पाणिनी ने प्रथम को 'कारक' तथा द्वितीय को 'विभक्ति' की संज्ञा दी। इनके अनुसार कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान एवं अधिकरण ये छह कारकीय संबंध होते हैं। फिल्मोर के मतानुसार–

1. कारक का प्रत्येक भाषा के व्याकरण के आधार अंग या घटक में महत्वपूर्ण स्थान होता है।
2. विश्लेषण में ऐसी आधार संरचना की आवश्यकता है जिसमें कारकीय संबंध सिद्धांत के मौलिक शब्दों के रूप में हों तथा जिसमें 'उद्देश्य' एवं 'मुख्य कर्म' जैसे संप्रत्यय न हों।
3. फिल्मोर 'कारक' शब्द का प्रयोग मूल में अवस्थित वाक्यीय-आर्थी संबंध की पहचान के लिए करते हैं तथा 'कारक रूप' शब्द का प्रयोग भाषा विशेष में कारकीय संबंध की अभिव्यक्ति (चाहे वह प्रत्यय योजन, अनुपूरण, शब्द क्रम आदि किसी प्रक्रिया द्वारा हो) के अर्थ में करते हैं।
4. इनके मतानुसार वाक्य में क्रिया एवं एक या अधिक संज्ञा पद होते हैं तथा प्रत्येक संज्ञा क्रिया से विशिष्ट कारकीय संबंधों द्वारा जुड़ी होती है।

फिल्मोर के विचारानुसार वाक्य की आधारभूत संरचना दो घटकों द्वारा निर्मित है–

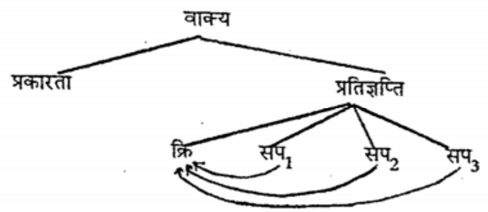
प्रकारता (modality)

प्रतिज्ञप्ति (proposition)

प्रकारता में समग्र वाक्य में व्याप्त नकारत्व, वृत्ति, काल और पक्ष जैसी प्रकारताएँ समाविष्ट हैं जबकि प्रतिज्ञप्ति में कारकीय संबंध आते हैं। यह क्रियाओं और संज्ञाओं द्वारा व्यक्त संबंधों का काल निरपेक्ष समुच्चय है। कारक व्याकरण का प्रथम आधार नियम हैं–

वा→प्रकारता+प्रतिज्ञप्ति

प्रतिज्ञप्ति एक क्रिया और एकाधिक कारक-कोटियों में विस्तारित किया जाता है। फिल्मोर के अनुसार प्रत्येक एकल वाक्य की गहन संरचना (प्रतिज्ञप्ति घटक) एक क्रमविन्यास है, जिसके अंतर्गत एक क्रिया तथा वाक्यों के साथ विशिष्ट रूप से चिन्हित संबंधों (कारकों) को धारण करने वाले संज्ञापद (NP) होते हैं। वाक्य की संज्ञाएँ विशिष्ट अर्थों में क्रिया से अन्वित होती हैं। आरेखीय रूप में इसे निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है–



आरेख-51

फिल्मोर पाँच कारक संबंधों की चर्चा करते हैं—

1. अभिकर्ता (instrumental)

फिल्मोर ने अंतस्तलीय एवं बहिस्तलीय संरचना के भेद को स्वीकार करते हुए यह निरूपित किया कि कारक का संबंध अंतस्तलीय संरचना से है। बहिस्तलीय में जो संज्ञापद कर्ता के रूप में दृष्टिगत होता है अंतस्तलीय में वह करण, अनुभावक आदि अन्य किसी कारक में भी हो सकता है। अतः दोनों संरचनाओं के कर्ता को अलग-अलग नाम से अभिहित करना चाहिए। कारक व्याकरण में अंतस्तलीय का कर्ता 'अभिकर्ता' कहलाता है और बहिस्तलीय का 'कर्ता' नाम से ही जाना जाता है, उदाहरणार्थ- राम ने शेर पकड़ा। इस वाक्य में आंतरिक एवं बाह्य दृष्टि से कर्ता राम है जबकि 'शेर राम द्वारा मारा गया' इस वाक्य में आंतरिक दृष्टि से कर्ता 'राम' और बाह्य दृष्टि से कर्ता 'शेर' है। इस प्रकार क्रिया द्वारा अभिज्ञात कार्य का चेतन एवं ज्ञात प्रेरक का प्रमुख कारक अभिकर्ता कहलाता है।

2. करण (instrumental) (I)

1968 के करण को परिभाषित करते हुए फिल्मोर ने स्वीकार किया कि किसी घटना का भौतिक करण अथवा प्रेरक करण कहलाता है। कुछ समय पश्चात प्राकृतिक कारण, (यथा- वर्षा, आँधी, तूफान, भूकंप आदि) भौतिक साधन (लाठी, चाकू, पत्थर आदि) तथा किसी मानसिक स्थिति को उत्पन्न करने वाले मनोवैज्ञानिक कारण भी इन्होंने करण में समाविष्ट कर लिए, उदाहरणार्थ—'भूकंप से शहर तहस-नहस हो गया', 'लाठी से साँप मर गया', 'घबराहट से टूट गया'।

3. अनुभावक (experiencer) (E)

आरंभ में इसे संप्रदान कहा गया। जो किसी क्रिया के परिणाम का अनुभव करे अथवा उसे ग्रहण करे या उससे प्रभावित हो अनुभावक कहलाता है, यथा-राम का विश्वास है कि वह प्रथम आएगा। वह घबरा गया।

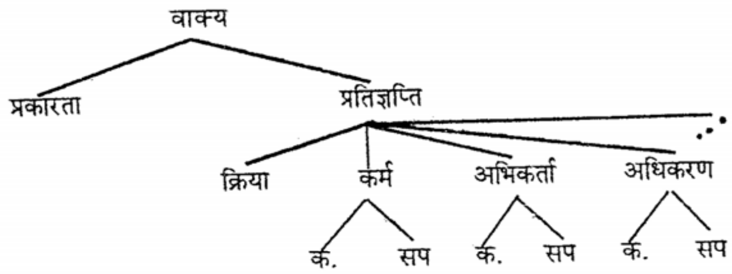
4. कर्म (object) (O)

अर्थात्मक रूप से सर्वाधिक उदासीन कारक कर्म ही है। ऐसी वस्तु का कारक जो ऐसी संज्ञा द्वारा प्रस्तुत की जा सकती हो जिसकी भूमिका क्रिया द्वारा अभिज्ञात कार्य या स्थिति में स्वयं क्रिया की अर्थात्मक विवृत्ति द्वारा पहचानी जाती है। अतः जिसकी परिस्थिति में किसी प्रकार परिवर्तन हो वह कर्म है। इस शब्द से न तो प्रत्यक्ष कर्म की धारणा का भ्रम होना चाहिए और न कर्म कारक के समानार्थी बहिस्तलीय कारक का, यथा- खिड़की टूटी, दरवाजा खुला, खाना बना।

5. अधिकरण (L)

क्रिया द्वारा चिह्नित अवस्था या कार्य के स्थान एवं क्षेत्र की पहचान जिस कारक द्वारा होती है उसे अधिकरण करते हैं, यथा- लखनऊ बहुत गर्म है।

उपर्युक्त वर्गों में प्रतिज्ञप्ति विश्लेषित करने पर अनेक आंतरिक संबंध उदघाटित होते हैं जिनका बाह्य संरचना पर प्रतिरूपण किया जाता है। इस प्रकार—



आरेख-52

यहाँ क = पूर्वसर्ग, अनुसर्ग और कारक प्रत्यय वस्तुतः एक ही मूलाधार तत्व 'क' के प्रत्यक्षीकरण हैं। बाद में फिल्मोर ने अपनी व्यवस्था में कतिपय अन्य कारक कोटियों का समावेश किया-

1. प्रतिकर्ता (counter agent) (C) वह बल या प्रतिरोध जिसके विरुद्ध कार्य किया जाता है।

2. स्रोत (source) (S) वह स्थान जहाँ से कोई वस्तु निर्देशित की गई हो अथवा की जाती हो।

3. लक्ष्य (goal) (G) वह स्थान जिस ओर कोई वस्तु निर्देशित की गई हो अथवा की जाती हो।

यही नहीं फिल्मोर ने 1970 में 'प्रकारता' को अपने साँचे से निकालने की बात की और बाद में उसको पुनः समाविष्ट कर लिया। कतिपय कमियों के होने पर भी फिल्मोर का कारकीय व्याकरण मूलाधार आर्थी संबंधों को पूर्णतः विश्लेषित करने में सफल हुआ। चॉम्स्की ने कारक व्याकरण के अनिवार्य अभिलक्षणों को अपने पुनः प्रस्तावित प्रारूप में समाविष्ट किया है और संभवतः अलग नाम न दिए जाने पर 'कारक व्याकरण' प्रजनक अर्थ विज्ञान के विशिष्ट परिवर्तन के रूप में सरलता से स्वीकार किया जा सकता है।

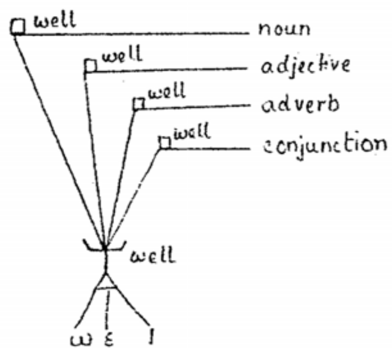
संदर्भ एवं टिप्पणी

1. अमरीकी विद्वान ब्लूमफील्ड ने पाणिनि कृत अष्टाध्यायी को 'greatest monument of human intelligence'. ही नहीं वरन् उसकी प्रविधियों का अनुपालन अमरीकी भाषा मिनोमिनी एवं पूर्वी ओजिबवा के अध्ययन में किया।
2. इनकी पुस्तक का पूरा नाम Prolegomena to a Theory of Language था।
3. इस भिन्नता को संरचनात्मक मनोदृष्टि के प्रणेता फर्दिनान्द डी सेस्यूर ने लॉग और परोल शीर्षक के अंतर्गत स्पष्ट किया।
4. इनके शोध प्रबंध का शीर्षक 'De l'emploi du genitif absolu en Sancrit था।
5. फ्रेंच में लिखे इस लेख का नाम Memoire sur le Systeme primitif des voyelles dans les langues indo-curopeennes था। इस लेख ने सेस्यूर को तत्कालीन विद्वानों के मध्य निश्चित स्थान प्रदान किया।
6. प्राग मण्डल के जरनल का नाम Travaux de Circle de linguistique de Prague था।
7. त्रुबेत्स्कॉय की पुस्तक का नाम Grudzuge do Phonologie है।
8. 1932 में चेक इन्साइक्लोपीडिया के लिए रोमन याकोब्सन ने स्वनिम को सूत्रित किया और स्वनिम निर्धारण के लिए लघुतम युग्म परीक्षण का प्रथम व्यवस्थित प्रयोग प्राग विद्वानों ने किया।
9. कोपनहैगेन संप्रदाय के जरनल का नाम Acta Linguistica था जिसका उपशीर्षक International Review of Structural Linguistics था।
10. सेस्यूर की धारणा 'भाषा रूप है सत्व नहीं' से प्रभावित हो हेल्मस्लेव ने सिद्धांत की रचना की। जिसकी मूलभूत बातें 1936 में An Outline of Glossematics नाम से प्रकाशित हुई। संपूर्ण सिद्धांत का पुस्तक रूप में प्रकाशन 1943 में Omkring sprogteoriens grundlaeggelse नाम से जर्मन में हुआ।
11. 1953 में इनकी पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद Prolegomena to a Theory of Language नाम से प्रकाशित हुई और शीघ्र ही बहुचर्चित पुस्तकों में से एक हो गई। बाद में अपने कई लेखों के माध्यम से हेल्मस्लेव ने सिद्धांत को स्पष्ट और विस्तृत रूप में प्रतिपादित किया और सिद्धांत प्रयोग की भी चर्चा की।
12. सेस्यूर द्वारा प्रयुक्त विन्यासात्मक एवं सहचारी के स्थान पर हेल्मस्लेव संरचना और प्रक्रिया शब्दों के प्रयोग को प्रश्रय देते हैं।
13. लेपस्ची के अनुसार 'The net is cast wide with the intention of catching much more than natural language, but in the process tha fact of natural language often seems to slip through.'
14. सामान्य सिद्धांत से संबंधित इनकी दो महत्वपूर्ण पुस्तकें Life and Growth of Language तथा Language and the Study of Language थीं।
15. इनके प्रसिद्ध लेख Sound Patterns in Language तथा Psychological Reality of Phonemes में स्वनिम की अवधारणा का स्पष्ट रूप मिलता है।
16. इनके शोध प्रबंध का शीर्षक A Semasiologic Differentiation in German

Secondary Ablaut था।

17. ब्लूमफील्ड की 1914 में प्रकाशित पुस्तक An Introduction to The Study of Language थी।
18. Linguistic Society of America नामक इस संस्था की स्थापना प्रमुख अमरीकी भाषाविदों के प्रयास का परिणाम था।
19. ब्लूमफील्ड ने अष्टाध्यायी को Greatest monument of human intellegence कहकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।
20. अपनी पुस्तक भाषा के पृष्ठ 140 में ब्लूमफील्ड लिखते हैं- The statement of meanings is therefore the weak point in language study and will remain so until human knowledge advances very far beyond its present state.
21. हेल्मस्लेव के मतानुसार 'a totality does not consist of things but of relationships.'
22. लैम्ब की पुस्तक Outline of Stratificational Grammar का प्रथम संस्करण 1962 में और द्वितीय संस्करण 1966 में प्रकाशित हुआ। इन दोनों संस्करणों में पर्याप्त अंतर मिलता है। प्रथम में बीजगणितीय संकेतों की प्रचुरता और भाषिक वर्णन पर बल है। द्वितीय संस्करण में बीजगणित संकेतों पर रेखांकनों को तथा भाषिक वर्णन के स्थान पर भाषिक संरचना की विशेषताओं को प्रश्रय दिया।
23. डब्लू.एन. फ्रांसिस के अनुसार, "The future of the theory is in doubt."
24. निम्नांकित उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट होता है—

Concepts



expression

25. इनकी पुस्तक Language in Relation to a unified Theory of the Structure of Human Behaviour का प्रकाशन क्रमशः 1954, 1955, 1960 में तीन खंडों में हुआ।
26. Syntactic Structure, 1957, The Hague.
27. Aspects of the Theory of Syntax 1965 MIT.
28. Towards a Theory of Case (1966) तथा A Case for Case (1968) इनके दो प्रमुख प्रकाशित लेख थे।

❑❑

भाषाविज्ञान का परिचय ● प्रो. कविता रस्तोगी